बोधिप्रभ

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी

༄༅། །དབུས་བོད་ཀྱི་ཆེས་མཐོའི་གཙུག་ལག་སློབ་གཉེར་ཁང་། སྔར་ནཱ་ཐ། ཝཱ་ར་ཎ་སཱི།

Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, Varanasi

राजभाषा कार्यान्वयन समिति

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान

सारनाथ, वाराणसी

अंक-2 **वर्ष 2022**

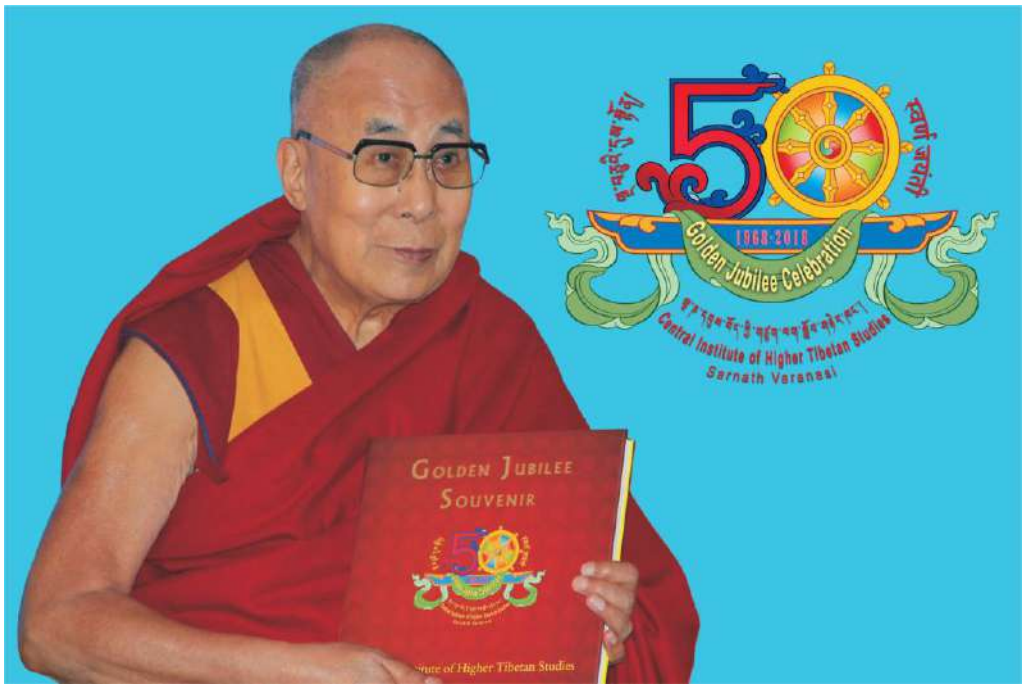

སྤྱིར་བཏང་སྐད་ཡིག་འདྲ་མིན་མང་པོ་ཤེས་ན་དཔལ་དང་རྒྱན་ཡིན་པས། དགའ་བསུ་ཡོད། འོན་ཀྱང་སོ་སོའི་སྐད་ཡིག་བདག་མེད་བེད་མེད་བསྐྱུར་འཇོག་གིས་གཞན་གྱི་སྐད་ཡིག་ལ་སྐྱབས་བཅོལ་ཏེ་འཐམས་ནས་བསྡད་པ་ཡིན་ན། ནམ་ཞིག་བོད་མིའི་སྐད་ཡིག་རྩ་བརླག་ཏུ་འགྲོ་ཉེ་ཡོད། བོད་པའི་སྐད་ཡིག་ལ་བོད་མི་རང་ཉིད་ཀྱིས་མཐོང་དང་ཆ་འཛོག་མ་བྱས་ན། གཞན་གྱིས་བྱེད་མཁན་ཡོང་གི་མ་རེད། བོད་མིས་བོད་ཀྱི་སྐད་ཡིག་མ་ཤེས་ན་ངོ་ཚ་པོ་དང་ཟབས་སྐྱོ་པོ་རེད།

གོང་ས་མཆོག་ནས།

परमपावन दलाई लामा जी ने मातृभाषा के संदर्भ में सही ही कहा है-

"सामान्यतः विविध प्रकार की भाषाओं का ज्ञान ऐश्वर्य एवं अलंकार स्वरूप है, जो स्वागत योग्य है। फिर भी अपनी भाषा का संरक्षण एवं प्रयोग न कर उसे छोड़ देना और दूसरों की भाषा को ग्रहण करके उसे पकड़ कर रखने से अपनी मातृभाषा के समूल नष्ट हो जाने का खतरा रहता है। सभी को अपनी भाषा का सम्मान स्वयं करना चाहिए, क्योंकि दूसरे नहीं करेंगे और जो स्वयं की भाषा नहीं जानता है, यह उसके लिए शर्म एवं दुःख की बात है।"

बोधिप्रभ

[अंक-2]

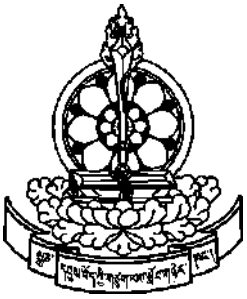

संरक्षक

प्रो. गेशे ङवङ् समतेन

सम्पादक

डॉ. हिमांशु पाण्डेय

राजभाषा कार्यान्वयन समिति

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान

सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द - 2566 ख्रीस्ताब्द - 2022

प्रधान सम्पादक : डॉ. रामसुधार सिंह

सम्पादन समिति

प्रो. बाबूराम त्रिपाठी
श्री भगवान पाण्डेय
श्री राजेश कुमार मिश्र
डॉ. ज्योति सिंह
प्रो. धर्मदत्त चतुर्वेदी
डॉ. रमेशचन्द्र नेगी
श्री टी. आर. शाशनी
डॉ. अनुराग त्रिपाठी
डॉ. सुशील कुमार सिंह

अंक-2, 250 प्रतियाँ, 2022

मूल्य : रु० 50.00

© केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, 2022

प्रकाशक :
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी-221007

मुद्रक :
सत्तनाम प्रिन्टर्स, पाण्डेयपुर, वाराणसी

प्रो. गेशे ङवङ् समतेन
कुलपति
Prof. Geshe Ngawang Samten
Vice Chancellor

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी
Central Institute of Higher Tibetan Studies
Sarnath, Varanasi

संरक्षक की कलम से

मुझे अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि संस्थान द्वारा राजभाषा की वार्षिक पत्रिका बोधिप्रभ के दूसरे अंक का प्रकाशन किया जा रहा है। जैसा कि आप जानते हैं कि पत्र-पत्रिकायें भाषा के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं और इसी क्रम में बोधिप्रभ पत्रिका के प्रकाशन से न केवल साहित्य सृजन अपितु संस्थान के विविध भाषा-भाषी अधिकारियों, कर्मचारियों द्वारा हिन्दी के माध्यम से अपने विचार अभिव्यक्त करने का अवसर प्राप्त होगा और राजभाषा में कार्य करने की प्रेरणा व प्रोत्साहन मिलेगा।

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान एक विशिष्ट संस्था है जिसका उद्देश्य, लक्ष्य एवं स्वरूप सामान्य विश्वविद्यालयों से भिन्न है। इस संस्थान की स्थापना नालंदा मूल की तिब्बती विद्या एवं बौद्ध परंपरा के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए की गई है। इस परम्परा में बौद्ध दर्शन, न्याय, प्रमाण और साधना प्रक्रिया के साथ अनेक सामान्य विद्यायें जैसे- चिकित्सा विद्या, कला, शब्द, ज्योतिष, काव्य आदि समाहित हैं। इस संस्थान में उपर्युक्त सभी विद्याओं के साथ अनेक आधुनिक विद्याओं का भी अध्ययन-अध्यापन एवं शोध हो रहा है जिससे न केवल पारम्परिक विद्याओं का संरक्षण हो रहा है अपितु संवर्धन भी हो रहा है।

इस संस्थान की अनेक योजनाओं के अन्तर्गत बौद्ध दर्शन एवं तिब्बती विद्या आदि विषयक दो सौ से अधिक ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद एवं प्रकाशन हो चुका है। सन् 2019 में बिहार सरकार के माननीय मुख्य मन्त्री श्री नितीश कुमार जी के अनुरोध पर बिहार सरकार और केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान के संयुक्त तत्त्वावधान में महापंडित राहुल सांकृत्यायन के द्वारा 1930 के दशक में तिब्बत से लाये गये तिब्बती भाषा में अनूदित बुद्ध वचन (कग्युर), नालन्दा आदि महान विहारों के विद्वान आचार्यों के द्वारा रचित शास्त्र (तन्युर) तथा तिब्बती विद्वानों द्वारा रचित शास्त्र (सुङबुम) के हिन्दी अनुवाद की वृहत योजना प्रारम्भ की गयी है। इस वृहत हिन्दी अनुवाद योजना के अन्तर्गत पाँच पुस्तकें शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली हैं। इस योजना के द्वारा नालन्दा की प्राचीन ज्ञान परम्परा को हिन्दी भाषा में जनसामान्य

तक पहुँचाया जा सकेगा। इस तरह यह संस्थान हिन्दी जगत में अपनी सेवा देने में कभी भी पीछे नहीं रहा है।

हिन्दी राजभाषा होने और विशेषकर इस संस्थान के 'क' क्षेत्र में होने के कारण कार्यालयी कार्य यथा सम्भव हिन्दी में सम्पादित करने का प्रयास चल रहा है। शिक्षा और विद्या के क्षेत्र में भी आर्यावर्त भारत देश की सांस्कृतिक सेवा के लिए लुप्त संस्कृत ग्रन्थों का पुनरूद्धार और हिन्दी अनुवाद के द्वारा इस महान देश की सेवा अनवरत चल रही है।

इस पत्रिका को प्रकाशित करने का उद्देश्य हिन्दी भाषा में रचनात्मक एवं राजभाषा सम्बन्धी लेखन को प्रोत्साहित कर प्रस्तुति का एक मंचा प्रदान करना है जहां संस्थान परिवार के सभी सदस्य अपने सृजनशील विचारों के माध्यम से राजभाषा के प्रयोग व विकास को बढ़ावा देते हुए समाज और संस्कृति के परिमार्जन में योगदान दे सकें।

अतः मैं आशा करता हूं कि इस पत्रिका के माध्यम से सभी पाठकों का ज्ञानवर्धन होगा। मैं पत्रिका के सफल संपादन के लिए सम्पादक मण्डल को साधुवाद देता हूँ।

प्रो. गेशे ङवङ् समतेन

डॉ. हिमांशु पाण्डेय
कुलसचिव (अ.प्र.)
Dr. Himanshu Pandey
Registrar (Addl. Charge)

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी
Central Institute of Higher Tibetan Studies
Sarnath, Varanasi

सम्पादकीय

प्रिय पाठको !

भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं होती है, बल्कि हमारी सांस्कृतिक परम्परा की थाती भी होती है। राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा के रूप में हिन्दी का प्रचार-प्रसार निरन्तर बढ़ रहा है। नई शिक्षा नीति 2020 में भाषा के महत्त्व और शिक्षण माध्यम को लेकर जो संकल्प किया गया है, वह स्तुत्य है। केन्द्र सरकार राजभाषा के रूप में हिन्दी को प्रतिष्ठित करने में अनवरत संलग्न है। संस्थान द्वारा कार्यालयी कार्य में अधिक से अधिक हिन्दी का प्रयोग हो रहा है।

संस्थान की राजभाषा की पत्रिका 'बोधिप्रभ' आपके हाथों सौंपते हुए हार्दिक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। मुझे प्रसन्नता है कि माननीय कुलपति महोदय के मार्गदर्शन में संस्थान पत्रिका का दूसरा अंक प्रस्तुत कर रहा है। पत्रिका के प्रकाशन से संस्थान के सदस्यों में हिंदी लेखकीय प्रतिभा में विकास होगा एवं सृजनात्मक गुण विकसित होगा। फलस्वरूप इससे राजभाषा में कार्यालयीन कार्य करने को गति मिलेगी।

पत्रिका में राजभाषा संबंधी लेख, बौद्ध दर्शन, कविता एवं कहानियों को समायोजित करने का प्रयास किया गया है, तथापि आप अपने सुझावों से अवगत करायें, ताकि पत्रिका को और सार्थक तथा उपयोगी बनाया जा सके।

डॉ. हिमांशु पाण्डेय

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	शीर्षक	रचनाकार	पृ.सं.
1.	हिन्दी : अपनी शक्ति और संभावनाओं के साथ	डॉ. रामसुधार सिंह	1-4
2.	टिप्पणी लेखन	राजेश कुमार मिश्र	5-11
3.	हिन्दी का अन्तरराष्ट्रीय स्वरूप	डॉ. अनुराग त्रिपाठी	12-19
4.	अनुवाद की तकनीक और समस्याएं	सुनिल कुमार	20-22
5.	भारत की भाषा समस्या	डॉ. सुशील कुमार सिंह	23-25
6.	हिन्दी भाषा की उत्पत्ति एवं विकास	डॉ॰ रवि गुप्त मौर्य	26-32
7.	हिन्दी और राजभाषा	भगवान पाण्डेय	33-35
8.	राजभाषा का महत्व	एम. एल. सिंह	36-40
9.	हम और हिंदी	रीना पांडेय	41-42
10.	हिन्दी भाषा - दशा और दिशा	रीति कुमारी	43-45
11.	पारिभाषिक शब्दावली : परंपरा एवं विकास	डॉ. संजय कुमार सिंह	46-50
12.	राष्ट्रीय से अंतरराष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में बढ़ती हिंदी	डॉ. सत्य प्रकाश पाल	51-53
13.	हिन्दी भाषा एवं हिन्दी-दिवस	डॉ. ओम् प्रकाश पाण्डेय	54-56
14.	मानक वर्तनी एवं अशुद्धियाँ	डॉ॰ उमेश कुमार मिश्र	57-65
15.	कंप्यूटर पर हिंदी और यूनिकोड	श्याम बाबू शर्मा	66-69
16.	क-ग्युर एवं तन्ग्युर - वाचन के गुण, लाभ एवं अनुशंसा	(स्व.) प्रो. बनारसी लाल	70-76
17.	बुद्ध एवं प्रकृति	प्रो. उमेश चन्द्र सिंह	77-80
18.	बोधिसत्त्व नेगी रिन्पोछे तन्ज़िन ग्यल्-छ्न (1895-1977)	डॉ. रमेश चन्द्र नेगी (माथस)	81-84
19.	कौशाम्बी में बौद्ध-धर्म का विकास एवं योगदान	डॉ. गेशे एल. डी. रबलिङ	85-98
20.	बौद्ध जातक एवं अवदान साहित्य का संक्षिप्त-परिचय	टी. आर. शाशनी	99-106
21.	बौद्ध मनोविज्ञान - मेरी समझ	डॉ. अरुण कुमार राय	107-110
22.	बुद्ध : प्राचीन और वर्तमान दोनों के लिए प्रासांगिक	डॉ॰ रवि रंजन द्विवेदी	111-113
23.	धर्म की स्थिति	दोरजे कलज़ंग	114-116
24.	पालि : बुद्धवचन की भाषा	दिनेश कुमारी	117-119
25.	बौद्धधर्म पर प्रकाश	कुंगा जिकतेन	120-122
26.	बदले की आग (कहानी)	प्रो. बाबूराम त्रिपाठी	123-130

27.	उत्तररामचरितम् नाटक के चित्रदर्शन प्रथम अंक का दाम्पत्य-सन्देश	प्रो. धर्मदत्त चतुर्वेदी	131-138
28.	संस्मरण : छात्र और बन्दर	प्रमोद सिंह	139-141
29.	काशी क्षेत्र के लोक देवी-देवताओं से संबंधित धार्मिक मान्यताओं का अध्ययन : मृण्मूर्तियों के सन्दर्भ में	डॉ॰ शुचिता शर्मा	142-151
30.	संस्मरण : बदहाल सरकारी स्कूल	डॉ. ह्यूमा कयूम	152-155
31.	नारी शिक्षा की अनिवार्यता	निधि त्रिपाठी	156-159
32.	मनुष्य की भिन्न-भिन्न प्रकार की इच्छाएँ, खुशियाँ एवं जीवन का उद्देश्य	अंकिता सिंह	160-165
33.	सनातन : एक धर्मनिरपेक्ष धर्म	डॉ. दिव्या सिंह	166-169
34.	देवभूमि हिमाचल प्रदेश	पनमा डोलमा	170-171
35.	अविद्या का अर्थ	विक्रमजीत	172-174
36.	क्रोध के दुष्परिणाम	एस. पी. सिंह	175-176
37.	मन के आँगन का कोना फिर भी रोता है	विश्वप्रकाश त्रिपाठी	177
38.	कोरोना समय (कविता)	प्रो. मंजुला चतुर्वेदी	178-180
39.	अब वो पहले वाली बात नहीं रही	दोरजे कलज़ंग	181
40.	बस इतना चाहती है जिंदगी	अमित कुमार विश्वकर्मा	182
41.	राजभाषा कार्यान्वयन समिति की गतिविधियाँ (वर्ष 2021-2022)		183-187
42.	राजभाषा सप्ताह समारोह-2022 का आयोजन		188-197
43.	प्रथम अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन, वाराणसी		198-199
44.	भारत के संविधान में राजभाषा से संबंधित अनुच्छेद 120 एवं 210		200

•

नोट - पत्रिका में दी गई रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं।

हिन्दी : अपनी शक्ति और संभावनाओं के साथ

—डॉ. रामसुधार सिंह—

हर साल 14 सितम्बर आते ही पूरे देश में हिन्दी दिवस, पखवारा, हिन्दी माह जैसे आयोजन शुरू हो जाते हैं। कुछ लोग इसे कर्मकाण्ड तक की संज्ञा देते रहे हैं। इस तिथि के आयोजनों से क्षुब्ध होकर कभी विद्यानिवास मिश्र जी ने कहा था कहा था कि 'काश! 14 सितम्बर न आता और हमें हिन्दी दिवस के नाटक देखने-सुनने की घटना न झेलनी पड़ती।' क्षोभ होते हुए भी यह दिन हमें हिन्दी की अपनी शक्ति और संभावनाओं पर विचार करने का अवसर अवश्य प्रदान करता है। किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र की अपनी राष्ट्रभाषा होती है जो उसकी अस्मिता की पहचान हुआ करती है। आजादी के समय गाँधी जी ने कहा था कि जैसे हमने अंग्रेज सत्ता को बाहर किया है, वैसे ही अंग्रेजी को भी देश के बाहर करना होगा। लेकिन ऐसा नहीं हो सका। संविधान सभा में 14 सितम्बर 1949 को भारतीय गणराज्य की राजभाषा के रूप में हिन्दी को और देवनागरी लिपि को स्वीकार किया गया। होना यह चाहिए था कि इसे कड़ाई से लागू किया गया होता, किन्तु कतिपय विरोध के चलते अगले 15 वर्षों तक के लिए हिन्दी के साथ अंग्रेजी को भी मान्यता दी गई। तब से लेकर तमाम संशोधनों के बावजूद स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है।

किसी भी भाषा की शक्ति उसकी शब्द सम्पदा होती है। जो भाषा दूसरी भाषा के शब्दों को लेकर उसे पचाकर अपनी प्रकृति के अनुसार ढालकर अपना बना लेने की जितनी अधिक क्षमता रखती है, उस भाषा की शब्द सम्पदा उतनी अधिक समृद्ध होती जाती है। हिन्दी के भीतर यह विशेषता भरपूर है। हिन्दी का मूल स्रोत संस्कृत भाषा है। इसके अतिरिक्त हिन्दी ने बड़ी संख्या में अरबी, फारसी, अंग्रेजी के अतिरिक्त तमाम विदेशी तथा भारतीय भाषाओं के शब्दों को ग्रहण कर अपनी सम्पदा को समृद्ध किया है। यह लिपि पूरी तरह वैज्ञानिक है। यह पूरे देश की सम्पर्क भाषा है। हिन्दी कभी भी राजसत्ता की भाषा नहीं रही है। यह सन्तों, फकीरों, किसानों, मजदूरों की भाषा रही है। यही कारण है कि देश के प्रत्येक राज्य में हिन्दी को जानने, बोलने और समझने वाले मौजूद हैं।

वैश्विक स्तर पर यदि हम देखें तो हिन्दी की स्थिति पूर्ण सन्तोषजनक है। विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा चीन की मन्दारिन और अंग्रेजी के बाद हिन्दी का स्थान है। दुनिया में करीब 65 करोड़ लोग हिन्दी बोलते हैं। यह मारिशस, फिजी, सूरीनाम, ट्रिनिटाड आदि अनेक देशों में व्यापक स्तर पर बोली जाती है। वर्तमान में विश्व के 33 देशों में

विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी पढ़ाई जा रही है । बहुत सारे विश्वविद्यालयों में हिन्दी में शोधकार्य हो रहे हैं।

आज बाजार के क्षेत्र में हिन्दी की अनन्त सम्भावनाएं हैं । उदारीकरण के बाद बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए बड़े बाजार की जरूरत होती है और भारत जैसे बड़े देश में अपने उत्पादन के प्रचार-प्रसार के लिए हिन्दी का सहारा अनिवार्य है । हिन्दी के प्रचार-प्रसार में फिल्मों का बहुत योगदान रहा है। पूरे देश में चलने वाली बंबइया फिल्में हिन्दी में बनती हैं। कभी दूरदर्शन में हिन्दी और अंग्रेजी दोनों को महत्त्व दिया जाता था, किन्तु आज निजी चैनलों के आ जाने से अंग्रेजी हाशिये पर चली गई है। तमाम चैनलों के समाचार तथा मनोरंजन हिन्दी में चौबीस घण्टे प्रसारित किये जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त डिस्कवरी, नैट-जिओ, एनिमल प्लैनेट, सोनी, बी.सी.सी. अर्थ, हिस्ट्री आदि विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय अंग्रेजी चैनल अपने कार्यक्रमों को डब करके हिन्दी में भी प्रस्तुत कर रहे हैं। इन कम्पनियों ने यह समझ लिया है कि भारत और भारतीय बाजार में टिके रहने के लिए हिन्दी भाषा का दामन थामना अनिवार्य है।

देश और देश के बाहर हिन्दी ने जो अपनी स्थिति बनाई है, वह उसकी अपनी ताकत है। अंग्रेजी हमारी गुलामी की भाषा है। गुलामी की भाषा हमें कुंठित बनाती है। विश्व के तमाम विकसित देशों ने अंग्रेजी का सहारा लिये बिना ज्ञान, विज्ञान एवं तकनीक में पर्याप्त विकास किया है। हिन्दी के चतुर्दिक विकास के लिए हमें हीन भावना से उबरना होगा। हिन्दी बोलने और उसका प्रयोग करते समय हमें गौरव की अनुभूति होनी चाहिए। देश की अन्य भाषाओं का विकास होना चाहिए किन्तु राष्ट्रभाषा और राजभाषा बनने की अधिकारिणी तो हिन्दी ही है।

आज पूरा देश आजादी की 75वीं वर्षगाँठ के रूप में आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है । आजादी के इस महोत्सव में हिन्दी की बृहत्तर भूमिका पर भी विचार करने की आवश्यकता है। उस समय राष्ट्रीय आन्दोलन में केन्द्रीय भूमिका निभाने वाले प्रायः सभी नेताओं का मानना था कि पूरे राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने की शक्ति हिन्दी में है, इस कारण हिन्दी को लड़ाई के हथियार के रूप में अपनाना आवश्यक है। इस दृष्टि से हिन्दी के कवियों तथा समाचार पत्रों की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही। कानपुर से निकलने वाले 'प्रताप' में सबसे ऊपर प्रतिदिन प्रकाशित होता था- 'जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं । वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं ।' जबलपुर से प्रकाशित पत्र की शीर्षक पंक्ति हुआ करती थी- 'जिसमें न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है। वह नर नहीं है पशु निरा और मृतक समान है ।' इलाहाबाद से निकलने वाले 'स्वराज' में सम्पादक

के लिए विज्ञापन निकलता था- 'स्वराज' के लिए सम्पादक चाहिए। वेतन- 'दो टिक्कड़, दो गिलास पानी और दो वर्ष की सजा'। क्रम से सात सम्पादकों को सजा मिलती रही और हर बार इसी शर्त पर नये सम्पादक आते रहे। आज हिन्दी समाचार पत्रों की संख्या हजारों संख्या में हो गई है। सवाल है कि क्या आज की पत्रकारिता अपने दायित्व का सार्थक निर्वहन कर रही है।

उस समय हिन्दी के राष्ट्रीय धारा के अनेक कवियों ने अंग्रेज सत्ता के खिलाफ बिगुल फूँकते हुए देश पर मर-मिटने के लिए युवकों को प्रोत्साहित किया। माखन लाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, गोपाल सिंह नेपाली, रामधारी सिंह दिनकर, जयशंकर प्रसाद जैसे अनेक कवियों ने राष्ट्र के गौरवशाली इतिहास की याद दिलाते हुए देश पर कुर्बान होने की प्रेरणा दी है। माखन लाल चतुर्वेदी की कविता 'पुष्प की अभिलाषा' में पुष्प स्वयं माली से अनुरोध करता है- 'मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक, मातृभूमि पर सीस चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।' सुभद्रा कुमारी चौहान झाँसी की रानी की गौरवगाथा गाती है और जालियाँ वाले बाग की याद दिलाती हैं। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' लिखते हैं-

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल पुथल मच जाए।
एक हिलोर इधर से आये
एक हिलोर उधर से आवे।

द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी देश के बच्चों को ध्वज लेकर आगे बढ़ने को ललकारते हैं-

वीर तुम बढ़े चलो, धीर तुम बढ़े चलो
हाथ में ध्वजा रहे, बालदल सजा रहे
ध्वज कभी झुके नहीं, दल कभी रुके नहीं
वीर तुम बढ़े चलो, धीर तुम बढ़े चलो।

जयशंकर प्रसाद स्वतंत्रता रूप पुण्य प्रशस्त पंथ पर बढ़ने की प्रेरणा देते हैं-

हिमाद्रि तुंग शृंग से / प्रबुद्ध शुद्ध भारती -
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला / स्वतंत्रता पुकारती -
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो बढ़े चलो।

आजादी की यह आवाज हिन्दी की आवाज थी। हिन्दी की तमाम बोलियाँ विशेषकर भोजपुरी में जन-जन तक यह आवाज गूँजने लगी थी-

रंग रेजवा छापि दे हमरी चुनरिया
नक्सा हिन्द अजाद फौजिया
एक ओर छापा नेता सुभाषचन्द्र
एक ओर झंडा तिरंगा।

ऐसे तमाम उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जो आजादी के बेहद लोकप्रिय तराने बने थे, जिसके बल पर हम आजाद हुए। इसलिए हिन्दी मात्र एक भाषा नहीं है, अपितु हमारे राष्ट्र का गौरव और हमारी अस्मिता की प्रतीक है। इस गौरवमयी भाषा को बोलने और लिखने में हमें गौरव की अनुभूति करनी चाहिए।

पूर्व विजिटिंग प्रोफेसर
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9451890720

टिप्पणी लेखन

—राजेश कुमार मिश्र—

सामान्य सन्दर्भ में टिप्पणी (Short note) का आशय किसी लेख, पाठ, कविता या कहानी के केन्द्रीय विचार, भाव व कथ्य को समाहित करते हुए उसका सारांश प्रस्तुत करना है, ठीक इसी तरह विभिन्न कार्यालयी मामलों के नोटशीट पर संक्षेप में प्रस्तुतीकरण को टिप्पणी कहते हैं।

कार्यालयी कार्य और व्यक्तिगत कार्य में मूल भेद कागजी कार्यवाही का ही होता है, हालांकि बहुत से व्यक्तिगत कार्य भी लिखित रूप से करने होते हैं किन्तु समान्यतया दैनिक जीवन के पारिवारिक, सामाजिक कार्य हम मौखिक रुप से सहमत हो निर्णय लेकर भी कर लेते हैं किन्तु समस्त कार्यालयी कार्यों से सम्बन्धित विचार-विमर्श, सम्बन्धित नियमों और लिए गए निर्णयों का लिखित होना आवश्यक है, जिससे कि भविष्य में इन प्रलेखों को सन्दर्भ रुप में प्रयोग कर त्वरित निर्णय लिए जा सके या किसी भी मामले में इन प्रलेखों को प्रमाण रुप में प्रस्तुत किया जा सके। मूलतः कार्यालय का उद्देश्य विभिन्न सम्बन्धित विषयों पर लिए गए निर्णयों और की गई कार्यवाही से सम्बन्धित दस्तावेज को सुरक्षित रखना ही होता है जिससे कि भविष्य में समान प्रकरण पर कार्यवाही करने में सुविधा हो।

यदि हम किसी प्रकरण पर सहायक स्तर से लेकर निर्णय लेने वाले अधिकारी के स्तर तक की कार्यवाही का निरीक्षण करें तो पाएंगे कि यह किसी विषय पर विभिन्न स्तरों पर सन्दर्भ, नियम, तर्क तथा परिस्थिति के आलोक में लिखित चर्चा कर निर्णय लेने की एक मान्य व्यवस्था है । निर्णय लेने की इस कार्यालयी व्यवस्था का दस्तावेजीकरण सामान्यतया कार्यालय सहायक या अनुभाग अधिकारी द्वारा हल्के हरे रंग के लीगल साइज के पेज पर किया जाता है, जिसे नोट शीट कहा जाता है। इस नोट शीट पर किसी प्रकरण, पत्र या निवेदन की नियम तर्क परिस्थिति या विचार के सन्दर्भ के साथ लिखित प्रस्तुति, इस प्रस्तुति का अग्रसारण लेख और इस पर लिए जाने वाले निर्णय का लेख कार्यालयी भाषा में टिप्पणी कहलाता है।

टिप्पणी से तात्पर्य है किसी भी छोटे या बड़े मामले को निपटाने के लिए विभिन्न स्तरों पर की गई वह लिखित दफ्तरी कार्रवाई, जिससे सरकारी अथवा गैर सरकारी कार्यालयों का प्रशासनिक कार्य मात्र व्यक्ति विशेष के ही नहीं अपितु सम्मिलित दायित्व से क्रियान्वित किया

जाता है। डॉ. ईश्वर दत्त (हिन्दी भाषा – भाग-2 पृ-6) ने टिप्पणी (short Note) की परिभाषा देते हुए कहा है कि "कार्यालय में आए हुए किसी विचाराधीन पत्र या मामले के निस्तारण को सुगम और सरल बनाने के लिए सहायक कर्मचारियों/अधिकारियों द्वारा पूर्व संदर्भ, वर्तमान तथ्य तथा कार्यवाही के सुझाव सहित जो अभियुक्तियां (remark) या आख्याएं लिखी जाती हैं, उसे टिप्पणी कहते है।"

उत्तर प्रदेश सरकार, हिन्दी निर्देशिका, पृ-18 पर टिप्पणी को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि "टिप्पणी का उद्देश्य उन बातों को, जिन पर निर्णय लेना होता है, स्पष्ट रुप से तर्क के अनुसार प्रस्तुत करना होता है, साथ ही उन बातों की ओर भी संकेत करना होता है, जिनके आधार पर उसका निर्णय संभवतः लिया जा सकता है"

टिप्पणी के अन्य नाम-टीका, विवृत्ति, व्याख्या, आख्या, अभ्युक्ति, विवरण टीप (Noting, Note, Comment, Remark) आदि हैं।

अतः टिप्पणी का चलन वास्तव में कार्यालयी कार्यो को सरल बनाने या किसी प्रकरण/मामले के निस्तारण के लिए उस विषय पर संबंधित कर्मचारियों व अधिकारियों के मंतव्य एवं नियमों के लिखित प्रकटन करने हेतु हुआ है।

टिप्पणी लेखन का प्रयोजन-

उपर्युक्त भूमिका से स्पष्ट है कि टिप्पणी सदैव किसी प्रायोजन से ही लिखी जाती है, संक्षेप में इसके निम्न प्रयोजन हो सकते हैं-

1. कार्यवाही की दिशा स्पष्ट करना
2. संबंधित विषय पर पूर्व में लिए गये निर्णय उपलब्ध कराना।
3. अधिकारियों को कार्यवाही के लिए संबंधित दिशा-निर्देश (नियम) उपलब्ध कराना।
4. विभिन्न मामलों में संक्षिप्त टिप्पणी के साथ-साथ उत्तर का मसौदा अनुमोनार्थ प्रस्तुत करना।
5. विभिन्न मामलों में टिप्पणी में स्थिति अस्पष्ट होने पर सम्बन्धित प्रकरण पर अधिकारी के मार्गदर्शन हेतु प्रस्तुत करना, अधिकारी को आवश्यक सुझाव देना, उच्चाधिकारी को प्रस्तुत करना, जो मामले कार्यालय के अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र में हो उन पर निर्णय हेतु सक्षमाधिकारी को प्रस्तुत करना, जो मामले कार्यालय के अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र से बाहर हो उन्हें दूसरे कार्यालय या मंत्रालय को दिशा-निर्देश हेतु प्रेषित करने का सुझाव देना आदि प्रयोजनों से कार्यालय द्वारा टिप्पणी लिखी जाती है।

टिप्पणी के अंग-

1. प्रारम्भ-पत्र संख्या, दिनांक, विभाग (संदर्भ)
2. विषय-उद्देश्य, वाद प्रश्न (मांग) (एक से ज्यादा माँगे हों तो क्रमवार लिखें)।
3. कारण -माँग का औचित्य
4. प्रकरण-पूरे तथ्य, संदर्भ, वर्तमान वस्तुस्थिति
5. तर्क-नियम एवं स्थापित व्यवस्था
6. निष्कर्ष-(अनुमोदनार्थ प्रस्तुत)
7. टिप्पणीक का नाम और पदनाम। यदि अराजपत्रित हो तो बाँई ओर और अगर राजपत्रित हो तो दाँई ओर।

टिप्पणी लिखने के समान्य नियम-

1. टिप्पणी लिखते समय पत्र की संख्या, दिनांक, तथा विषय का उल्लेख अवश्य करना चाहिए।
2. टिप्पणी सदैव अन्य पुरुष में लिखी जानी चाहिए।
3. टिप्पणी लिखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि जिस पत्र या प्रकरण के संदर्भ में टिप्पणी लिखी जा रही है, उस पत्र या प्रकरण में वर्णित समस्या एवं सम्बन्धित नियमों का उल्लेख एवं सम्भावित समाधान टिप्पणी में निहित होना चाहिए।
4. टिप्पणी में दिये जाने वाले सुझाव नियम या दृष्टांतों के आलोक में होने चाहिए तथा किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह से मुक्त होने चाहिए।
5. टिप्पणी में संक्षिप्तता का गुण परम आवश्यक है, अतः यथासम्भव कम से कम शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।
6. टिप्पणी लिखने के बाद अंत में हस्ताक्षर जरुर करना चाहिए।

टिप्पणी लेखन की सावधानियाँ-

1. भाषा अस्पष्ट नहीं होनी चाहिए।
2. अनिश्चयात्मकता की स्थिति से यथासंभव बचना चाहिए।
3. आलोचना से बचना चाहिए।
4. तथ्यपरक टिप्पणी लिखनी चाहिए।
5. मूल पत्र पर कभी भी टिप्पणी नहीं लिखनी चाहिए।

6. टिप्पणी में गलती होने पर नोटसीट पर काट कर लिखना (ओवर राइटिंग करना), किसी हिस्से पर सफेदी लगाना, फाड़ना, आधे नोट चिपकाना, किसी भी स्थिति में नहीं करना चाहिए।
7. नोटिंग में गलती होने पर उसे काट देना चाहिए तथा उसके नीचे या नई नोटसीट पर टिप्पणी लिखना चाहिए।

टिप्पणी के प्रकार

कार्यालयों में टिप्पणी का उपयोग अनेक स्तरों पर किया जाता है। मामलों का स्वरूप, अधिकार की स्थिति तथा कार्यालय की आवश्यकतानुसार अनेक प्रकार की टिप्पणियाँ लिखी जाती हैं, जिनमें प्रमुख हैं- नेमी टिप्पण, सामान्य टिप्पण, अनुभागीय टिप्पण, सम्पूर्ण टिप्पण, सूक्ष्म टिप्पण तथा अनौपचारिक टिप्पण आदि।

1. **प्रशासनिक या नेमी टिप्पणी**
2. **समान्य टिप्पणी**
3. **अनुभागीय टिप्पणी**
4. **स्वतः पूर्ण टिप्पणी या सम्पूर्ण टिप्पणी**
5. **सूक्ष्म टिप्पण**
6. **अनौपचारिक टिप्पणी**

1. **नेमी टिप्पणी- प्रशासनिक टिप्पण (नेमी)**:- कार्यालयीन कामकाज के एक भाग के रूप में नेमी टिप्पण लिखे जाते हैं। ये टिप्पण रोजमर्रा के कार्य का एक अंग होने के कारण संक्षिप्त रूप में छोटी-छोटी बातों के लिए लिखे जाते हैं। इनका महत्व केवल कार्यालयीन अभिलेख और औपचारिकता के निर्वाह तक ही सीमित होता है। जिन टिप्पणियों के माध्यम से कार्यालय को किसी सामान्य प्रकरण पर प्राप्त नई आवती पर शीघ्र कार्यवाही के उद्देश्य से अधिकारी हाशिया टिप्पणी या नेमी टिप्पणी लिख कर निर्देश देते हैं या प्रकरण का निस्तारण करते हैं उन्हें नेमी टिप्पणी कहा जाता है। यह टिप्पणी अधिकारी स्तर पर लिखी जाती है। इसका उद्देश्य मामले को निपटाने के संबंध में स्पष्ट निर्देश देना होता है।

a. देख लिया, धन्यवाद।	Seen, Thanks.
b. मैं सहमत हूँ।	I agree.
c. (कृपया) चर्चा करें।	Please discuss.

2. **समान्य टिप्पणी**:- सरकारी कार्यालयों में जो पत्र प्रथम बार प्राप्त होते हैं उन्हें प्रस्तुत करने की एक प्रक्रिया होती है, उस प्रक्रिया के अंतर्गत जो टिप्पण लिखे जाते हैं उन्हें सामान्य टिप्पण कहते हैं । ऐसे टिप्पणों में पत्र का पूर्ववर्ती सन्दर्भ अथवा प्रसंग का उल्लेख नहीं होगा।

3. **अनुभागीय टिप्पण**:- इसे विभागीय टिप्पण भी कहा जाता है । कुछ मामलों पर सरकारी आवश्यकता के अनुसार विभिन्न विभागों अथवा अनुभावों से अनुदेश प्राप्त करना जरूरी होता है। ऐसी स्थिति में मामलों के स्वरूप के अनुसार टिप्पण कर्ताओं को प्रत्येक मामले पर स्वतन्त्र टिप्पण लिखना आवश्यक होता है और वे ऐसे स्वतन्त्र टिप्पणों पर अलग से अनुदेश प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के टिप्पणों को विभागीय अथवा अनुभागीय टिप्पण कहते हैं।

4. **स्वतः पूर्ण टिप्पणी या सम्पूर्ण टिप्पण-** वे टिप्पणियाँ जो विस्तारपूर्वक लिखी जाने वाली टिप्पणियों को **स्वतः पूर्ण टिप्पणी या सम्पूर्ण टिप्पण** कहते हैं। कार्यालय में कई मामलों की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए उन्हें समग्ररूप से फाइल में प्रस्तुत करना होता है जिससे कि कार्यालयी टिप्पणी अधिकारी उचि आधार पर उच्चत निर्णय लेकर आदेश जारी कर सके। इस प्रक्रिया में संपूर्ण इतिवृत्ति तथा पूर्व में लिए गए निर्णय आदि का समग्र ब्योरा देना होता है । इस प्रकार मामले के बारे में पूरे अध्ययन के साथ विश्लेषणात्मक पद्धति से जो टिप्पण लिखा जाता है उसे **स्वतः पूर्ण टिप्पणी या सम्पूर्ण टिप्पण कहते हैं ।** यह टिप्पणी किसी आवती पर आधारित न होकर किसी समस्या के समाधान या किसी आवश्यकता को पूरा करने के लिए लिखी जाती है, यह टिप्पणी अधिकारी या सहायक स्तर स्तर पर लिखी जाती है। यह टिप्पणी निम्न विषयों के लिए लिखी जा सकती है।

   अतिरिक्त स्टाफ की मांग के लिए
   एवजी की माँग के लिए।
   लेखन-सामग्री की मांग के लिए।
   बैठकों तथा संगोंष्ठियों के आयोजन के हेतु।
   बैठकों, संगोष्ठियों के आयोजन के लिए बजट माँगने हेतु।

5. **सूक्ष्म टिप्पण**:- सूक्ष्म टिप्पण अत्यंत संक्षिप्त रूप में लिखे जाते हैं । कुछ पत्रों पर अनुभाग अधिकारी अथवा सम्बन्धित अधिकारी पत्र के हाशिये पर बाईं ओर निर्देश देता है जो सामान्यतया संक्षिप्त वाक्यों के रूप में होता है उसे ही सूक्ष्म टिप्पण कहा जाता

है। सूक्ष्म टिप्पण में सामान्यत: 'सम्मति हेतु', 'स्वीकृति के लिए', 'अवलोकनार्थ' आदि वाक्य लिखे जाते हैं। बाद में सम्बन्धित फाइल वरिष्ठ अधिकारी के पास आवश्यक कार्यवाही हेतु भेज देने पर वह अधिकारी भी सूक्ष्म टिप्पण के रूप में 'स्वीकृत', 'अनुमोदित', 'देख लिया, ठीक है', 'मैं सहमत हूँ' आदि वाक्य लिखता है।

6. **अनौपचारिक टिप्पण**:- एक कार्यालय से किसी दूसरे कार्यालय अथवा एक मंत्रालय से दूसरे मंत्रालय को कुछ कार्यालीन जानकारी देने के लिए अनौपचारिक टिप्पण सीधे भेजे जाते हैं। अनौपचारिक टिप्पण में सभी कार्यालयीन नियमों तथा शर्तों आदि का सही-सही अनुपालन नहीं किया जाता है। इन टिप्पणों के उत्तर में जो टिप्पणादि प्राप्त होते हैं, उनका स्वरूप भी अनौपचारिक टिप्पण का ही होता है।

टिप्पणी लेखन में प्रयोग होने वाले कुछ वाक्यांश-

A matter of great concern	- विशेष चिंता का विषय।
Above cited/Above mentioned	- उपर्युक्त / ऊपर दिया गया/ ऊपर लिखे हुए
Acceptance is required	- स्वीकृति अपेक्षित है।
Accordance with the government orders	- नियमानुसार कार्रवाई की जाए।
According to the terms and conditions	- उपबंधों और शर्तो के अनुसार
Acknowledge receipt of this office letter, dated……	- इस कार्यालय के पत्र दिनांक--------की पावती भेजिए।
Acknowledgement is still awaited action as desired	- पावती की अभी तक प्रतीक्षा है।
Action as desired	- अपेक्षित कार्रवाई करें।
Action as proposed may be taken at once	- प्रस्तावित कार्रवाई तुरंत की जाए।
Action has been taken accordingly	- तदनुसार कार्रवाई की जाए।
Addressed to all officers concerned	- सभी संबंधित अधिकारियों को प्रेषित।
After consulting the competent Authority	- सक्षम अधिकारी से विचार विमर्श करने के पश्चात।
Appear for interview when called for	- बुलाये जाने पर साक्षात्कार के लिए उपस्थित हों।
Approved draft is put up for Signature	- अनुमोदित मसौदा हस्ताक्षर के लिए प्रस्तुत है।
Arrange early disposal for the case	- मामले के शीघ्र निपटान की व्यवस्था की जाए।
At any rate action and hold be taken in	- किसी भी दिशा में सरकारी आदेश के अनुसार
Based on fact.	- तथ्यों पर आधारित
Bearing of question.	- प्रश्न से संबंधित
Bring to this to the notice of all staff concerned	- सभी संबंधित कर्मचारियों का ध्यान इस ओर दिलाया जाए।

Call for explanation.	- स्पष्टीकरण मांगना
Cannot be acceded to.	- स्वीकार नहीं किया जा सकता।
Draft may be amended.	- प्रारूप को तदनुसार संशोधित किया जाय
Earliest possible moment	- यथासंभव शीघ्र
Early reply is solicited	- उत्तर शीघ्र भेजने की प्रार्थना
For administrative approval.	- प्रशासनिक अनुमोदन हेतु
Formal approval is necessary	- औपचारिक अनुमोदन आवश्यक है
Give top priority to this case	- कृपया इस मामले को परम वरीयता दी जाए
Grant has been sanctioned	- अनुमोदन मंजूर कर दिया गया है
Half day allowance not admissible	- आधा दैनिक भत्ता देय नहीं
Has been repeatedly told	- को बारबार बताया गया -
In case of any difference	- मतभेद की स्थिति में
In principle accepted	- सिद्धांत रूप में स्वीकृत

प्रलेखन अधिकारी
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं-. 9452073073

हिन्दी का अन्तरराष्ट्रीय स्वरूप

—डॉ. अनुराग त्रिपाठी—

नई परंपराएँ और नए मूल्य न तो एक दिन में गढ़े जा सकते हैं और न ही उन्हें कुछ महीनों में मान्यता दिलाई जा सकती है। भाषा एवं संस्कृति, राजनीति या प्रशासन जैसा विषय नहीं है, जिसे कुछ हफ्तों में बदला जा सके। भाषाएँ भी संस्कृति के नवाचार और बदलाव से जुड़ी होती हैं, इसलिए उनके जरिए कुछ महीनों में नई संस्कृति नहीं रची जा सकती, लेकिन संस्कृति के लिए 45 साल का समय भी कोई कम नहीं होता। 4 अक्टूबर 1977 को संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा को भारत के विदेश मंत्री के तौर पर हिंदी में संबोधित करते हुए अटल बिहारी वाजपेयी ने दुनिया को संदेश दिया था कि अब हिन्दी को वैश्विक पटल पर अपनी दमदार मौजूदगी दर्ज कराने के दिन शुरू हो गए। तब से लेकर अब तक की अवधि में बेशक हिन्दी वैश्विक मंच पर मजबूती तक साथ स्थापित हो गई। भारत की विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज ने जब अक्टूबर 2015 एवं सितम्बर 2018 में संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा में जब हिन्दी में भाषण दिया तो लगा कि अब हिन्दी की सशक्त उपस्थिति अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर दिखनी शुरू हो गयी है।

हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री माननीय नरेन्द्र मोदी जी हिन्दी के वैश्विक राजदूत और सुपर ब्रांड बन गए हैं। सम्पूर्ण विश्व के अलग-अलग हिस्सों में हमारे प्रधानमंत्री को सुनने के लिए जिस तरह भारी भीड़ जमा होती है, वह प्रकारान्तर से भारत एवं हिन्दी की बढ़ती शक्ति का भी उद्घोष है।

हिन्दी को अन्तरराष्ट्रीय सन्दर्भ प्रदान करने में प्रवासी भारतीयों का महत्वपूर्ण योगदान है। प्रवासी भारतीयों के लिए हिन्दी भाषा उनकी अपनी सांस्कृतिक भाषा है। उनके घर, मन्दिर, दुकानें आदि भारतीय संस्कृति से सुसज्जित हैं तो उनके मन-प्राण भारतीयता की शक्ति से समृद्ध हैं। हिन्दी भाषा, विदेशों में बसे प्रवासी भारतीयों के हृदय की हथेली है, जिस पर धर्म, दर्शन और भारतीय संस्कृति की रेखाएँ जीवन का सत्य बनकर उभरती हैं। इस सन्दर्भ में डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय का यह कथन उल्लेखनीय है-

"हिन्दी को वैश्विक सन्दर्भ प्रदान करने में विश्वभर में फैले हुए तीन करोड़ से ज्यादा प्रवासी भारतीयों का विशेष प्रदेय है। वे हिन्दी के द्वारा अन्य भाषा-भाषियों के साथ सांस्कृतिक संवाद कायम करते हैं। आज हिन्दी विश्व के सभी महाद्वीपों तथा राष्ट्रों जिनकी संख्या एक सौ

चालीस से भी अधिक है, किसी न किसी रूप में प्रयुक्त हो रही है ।"[1] आज हिन्दी एक बड़े पैमाने पर विश्व के कई देशों में पनप रही है, चाहे इसका विस्तार शैक्षिक स्तर पर हो रहा हो, चाहे भाषिक स्तर पर। विश्व में हिन्दी भाषा-भाषियों के दो वर्ग उभर कर आते हैं-

(1) भारतीय मूल के लोगों द्वारा विदेशों में हिन्दी प्रचार-प्रसार- फीजी, त्रिनिदाद, गयना, मॉरीशस, सूरीनाम आदि ऐसे देश हैं, जहाँ दो-तीन सौ वर्ष पहले भारतीय लोग मजदूर एवं खेतिहर मजदूरों के रूप में गए तथा उन लोगों ने अपनी अस्मिता को बनाये रखने के लिए हिन्दी भाषा का प्रयोग कर उसे जीवित रखा । ये लोग धार्मिक रीति-रिवाज एवं व्रत कथा आदि के द्वारा अपनी संस्कृति एवं भाषा को सुरक्षित रख सके। भारत के बाहर फिजी सबसे बड़ा देश है जहाँ हिन्दी बोली जाती है। सूरीनाम की एक तिहाई जनसंख्या भारतीय मूल की है । यह देश दक्षिणी अमेरिका का एक छोटा सा देश है । इस देश में भोजपुरी का प्रयोग अधिक मिलता है। इन देशों में विद्यालयी तथा विश्वविद्यालयी स्तर पर हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन होता है।

(2) दूसरा वर्ग उन लोगों का है जो नौकरी या व्यवसाय की खोज में इन देशों में जाकर बस गये हैं। ऐसे देशों में इंग्लैण्ड, अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका, कनाडा, मलाया, सिंगापुर आदि हैं। इन देशों के लोगों को प्रवासी भारतीय कहा जाता है। इन देशों में रहने वाले भारतीयों को धार्मिक क्रिया-कलापों तथा अपने रीति-रिवाजों को चलाये रखने के लिये भाषा की जरूरत पड़ी। यहाँ के प्रवासी भारतीयों को पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो तथा दूरदर्शन के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को व्यक्त करने की सुविधा मिली हुई है।

अमेरिका में हिन्दी

अमेरिका के हिन्दी में कार्य करने वालों में वैज्ञानिक, चिकित्सक, तकनीकी विशेषज्ञ, विधिवेत्ता और अर्थशास्त्री हैं तथा कुछ अध्यापकगण भी हैं। कविता, कहानी, लेख, व्यंग्य, संस्मरण और यात्रा वर्णन आदि विविध विधाओं में यहाँ निरन्तर लेखन कार्य होता रहा है। अमेरिका प्रवासी भारतीयों का साहित्य सृजन में योगदान उच्चस्तरीय है। अमेरिका में हिन्दी से जुडी कुछ साहित्यिक प्रतिभाएँ यथा- रामेश्वर अशान्त, प्रो. राम चौधरी, डॉ. भूदेव शर्मा, डॉ. वेद प्रकाश बटुक, डॉ. गुलाब खण्डेलवाल, डॉ. सुषमा बेदी, डॉ. विजय कुमार मेहता, डॉ. अंजना संधीर, डॉ. श्यामनारायण शुक्ल आदि हैं। इन प्रवासी भारतीयों ने हिन्दी प्रचार-प्रसार

1. हिन्दी का विश्व सन्दर्भ - डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, दूसरा संशोधित संस्करण, 2016, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली-110002.

में जो कार्य किया है वह निश्चय ही अमेरिका के हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित किया जायेगा।

वर्तमान में अमेरिका में तीन प्रमुख हिन्दी सेवी संस्थाएँ कार्यरत हैं- (1) विश्व हिन्दी न्यास, (2) अंतरराष्ट्रीय हिन्दी समिति तथा (3) विश्व हिन्दी समिति । ये संस्थाएँ क्रमशः 'हिन्दी जगत', 'विश्वा' तथा 'सौरभ' नामक उच्चस्तरीय त्रैमासिक पत्रिकाएँ प्रकाशित कर रही हैं। 1980 तथा 1990 के दशक में हिन्दू एजूकेशनल सोसायटी द्वारा 'विश्वविवेक' नामक पत्रिका का स्तरीय प्रकाशन हुआ था, पर दुर्भाग्य से अब उसका प्रकाशन बन्द हो गया है।

अमेरिका के प्रवासी हिन्दी साहित्यकारों में उषा प्रियंवदा, सुनीता जैन तथा सोमावीरा- साठ के दशक में प्रकाश में आए तथा इन तीनों ने हिन्दी साहित्य को अनेक उल्लेखनीय कृतियाँ प्रदान की हैं। अन्य रचनाकारों में कमला दत्त, इन्दुकान्त शुक्ल, उमेश अग्निहोत्री, अनिल प्रभा कुमार, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, मधु महेश्वरी, उषा देवी विजय, कोल्हटकर, कमलेशकपूर, श्याम नारायण शुक्ल, पूर्णिमा गुप्ता, सीमा खुराना, रेणु राजवंशी गुप्ता आदि हैं।

13-15 जुलाई, 2007 न्यूयार्क में सम्पन्न आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन के उद्घाटन सत्र में संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव श्री बान की यून ने बतौर मुख्य अतिथि 'नमस्ते! आप कैसे हैं' जैसे वाक्य हिन्दी में बोलकर उपस्थित विश्व हिन्दी समुदाय का मन मोह लिया। इस अवसर पर अमेरिका में भारत के राजदूत श्री रनेन्द्र सेन, संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत के स्थायी प्रतिनिधि श्री निरूपम सेन, मॉरिशस के शिक्षामंत्री श्री धर्मवीर गोखुला, नेपाल के उद्योग मंत्री श्री राजेन्द्र महतो, भारतीय विद्याभवन, न्यूयार्क के अध्यक्ष डॉ. नवीन मेहता के हिन्दी में दिए गए वक्तव्य काफी उत्साहवर्द्धक रहे।

ब्रिटेन में हिन्दी

ब्रिटेन में हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन लम्बे समय से हो रहा है । 'स्कूल ऑफ ओरिएण्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज' के माध्यम से हिन्दी तथा अन्य भाषाओं को प्रोत्साहन मिलता रहा है। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में भी अनेक वर्षों तक हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन चला। हिन्दी के मूर्धन्य कवि श्री सत्येन्द्र श्रीवास्तव ने वहाँ लगभग 25 वर्षों तक हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन किया है।

ब्रिटेन के प्रवासी हिन्दी लेखकों का देश-विदेश में नाम है। मूल रूप से बनारस की रहने वाली शैल अग्रवाल लगभग तीन-चार दशक से इंग्लैण्ड में रहती हैं। आपने अनेक कहानियाँ तथा उपन्यास लिखे हैं। दिव्या माथुर स्त्री विमर्श की कथाकार हैं।

निखिल कौशिक ब्रिटेन के एक सशक्त साहित्यकार हैं। उनकी गद्य रचनाएँ एक विशिष्ट शैली में लिखी गयी हैं। कहीं-कहीं तो वे एक लम्बी कविता सी लगती हैं और कहीं-कहीं मानवीय विडम्बनाओं की प्रस्तुति होती है। कौशिक जी 'प्रवासी टुडे' के प्रकाशन को हिन्दी के उन्नयन की एक महत्वपूर्ण कड़ी मानते हैं । 1900 में महान् हिन्दी सेवी डॉ. पद्मेश गुप्त ने यू.के. हिन्दी समिति की स्थापना की।

सन् 1992 में भारत के उच्चायुक्त बनकर पहुँचे डॉ. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी ने हिन्दी के उन्नयन में विशेष योगदान किया। सिंघवी जी के निवास पर श्री अटलबिहारी बाजपेयी और लता मंगेशकर जैसी विभूतियों के साथ हिन्दी संगोष्ठियाँ हुईं। सन् 1997 में भारत की स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य में लन्दन में दूसरा अन्तरराष्ट्रीय हिदी सम्मेलन आयोजित किया गया। इसी सम्मेलन में ब्रिटेन में हिन्दी की प्रथम साहित्यिक पत्रिका 'पुरवाई' का जन्म हुआ। पुरवाई पत्रिका निरन्तर ब्रिटेन से निकल रही है । यू.के. हिन्दी समिति द्वारा प्रतिवर्ष कवि सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं, जिनमें भारत के शीर्ष कवि भाग लेते हैं।

ब्रिटेन में हिन्दी को पालने-पोषने वालों में श्री रामकिशन शर्मा, प्राण शर्मा, सत्येन्द्र, तेजेन्द्र शर्मा अग्रगण्य हैं। श्रीमती ऊषा राजे सक्सेना ब्रिटेन में रहकर हिन्दी लेखन से निरन्तर जुड़ी हुई हैं।

मॉरीशस में हिन्दी

मॉरीशस में हिन्दी का प्रारम्भ 19वीं शताब्दी में गन्ने की खेती के लिए गिरमिटिया या कुली के रूप में मॉरीशस पहुँचे भारतीयों के साथ हुआ। उसी समय से हिन्दी मॉरीशस की प्रमुख भाषा रही है। 1968 से अर्थात् स्वतन्त्रता से पूर्व मॉरीशस पहले फ्रेंच और तत्पश्चात् ब्रिटिश उपनिवेश रहा। इसलिए यहाँ फ्रेंच और अंग्रेजी भाषा का व्यापक प्रभाव बना रहा। स्वतन्त्रता के पश्चात् मॉरीशस ने अंग्रेजी को अपनी राजभाषा बनाया है तथा क्रिओल वहाँ की आम बोलचाल की भाषा है।

विद्यालयों में अंग्रेजी तथा फ्रेंच अनिवार्य विषय हैं, हिन्दी विषय अलग से लेना पड़ता है। महाविद्यालय स्तर पर महात्मा गाँधी संस्थान में हिन्दी भाषा और साहित्य के अध्ययन एवं शोध की व्यवस्था है।

इस द्वीप में हिन्दी सभी भारतीय भाषाओं की रीढ़ है। मॉरीशस की हिन्दी की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि भारत से बाहर वह हिन्दी साहित्य को एक नई गति दे पाई। रचना की संख्या और उसके स्तर दोनों रूपों में इतनी सशक्त बानगी भारत से बाहर देखने को कम

मिलेगी। मॉरीशस में विरचित हिन्दी साहित्य फ्रेंचभाषी 75 देशों में अनुवाद के माध्यम से अपनी धाक जमा रहा है। मॉरीशस की हिन्दी की दूसरी बड़ी सफलता यह रही है कि यहाँ विश्व हिन्दी सचिवालय की स्थापना हो चुकी है।

मॉरीशस में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में 'बैठिकाओं' की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। स्वतन्त्रता से पूर्व ये 'बैठिकाएँ' हिन्दी शिक्षण और उसके माध्यम से भारतीयों के बीच एकता और जागरण के केन्द्र रहीं। मॉरीशस के राष्ट्रपिता सर शिवसागर रामगुलाम सहित प्रायः सभी हिन्दी/हिन्दू नेता और समाज-सुधारक इन 'बैठिकाओं' में भाग लेते रहे हैं। मॉरीशस की स्वतन्त्रता में हिन्दी एक सफल माध्यम रही है।

मॉरीशस में अनेक हिन्दी लेखक हैं जिनमें अभिमन्यु 'अनत' प्रमुख हैं। इन्होंने कई उपन्यास लिखे हैं। 'लाल पसीना' इनका प्रसिद्ध उपन्यास है, जिसमें मॉरीशस के भारतीयों के जीवन का सजीव चित्रण किया गया है। श्री अनत कवि भी हैं। इनकी कविताओं में मजदूरों की विपन्नता और दुर्गति का तथा उनके शोषण एवं सामाजिक विषमताओं का चित्रण किया गया है-

"एक हाथ में गन्ना / दूसरे में गड़ासा / माथे पर पसीना / सिर पर अभाव की बोझिल गठरी / पीठ पर कोड़े से अंकित मालिक के लाल हस्ताक्षर / आँखों में प्रस्तुत ज्वालामुखी का धुँधलका / पेट में एक खाली कुआँ / तार-तार हुआ फेफड़ा / उलझी साँसें / गिरवी आत्मा / पैबन्द लगा वर्तमान / बारह अध्याय का यह इतिहास / आज भी अकुला रहा है।[2]"

मॉरीशस के अन्य प्रमुख कवि हैं- श्री सोमदत्त बादौरी, श्री मुनीश्वरलाल चिंतामणि तथा श्री ठाकुरदत्त पाण्डेय आदि। कवयित्रियों में श्रीमती भागवती देवी का सन् 1972 में 'भोजपुरी गीतों का संकलन' प्रकाशित हो चुका है।

श्री रामदेव धुरन्धर प्रसिद्ध उपन्यासकार एवं कहानीकार हैं। आपने बालकों के लिए रोचक कहानियाँ भी लिखी हैं। दीपचन्द्र विहारी, बृजलाल रामदीन, प्रेमचन्द्र मूली, भानुमति, सुचिता रामदीन, दयानन्द नेगी सरिता बुधू, माताबदल, राजेन्द्र अरुण, गिरिजानन्द रंगू, डॉ. ठाकुर दत्त पांडेय समेत अनेक रचनाकारों ने अपने ढंग से मॉरिशस में हिन्दी भाषा एवं साहित्य का संवर्धन किया। मॉरीशस में तीन बार विश्व हिन्दी सम्मेलन हो चुका है। 28 से 30 अगस्त 1976 में, दूसरा विश्व हिन्दी सम्मेलन, 2 से 4 सितम्बर 1993 में चौथा विश्व हिन्दी सम्मेलन

---

2. गूँगा इतिहास, अभिमन्यु अनत, समग्र कविताएँ, सम्पादक - डॉ. कमल किशोर गोयनका से उद्धृत।

और 18 से 20 अगस्त 2018 में 11वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन मॉरीशस की राष्ट्रभूमि पोर्ट लुई में आयोजित हुआ । इस सम्मेलन का मुख्य विषय 'हिन्दी विश्व और भारतीय संस्कृति' है । मॉरीशस के शिक्षामंत्री श्रीमती लीलादेवी टुकन ने स्वागत भाषण में कहा कि हिन्दी हमारे लिए केवल एक भाषा नहीं, बल्कि पूरा जीवन दर्शन है। इसमें उदारता, सहनशीलता एवं अहिंसा है। हिन्दी हमारी संस्कृति की संवाहिका है। हिन्दी को विश्व में उचित स्थान दिलाने के लिए हम मिलकर काम करेंगे। हिन्दी को विश्व भाषा बनाने में अप्रवासियों की अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका है । अपने राष्ट्र, अपनी संस्कृति और भाषा पर गर्व करने वाली भारत की पूर्व विदेश मंत्री सुषमा स्वराज जी ने सम्मेलन में कहा- "अब तक जितने विश्व सम्मेलन हुए, अधिकतर साहित्य पर केन्द्रित थे । लेकिन अगर भाषा की समझ, बोलियाँ समाप्त हो जायेंगी, तो इस साहित्य को पढ़ेगा कौन ? इस कविता को गायेगा कौन, इस साहित्य को भावी पीढ़ियों को सौंपेगा कौन । इसलिए आज आवश्यकता है भाषा को बचाने की और उसकी शुद्धता को बरकरार रखने की । इसलिए हमने 10वें विश्व सम्मेलन को भाषा पर केन्द्रित रखा । इस बार हमने सोचा कि सम्मेलन को भाषा से आगे के पड़ाव पर ले जाया जाय। इसलिए इस बार के 11वें विश्व सम्मेलन में विषय रखा 'हिन्दी विश्व और भारतीय संस्कृति' । भाषा का गौरव होने के साथ-साथ संस्कृति का गौरव जरूरी है। लेकिन भाषा लुप्त होने लगती है तो संस्कृति के लोप का बोध उसी दिन रख दिया जाता है।"

समापन समारोह को सम्बोधित करते हुए मॉरीशस के मार्गदर्शक मंत्री अनिरुद्ध जगन्नाथ ने कहा कि समय आ गया है कि हिन्दी को भी अन्य भाषाओं की तरह अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर उचित स्थान मिले। उन्होंने कहा कि भारत माँ है और मॉरीशस पुत्र है। माँ और पुत्र दोनों को मिलकर हिन्दी को विश्व में स्थापित करने के लिए भरपूर कार्य करने हैं।

रूस में हिन्दी

भारत एवं रूस की मित्रता बहुत पुरानी है। हिन्दी भाषा के प्रति रूस की जनता और रूसी विद्वानों का सहयोगात्मक दृष्टिकोण रहा है । रूस के हिन्दी विद्वानों, अलेक्सई वारान्निकोव आदि ने हिन्दी भाषा-भाषी विद्वानों के समकक्ष हिन्दी में स्तरीय अनुसंधान भी किया है । वारान्निकोव ने रामचरितमानस का रूसी में अनुवाद किया है । रूस के हिन्दी विद्वानों ने हिन्दी पाठकों के लिए हिन्दी में ही ग्रंथों का रचना की है। इन विद्वानों ने मुख्य रूप से हिन्दी के तीन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्य किया है। ये क्षेत्र हैं- हिन्दी व्याकरण, आलोचना और अनुवाद। अनुवाद में हिन्दी से रूसी और रूसी से हिन्दी अनुवाद समाहित हैं।

डॉ. जात्मन दीमिशित्स ने हिन्दी का प्रामाणिक व्याकरण लिखा है । इसी प्रकार डॉ. ओ.ग. उलत्सिफेरोव ने हिन्दी में क्रिया और हिन्दी वाक्य विन्यास का प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार प्रो. येगेनी चेलिशेव ने हिन्दी और भारतीय साहित्य पर जो शोध कार्य किया है, वह अपने आप में अप्रतिम है। 'भारतीय साहित्य की समस्याएं' शीर्षक अपनी पुस्तक में चेलिशेव ने भारतीय पुनर्जागरण काल से लेकर बीसवीं सदी के सातवें दशक तक की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन किया है, जो आज भारतीय विश्वविद्यालयों में भारतीय साहित्य के अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए एक महत्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रंथ है। रूस के हिन्दी आलोचकों में अलेक्सान्द्र सेन्केविच की रचना 'समकालीन हिन्दी साहित्य' एक प्रामाणिक कृति है।

आज के रूस के हिन्दी विद्वानों में प्रो. ल्युदमीला खखलोवा, डॉ. इन्दिरा गजियेवा, प्रो. सेर्गेय सेरिब्रियानी, डॉ. अलेक्सान्द्र सिर्गोस्की, डॉ. ग्युजेल स्रेलकोवा, डॉ. तत्याना दुब्यान्सकाया, अनस्तसीया गूरिया आदि के नाम प्रमुख हैं। इन विद्वानों ने अपनी कृतियों से हिन्दी विद्वानों एवं पाठकों की सोच को एक नई दिशा दी है। आज भी रूस में हिन्दी के प्रति विशेष लगाव है । आज रूस में पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। इतना ही नहीं, रूसी के विद्वानों ने हिन्दी को बहुत कुछ दिया है। जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केन्द्र, मास्को के प्रोफेसर डॉ. रायवरपु श्री सर्राजु की हिन्दी सेवाएँ भी उल्लेखनीय हैं। रूस में टी.वी. पर हिन्दी फिल्में दिखाई जाती हैं। साथ ही सोवियत संघ, सोवियत नारी, सोवियत भूमि और स्पुतनिक आदि पत्रिकाएँ भी हिन्दी में छपती हैं।

जर्मनी में हिन्दी

जर्मनी के फ्रांकफुर्त विश्वविद्यालय में हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन होता है । इसी प्रकार हाईडेलवर्ग विश्वविद्यालय में दक्षिण एशिया संस्थान में हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन होता है। पूर्व में जर्मनी में हिन्दी पढ़ाने वाले अधिकांश में संस्कृत विद्वान् होते थे। इधर कुछ वर्षों से बदलाव आया है। हाइडेलवर्ग में भाषाविज्ञानी प्रोफेसर फरमेअर ने हिन्दी प्रचार-प्रसार में अग्रणी भूमिका निभाई है । एक पाठ्य पुस्तक का निर्माण प्रो. आर्येन्द्र शर्मा तथा प्रो. फरमेअर के संयुक्त प्रयास से हुआ है। यहाँ पर हिन्दी के प्रचार-प्रसार में प्रो. इन्दुप्रकाश पाण्डेय तथा श्रीमती हाइडी पाण्डेय का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है।

भारत और जर्मनी का सांस्कृतिक सम्बन्ध उल्लेखनीय है । 19वीं शताब्दी में जर्मन विद्वानों का योगदान इंडोलौजी के क्षेत्र में महान् था। उस समय कई जर्मनी विश्वविद्यालयों में

इंडोलॉजी विषय को स्थापित किया गया। आजकल इस विभाग के अन्तर्गत संस्कृत तथा प्राकृत के साथ हिन्दी का भी अध्यापन होता है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी की पढ़ाई पिछले पाँच दशकों से व्यवस्थित रूप में चल रही है। 1962 में हाइडेलवर्ग विश्वविद्यालय में दक्षिण एशिया संस्थान की स्थापना हुई। इस संस्थान में शुरू में चार प्रोफेसर नियुक्त हुए- डॉ. इन्दुप्रकाश पाण्डेय, प्रो. आर्येन्द्र शर्मा, प्रो. फेरमेयर और श्रीमती तैयब अली। जर्मनी के लगभग बीस विश्वविद्यालयों में हिन्दी अध्ययन चल रहा है।

सहायक आचार्य
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9453244602

अनुवाद की तकनीक और समस्याएं

—सुनिल कुमार—

अनुवाद भाषिक कला है और किसी भाषा-रचना को दूसरी भाषा में पुनर्सृजित करने का कौशल भी है। अनुवाद का दूसरा यथार्थ यह भी है कि भाषा विज्ञान से सम्बद्ध होकर मशीन से संभव होने के कारण अनुवाद आधुनिक समय में जितनी कला है, उतना ही विज्ञान भी है। अनुवाद की राह में समस्याओं के कई पठार भी आते हैं, जिन्हें अनुवादकर्ता को अपने ज्ञान और सूझ-बूझ से तोड़ना पड़ता है। अनुवाद ठैठ अर्थ में नामालूम को मालूम करने की छटपटाहट में उपजा भाषा कर्म है। इसमें एक भाषा-संरचना के अभिप्राय को दूसरी भाषा-संरचना में फिर से रचा जाता है। अतः अनुवाद में दो भाषाओं के बीच संवाद और संतुलन जरूरी होता है। अनुवाद सरल नहीं अपितु कठिन भाषा कर्म है। अनुवाद की प्रक्रिया इस कठिन कर्म को संभव बनाती है। अनुवाद की प्रक्रिया का मतलब अनुवाद की विधि विश्लेषण से है। इसमें भाषा विज्ञान की भूमिका विशिष्ट होती है।

अनुवाद प्रक्रिया के संबंध में यूरोप के मनोवैज्ञानिक बाथगेट ने अपनी पुस्तक Studies of Translation Models I & II, The Incorporated Linguistic (1980) में अनुवाद के प्रक्रियात्मक पक्ष पर व्यापक नज़रिए से विचार किया है। बाथगेट अनुवाद के लिए प्रस्तुत किसी भी पाठ (स्रोत भाषा पाठ) को पढ़ना और उसे समझना जरूरी मानते हैं। यह अनुवाद का आरम्भिक चरण होता है। इस चरण में अनुवादकर्ता मूलपाठ को लेकर अपनी मानसिक तैयारी करता है। उसे पढ़ता है और उसके साथ अपने मानस को जोड़ने का प्रयास करता है। समन्वय के इस चरण में मूल पाठ के शब्द, पदबंध, वाक्य-रचना, शैली, भाव, प्रभाव आदि सभी पक्षों के बारे में एक सामान्य समझ निर्मित किया जाता है, ताकि अनुवाद की मानसिकता बने। इस तरह अनुवाद से पूर्व मूलपाठ और अनुवादकर्ता के बीच परिचय का व्यापार घटित होता है। बाथगेट के अनुवाद प्रक्रिया-प्रारूप को निम्नांकित आरेख के माध्यम से प्रस्तुत किया है-

मूल भाषा पाठ
↓
समन्वय
↓
विश्लेषण
↓
बोधन
↓

पारिभाषिक अभिव्यक्ति
↓
पुनर्गठन
↓
पुनरीक्षण
↓
पर्यालोचन
↓
लक्ष्य भाषा पाठ

हिंदी में अनुवाद शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अनुवाद प्रक्रिया को व्यावहारिक नजरिए से देखते हुए अनुवाद प्रक्रिया के पाँच चरण मानते हैं-

पाठ-पाठन
↓
पाठ-विश्लेषण
↓
भाषान्तरण
↓
समायोजन
↓
मूल से तुलना

डॉ. जी. गोपीनाथ ने एक अनुवादक के गुणों को 'अपेक्षा' माना है और इसे तीन भागों में बाँटकर विश्लेषित किया है। वे निम्न हैं-

1. स्रोत एवं लक्ष्यभाषाओं पर पर्याप्त अधिकार
2. विषय का सम्यक् ज्ञान
3. मूल लेखक के साथ सहानुभूति ।

इस प्रकार अनुवाद में मूल की अर्थ-छटा, अभिव्यक्ति कौशल, शैली, संदेश, सांस्कृतिक विशिष्टता आदि को रूपायित करना पड़ता है। यह लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुरूप करना पड़ता है, जिससे के वह अनुवाद न लगे। तभी अनुवाद रचना की अनुरचना होने को सार्थक कर पाता है। वैसे भी अनुवाद कला की सफलता इसी में है कि अनुवाद अनुवाद न लगे।

अनुवाद की समस्या द्विभाषकीय है, इसके लिए उन दो भाषाओं का पूर्ण ज्ञान अपेक्षित है, जिससे और जिसमें अनुवाद होता है। यह समस्या मूलतः दुभाषिए की है। इसका तात्पर्य यह है कि अनुवादक का दो भाषाओं पर इतना अधिकार होना चाहिए कि वह दोनों पक्षों का ठीक-ठीक ज्ञान रखते हुए संबोधित कर सके और समझा सके।

भाषा वैज्ञानिक की दृष्टि से अनुवाद की समस्या के दो पहलू हैं। एक है द्विभाषकीय रूपान्तरण और दूसरा है भाव रूपान्तरण। दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैं। द्विभाषकीय शैली से किया हुआ अनुवाद शुद्ध रूप में शब्दानुवाद होता है, जिसमें तुलनात्मक भाषा विज्ञान महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अनुवाद करते समय अर्थ का अनर्थ तब ज्यादा ही होता है जब हम शब्दशः अनुवाद कर देना चाहते हैं। हर भाषा की अपनी खास प्रकृति होती है। इसलिए जिस भाषा में हम अनुवाद कर रहे होते हैं, उसकी प्रकृति, उसके मिज़ाज का रक्षण आवश्यक हो जाता है। शब्दशः अनुवाद एक खतरनाक बीमारी जैसा है, क्योंकि एक भाषा के शब्द हू-ब-हू दूसरी भाषा में अक्सर नहीं मिलते। कई बार शब्द केवल शब्द मात्र नहीं होते, उनके साथ एक अवधारणा जुड़ी होती है। उन अवधारणाओं का अनुवाद किसी भी विदेशी भाषा में, जहाँ वैसी किसी अवधारणा का अस्तित्व न हो, मुश्किल ही नहीं बल्कि असंभव कार्य है। एक अच्छे अनुवादक को भाषा की इस सीमा की मर्यादा को समझनी होगी। प्रायः अनुवाद करते समय निम्न समस्याएं होती हैं-

1. उचित शब्द के चुनाव की समस्या
2. शब्द प्रयुक्त की समस्या
3. स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की भिन्न प्रकृति की समस्या
4. क्लिष्ट भाषा के प्रयोग की समस्या
5. पारिभाषिक शब्दावली की समस्या
6. विषय के ज्ञान की समस्या
7. अनुवाद के अर्थ से अनर्थ की समस्या
8. वर्तनी अशुद्धि की समस्या

अतः कोई अनुवादक इन उपर्युक्त बातों को ध्यानपूर्वक समझकर इनको आत्मसात कर सके तो वास्तव में वही सफल अनुवादक कहलाएगा और ऐसे अनुवाद को ही सफल अनुवाद कहा जा सकता है। यदि अनुवादक को स्रोत भाषा का अच्छा ज्ञान होगा तो वह उसके तथ्य या कथ्य को भली-भाँति समझेगा और यदि अनुवादक का लक्ष्य भाषा पर अधिकार है तो वह लक्ष्य भाषा में किए गये अनुवाद में भाषा के प्रवाह को बनाए रखेगा। समस्याएं हर जगह होती है, परन्तु उन समस्याओं के निराकरण के सूत्र को जानकर एक अच्छा अनुवादक बना जा सकता है।

सहायक कुलसचिव
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 7007270180

भारत की भाषा समस्या

—डॉ. सुशील कुमार सिंह—

भूमण्डलीकरण ने भाषाओं के क्षेत्र में एक संसार व्यापी संकट खड़ा किया है। वह संकट है अंग्रेजी के गुपचुप इंटर्नेटी रास्ते विश्वभाषा और बाकी भाषाओं को हाशिए पर डालने का। इसे लेकर पूरे यूरोप में और अन्यत्र भी चिंता व्याप्त है। जरूरत इस बात की है कि हम संकट और उसके फलितार्थों को स्पष्टता से समझें। इस समझ से फिलहाल हम काफी दूर हैं क्योंकि हमारा अंग्रेजी का सक्षम ज्ञान और उत्तर-औपनिवेशिक समय में उस पर आसानी से अधिकार हमें नये अवसर और नई समस्याएं देता नजर आ रहा है। ऐसे में हमें बहुभाषिक इतिहास, संस्कृति और परम्परा के लंबे और गहरे, समृद्धकारी अनुभव के बल पर भारत की भाषाएं बचाने के लिए एक विश्वव्यापी अभियान छेड़ने के लिए पहल करना चाहिए।

1800 ई. से पूर्व का इतिहास इस बात का साक्षी है कि यद्यपि यहाँ पर राजनैतिक स्वार्थों के लिए हिन्दू-हिन्दू, हिन्दू-मुसलमान अथवा मुसलमान-मुसलमान परस्पर लड़ते-भिड़ते रहे, पर उनके बीच भाषा का प्रश्न न कभी उठा और न इसके लिए कभी कोई संघर्ष ही किया गया । किन्तु 1623 ई. में जो पश्चिमी विदेशी कम्पनी अपने व्यापार के लिए इस देश में आई थी तथा जिसने अपनी कुटिलनीति के सहारे 18वीं सदी तक सम्पूर्ण देश को अपने कब्जे में कर लिया था, उसी कूटनीति के उत्तराधिकार में इसने भाषा के प्रश्न को पाया है। उन्हीं द्वारा सर्वप्रथम 1800 ई. में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के साथ ही यहाँ पर भाषा समस्या की भी स्थापना की गई थी। प्रारम्भ में इस देश की दो प्रमुख जातियों के बीच पृथक् संस्कृति तथा पृथक् भाषा का जो बीज राष्ट्रीय एकता की शक्ति का विभाजन करने के लिए लार्ड वेलेजली द्वारा बोया गया था, वही लार्ड मैकाले द्वारा पोषण पाकर सुरसा के मुख की भाँति बढ़ता ही चला गया। उसकी जड़ें इतनी गहरी तथा मजबूत हो गईं कि इन दो जातियों को परस्पर लड़ाकर व देश का विभाजन कराकर भी न उखड़ी।

भारतीय संविधान के सम्मुख अन्य महत्त्वपूर्ण विषयों में राष्ट्रभाषा या संघीय भाषा का प्रश्न भी था। यह प्रश्न अपेक्षाकृत कठिन एवं जटिल था, क्योंकि भारत की सभी प्रादेशिक भाषाएं एक दूसरे की प्रतिद्वन्द्वी बनकर इस क्षेत्र में आने को उत्सुक थीं। कारण यह था कि किसी भी भाषा को बोलने वाला वर्ग उस भाषा को अपनी संस्कृति का एक अभिन्न अंग मानता है। फलतः वह भाषा के मामले को अपनी सामूहिक प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेता है। प्रत्येक भाषा को एक भाषायी वर्ग की संस्कृति की अभिव्यक्ति के रूप में प्रिय माना जाए तो भी एक सत्तात्मक राज्य में आधुनिक समाज का रहन-सहन और उसकी आवश्यकताएँ ऐसी हैं

कि विभिन्न भाषा-भाषी वर्गों के विचार विनिमय और राष्ट्रीय कामकाज में एक भाषा को माध्यम बना लेना जरूरी हो जाता है। किस भाषा को माध्यम बनाया जाए? इस प्रश्न में सब भाषायी वर्गों की दिलचस्पी होती है। इसलिए संविधान सभा के सामने यह एक बहुत बड़ी समस्या थी कि किस ऐसी भाषा को माध्यम बनाया जाए, जो देश की राजनीतिक एकता को अक्षुण्ण रख सके और भारत की मिली-जुली संस्कृति के सब अंगों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके।

संसार के कई बहुभाषा-भाषी देशों में पूरे देश के लिए एक सामान्य भाषा विकसित करने में दुखदायी और त्रासद स्थितियों से गुजरना पड़ा। हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने बहुत सूझ-बूझ से भारत की भाषा-समस्या को सुलझाने का प्रयास किया है और एक सीमा तक सुलझा भी लिया था, जिसके फलस्वरूप संविधान के अनुच्छेद 343(1) द्वारा यह घोषणा की गई है कि संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि युक्त हिंदी होगी तथा सरकारी काम-काज में भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप का उपयोग होगा। किन्तु हिंदीत्तर भाषी भारतीयों की असुविधा और असंतोष को दृष्टिगत रखते हुए संविधान के अनुच्छेद 343(1) में यह प्रावधान भी किया गया कि इस धारा के अनुच्छेद (1) के होते हुए भी संविधान लागू होने के 15 वर्ष पर्यन्त (26-01-1965) अंग्रेजी भाषा सरकारी कामकाज में पूर्ववत चलती रहेगी तथा इस पंद्रह वर्षीय अवधि को लोकसभा बढ़ा भी सकेगी।

इस प्रकार भाषा विषयक समस्या को सुलझाने के लिए जो संवैधानिक व्यवस्था की गयी, उसमें उदारता से काम लिया गया तथा सभी भारतीय नागरिकों के हितों को ध्यान में रखते हुए आवश्यक निर्णय लिये गये। किन्तु हिंदी के राजभाषा के पद पर पूर्णतः आसीन होने से पूर्व ही राष्ट्रपति महात्मा गाँधी की मृत्यु तथा दिनांक 07 अगस्त 1959 को राज्यसभा के मनोनीत सदस्य फ्रेंक एंथोनी की हिंदी विरोधी आपत्ति के उत्तर में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू की संसद में यह घोषणा की- "जैसा मैंने कहा, किसी प्रकार की जबरदस्ती नहीं होनी चाहिए, दूसरी बात की अनिश्चित काल तक, मुझे नहीं मालूम कब तक, अंग्रेजी को अतिरिक्त सहयोगी भाषा के रूप में रखना चाहिए और मैं रखूँगा..... अंग्रेजी को विकल्प भाषा के रूप में बनाये रखने का निर्णय मैं हिंदी भाषी लोगों के हाथों में नहीं, अहिन्दी भाषी पर छोड़ूँगा।" ने राज्यभाषा के रूप में हिंदी के सामने विकट समस्या खड़ी कर दी।

यदि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी 14 सितम्बर 1949 तक जीवित रहते तो वर्तमान हिंदी के स्थान पर 'हिंदवी' या 'हिन्दुस्तानी' अर्थात् आम बोलचाल की भाषा भारत की राजभाषा होती। इसके परिणाम स्वरूप दक्षिण भारत में भी राजभाषा के रूप में हिंदी का इतना तीव्र विरोध नहीं होता।

इस प्रकार तमाम पक्ष को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि हिंदी की एक नहीं, कई समस्याएं हैं। भारत में भाषा की राजनीति बहुत उलझी हुई है, राजनीति की भाषा में उससे भी अधिक दुरूह है। फलस्वरूप हंदी की समस्याएं असाध्य विसंगतियों में बदल गई हैं और विसंगतियाँ विडम्बनाओं में। संवैधानिक दृष्टि से हिंदी हमारे संघीय गणतन्त्र की संवैधानिक राजभाषा, है, किन्तु संविधान की उद्घोषणा के चालीस वर्ष बाद भी सहयोगी राजभाषा-अंग्रेजी के प्रयोग की अवधि अनंतकाल के लिए आरक्षित लगती है। पढ़ने-पढ़ाने में भी हिंदी पिछड़ती जा रही है। आने वाली पीढ़ियों के लिए इस बीच एक ओर अंग्रेजी का अभिजात वर्चस्व बढ़ रहा है, दूसरी ओर प्रादेशिक भाषाओं का ममत्व और अंधाधुंध हिंदी विरोध। राष्ट्रीय सम्पर्क भाषा और संघ की राजभाषा के रूप में हिंदी का भविष्य अंधे गलियारों में भटक रहा है। हिंदी के लिए राजपथ बहुत पीछे छूट गया है, किन्तु हिंदी का जनपथ और जनमानस क्यों विपन्न और हताश होता चला जा रहा है? हिंदी की दशा देख भारत-भारती फिर से पूछ रही है-

"हम कौन थे क्या हो गये,
और क्या होंगे अभी।"

सन्दर्भ-

1. गिरिराज किशोर, एक जनभाषा की त्रासदी
2. चन्द्रवर्ती राजगोपलचारी, इंडिया फायनान्स
3. ओम प्रकाश तिवारी, वातायान-जुलाई-सितम्बर 1998 अंक
4. शंकर दयाल सिंह, हिंदी राष्ट्रभाषा, राजभाषा, जनभाषा
5. महिपाल सिंह, देवेन्द्र सिंह, विश्व बाजार में हिंदी
6. डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा, राजभाषा हिंदी अतीत, वर्तमान और भविष्य
7. डॉ. कृष्ण मधोक, भारत की सम्पर्क भाषा।

अतिथि प्राध्यापक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8005304374

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति एवं विकास

—डॉ॰ रवि गुप्त मौर्य—

प्राचीन हिन्दी शब्द की निष्पत्ति सिन्धु-सिंध से हुई है, क्योंकि ईरानी भाषा में 'स' को 'ह' बोला जाता है। इस प्रकार हिन्दी शब्द सिन्धु से व्युत्पन्न है। 'हिन्दी' वस्तुतः फारसी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है- हिन्दी का या हिन्द से सम्बन्धित है। वस्तुतः फारसी में हिन्द शब्द है। अफगानिस्तान के बाद सिन्धु नदी के इस पार भारत के पूरे इलाके को प्राचीन फ़ारसी साहित्य में 'हिन्द' या 'हिन्दुश' के नामों से पुकारा गया तथा हिन्द के किसी भी वस्तु या भाषा को 'हिन्दीक' कहा गया, जिसका अर्थ है 'हिन्द का' या 'हिन्द से'। यही 'हिन्दीक' शब्द अरबी से गुजरते हुए ग्रीक में 'इण्डिके' या 'इण्डिका', लेटिन में 'इण्डेया' तथा अंग्रेजी में 'इण्डिया' बन गया। अरबी एवं फ़ारसी साहित्य में भारतीय बोली को 'ज़ुबान-ए-हिन्द' कहा गया है। समय के साथ हिंद शब्द सम्पूर्ण भारत का पर्याय बन गया। इसी हिन्द शब्द से हिन्दी शब्द बना। हिन्दी भाषा, इस शब्द का प्राचीनतम प्रयोग 'शरफुद्दीन यज्दी' के 1424 ई॰ के 'जफ़रनामा' में मिलता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भाषा के अर्थ में "हिन्दी" शब्द का प्रयोग 13वीं शताब्दी से पहले नहीं दिखता। तेरहवीं शताब्दी में भारतीय फ़ारसी कवि औफी (1228 ई॰) ने सर्वप्रथम हिन्द अर्थात् मध्य देश की भाषा के लिए हिन्दवी शब्द का प्रयोग किया। 13वीं-14वीं शताब्दी में भारतीय फारसी कवि अमीर खुसरो (1253 ई॰-1325 ई॰) ने उत्तर भारत की देशी भाषा के लिए 'हिन्दी' और 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग किया। उनकी प्रसिद्ध रचना 'खलिकबारी' में 'हिन्दी' शब्द पाँच बार और 'हिन्दवी' शब्द तीस बार आया है। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने काव्यग्रन्थ 'पद्मावत' की भाषा को 'हिन्दवी' कहा है। मुगलकाल में हिन्दी, हिन्दवी और हिन्दुस्तानी का अर्थ एक ही था।

हिन्दी भाषा का इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पुराना है। हिन्दी भाषा का जन्म संस्कृत भाषा से ही हुआ है। संस्कृत भारत की प्राचीनतम भाषा है, जिसे आर्य-भाषा या देव-भाषा भी कहा जाता है। भारतवर्ष में आर्य-भाषा का इतिहास अविच्छिन्न रूप से लगभग 3500 वर्ष पुराना है। 3000 या 3500 ई॰ पू॰ से लगाकर आधुनिक काल तक आर्य-भाषा के विकास की रूपरेखा बनाई जा सकती है। अन्य किसी भी भाषा का इतना बड़ा इतिहास नहीं मिलता है। प्रमाण के रूप में वैदिक काल से आगे तक की प्राप्य वेद आदि विश्वसनीय प्रमाण-सामग्री है।

मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषाओं का काल 10वीं सदी के आस-पास समाप्त हो जाता है और वहीं से आर्य भाषाओं के विकास का काल प्रारम्भ होता है। इसीलिए हिंदी सहित सभी समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की उत्पत्ति का काल दसवीं सदी ही माना जाता है। यद्यपि इन भाषाओं के विकास के सूत्र आठवीं, नवीं शताब्दी के आस-पास से ही मिलने शुरु हो जाते हैं। पर 10वीं शताब्दी से पूर्व की स्थिति भाषा का संक्रमण-काल ही है। इसमें मध्यकालीन भाषा-अपभ्रंश के ह्रास और आधुनिक आर्य भाषाओं के विकास के चिह्न देखे जा सकते हैं। अतः संक्रमण-काल के बाद हिंदी का विकास दसवीं शताब्दी से स्वीकार किया जाना चाहिए।

आर्यभाषा का दो प्रकार से प्रसार हुआ– बोल-चाल की भाषा तथा धार्मिक ग्रन्थों की भाषा। बोलचाल की भाषा की सीमाओं के विस्तार के साथ-साथ संस्कृत भाषा धार्मिक और उच्च बौद्धिक जीवन की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। बौद्धों और जैनों की लोक-भाषा (पालि और प्राकृत) के आग्रह से भी संस्कृत का महत्त्व कम नहीं हुआ। संस्कृत ने अपनी सुरक्षा दो प्रकार से की, पहली तो शब्दों तथा व्याकरण के बाहरी रूप में प्राचीनता को बनाए रखकर और दूसरी भाषा का वाक्य-विन्यास और शब्दावली में अनुसरण करके।

भारतीय आर्य-भाषाओं का विकास क्रम इस प्रकार है- संस्कृत-पालि-प्राकृत- अपभ्रंश-हिन्दी व अन्य आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाएँ। चूंकि हिन्दी का जन्म संस्कृत से हुआ है, इसलिए संस्कृत-काल से लेकर आज तक के कुल 3500 से अधिक वर्षों के इतिहास को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता।

1. **प्राचीन भारतीय आर्यभाषा-काल (1500 ई० पू० से 500 ई० पू० तक)** – यह वैदिक एवं लौकिक संस्कृत का काल है। इस काल में वेदों, ब्राह्मणग्रन्थों, उपनिषदों के अलावा वाल्मीकि, व्यास, अश्वघोष, भाष, कालिदास तथा माघ आदि की संस्कृत रचनाओं का सृजन हुआ। इस एक हजार वर्षों के कालखण्ड को संस्कृत भाषा के स्वरूप व्याकरण नियमों में भिन्नता के आधार पर दो भागों में बाँटा जा सकता है।

   (क) **वैदिक संस्कृत (1500 ई० पू० से 1000 ई० पू० तक)**– मूल रूप से वेदों की रचना जिस भाषा में हुई उसे वैदिक संस्कृत कहा जाता है। ऋग्वेद अब तक की ज्ञात प्राचीनतम कृति है। ऋग्वेद से पहले किसी भाषा के विद्यमान होने का प्रमाण अभी तक नहीं मिला है, क्योंकि ऋग्वेद से पहले का कोई भी ग्रन्थ लिखित रूप में आज तक प्राप्त नहीं हुआ है। इससे यह सहज अनुमान होता है कि सम्भवतः आर्यों की सबसे प्राचीन भाषा ऋग्वेद की ही भाषा है, जो कि वैदिक संस्कृत है।

ब्राह्मण ग्रन्थ और उपनिषदों की रचना भी वैदिक संस्कृत में हुई है। इनकी भाषा में पर्याप्त अन्तर है।

(ख) **लौकिक संस्कृत (1000 ई० पू० से 500 ई० पू० तक)** – दर्शन ग्रन्थ तथा संस्कृत साहित्य के ग्रन्थ जिस भाषा में लिखित है, वह लौकिक संस्कृत है। वाल्मीकि, व्यास, अश्वघोष, भाष, कालिदास, माघ आदि की रचनाएँ इसी भाषा में है। वेदों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि समय के साथ-साथ वैदिक संस्कृत के स्वरूप में भी बदलाव हुआ। कात्यायन ने संस्कृत भाषा के बिगड़ते स्वरूप का संस्कार किया और इसे व्याकरणबद्ध किया। पाणिनि के नियमीकरण के पश्चात् की संस्कृत, वैदिक संस्कृत से बहुत-कुछ भिन्न है जिसे लौकिक संस्कृत कहते हैं। रामायण, महाभारत, नाटक, व्याकरण आदि ग्रन्थ लौकिक संस्कृत में निबद्ध हैं। इस काल के अंतिम पड़ाव तक आते-आते मानक अथवा परिनिष्ठित भाषा तो एक ही रही, किन्तु क्षेत्रीय स्तर पर तीन क्षेत्रीय बोलियाँ के रूप में विकसित हुई– (i) पश्चिमोत्तरीय, (ii) मध्यदेशीय और (ii) पूर्वी।

2. **मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा-काल (500 ई० पू० से 1000 ई० तक)** – यह पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा का काल है। वस्तुतः इस काल में लोक भाषा का विकास हुआ। भाषा का जो स्वरूप इस काल में सामने आया उसे 'प्राकृत' कहा गया। वैयाकरणों ने प्रकृत भाषाओं की प्रकृति संस्कृत को मानकर उससे प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति की है– "प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं तत् आगतं वा प्राकृतम्"। मध्यकाल में यही प्राकृत निम्नलिखित तीन अवस्थाओं में विकसित हुई –

(क) **पालि (500 ई० पू० से पहली ई० तक)** – प्राचीन संस्कृत कालीन बोलचाल की भाषा सरल होते-होते 500 ई० पू० के बाद काफी बदल गई, जिसे पालि नाम दिया गया। 'मगध' प्रान्त में बोले जाने के कारण श्रीलंका के लोग इसे 'मागधी' भी कहते हैं। पालि-भाषा में बोलचाल की भाषा का शिष्ट और मानक रूप प्राप्त होता है। धीरे-धीरे इन क्षेत्रीय बोलियों की संख्या तीन से बढ़ कर चार हो गई– (i) पश्चिमोत्तरीय, (ii) मध्यदेशीय, (iii) पूर्वी और (iv) दक्षिणी।

(ख) **प्राकृत (पहली ई० से 500 ई० तक)**– बोलचाल की भाषा और परिवर्तित हुई जिसे प्राकृत की संज्ञा दी गई। यह भाषा असंस्कृत थी और बोलचाल की आम भाषा थी, जो सहज ही बोली समझी जाती थी, जिस कारण इसे प्राकृत कहा गया। भाषा विज्ञानियों ने प्राकृत भाषा के पाँच भेद किये हैं–

(i) **शौरसेनी**– मथुरा के आस-पास मध्य देश की भाषा जिस पर संस्कृत का प्रभाव था।

(ii) **पैशाची**– सिन्ध क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा थी।

(ii) **महाराष्ट्री**– विदर्भ अर्थात् महाराष्ट्र की जन-भाषा थी।

(iv) **मागधी**– मगध देश में बोलचाल की भाषा थी।

(v) **अर्धमागधी**– कोशल प्रदेश की भाषा, जिसका जैन साहित्य में प्रयुक्त हुआ है।

(ग) **अपभ्रंश (500 ई० से 1000 ई० तक)**– भारतीय आर्य भाषा के मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में अपभ्रंश का प्रादुर्भाव हुआ। यह भाषा प्राकृत और आधुनिक भाषाओं के बीच की है। प्राकृत भाषा में सतत परिवर्तन होता रहा है। इस कड़ी में यह विशेष है कि लिखित प्राकृत का विकास रुक गया, परन्तु कथित प्राकृत का विकास सतत चलता रहा जिस कारण यह परिवर्तित होती गई। यही परिवर्तित भाषा 'अपभ्रंश' है। अपभ्रंश का अर्थ ही है बिगड़ी हुई भाषा।

अपभ्रंश के निम्नलिखित सात भेद मिलते हैं, जिनसे आधुनिक भारतीय भाषाओं तथा उपभाषाओं का जन्म हुआ–

(i) **शौरसेनी**– पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती बोली।

(ii) **पैशाची**– लंहदा, पंजाबी बोली।

(iii) **ब्राचड़**– सिन्धी बोली।

(iv) **खस**– पहाड़ी बोली।

(v) **महाराष्ट्री**– मराठी बोली

(vi) **मागधी**– बिहारी, बांगला, उड़िया और असमिया बोली।

(vii) **अर्ध मागधी**– पूर्वी हिन्दी बोली।

(घ) **अवहट्ट**– परवर्ती अपभ्रंश और विभिन्न प्रदेशों की विकसित बोलियों के बीच जो अपभ्रंश का स्वरूप था और जिसका उपयोग साहित्य लिखने के लिए किया गया उसे 'अवहट्ट' कहा गया। कुछ विद्वान यह मानते है कि अवहट्ट के मूल में शौरसेनी अपभ्रंश थी। इसका काल 900 ई० से 1100 ई० तक माना जाता है, परन्तु साहित्य में इसका प्रयोग 14वीं शताब्दी तक होता रहा है। अब्दुर्रहमान (संदेश रासक), दामोदर पंडित (उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण), ज्योदिरीश्वर ठाकुर (वर्ण रत्नाकर), विद्यापति (कीर्तिलता) आदि रचनाकारों ने अपनी भाषा को 'अवहट्ट' कहा है। 'अवहट्ट'

शब्द का सबसे पहला प्रयोग ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने अपनी पुस्तक 'वर्ण रत्नाकर' में 1325 ई॰ में किया था। कीर्तिलता में विद्यापति लिखते हैं – "देशी वचन सब लोगों को मीठा लगता है, इसलिए वैसे ही अवहट्ठा में लिखता हूँ।"[1]

इस प्रकार हिन्दी भाषा का विकास अपभ्रंश के शौरसेनी, मागधी और अर्धमागधी से हुआ है।

3. **आधुनिक भारतीय आर्यभाषा (1000 ई॰ से अब तक)**– यह हिन्दी एवं अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं का काल है। 1000 ई॰ तक आते-आते मध्य आर्यभाषा काल समाप्त हो गया और आधुनिक भारतीय भाषाओं का युग आरम्भ हुआ। अपभ्रंश के विभिन्न क्षेत्रीय स्वरूपों से आधुनिक भारतीय भाषाओं तथा उपभाषाओं का विकास हुआ। जैसे पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, लंहदा, पंजाबी, सिन्धी, पहाड़ी, मराठी, बिहारी, बांग्ला, उड़िया, असमिया और पूर्वी हिन्दी आदि का जन्म हुआ है। आगे चलकर पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, बिहारी, पूर्वी हिन्दी और पहाड़ी इन पाँच उपभाषाओं तथा इनसे विकसित कई क्षेत्रिय बोलियों जैसे ब्रजभाषा, खड़ी बोली, जयपुरी, भोजपुरी, अवधी व गढ़वाली आदि को समग्र रूप से हिन्दी कहा जाता है। समय के साथ-साथ इन भाषाओं में एक अधिक विकसित होकर अपने मानक और परिनिष्ठित रूप में वर्तमान और बहुप्रचलित मानक हिंदी भाषा के रूप में सामने आई।

राजनैतिक दृष्टि से यह समय बहुत ही अधिक अस्थिर था। इस कारण इस कालावधि में भाषा का उपयुक्त विकास नहीं हो सका। इस काल में भाषा के तीन रूप मिलते हैं– (i) अपभ्रंशाभास, (ii) पिंगल और (iii) डिंगल।

(i) अपभ्रंशाभास– इसमें सिद्धों, नाथों और जैनियों का धार्मिक साहित्य उपलब्ध होता है।

(ii) पिंगल– ब्रज (मध्य देश) एवं स्थानीय भाषा के मिश्रित रूप का नाम पिंगल है।

(iii) डिंगल– यह भाषा अपभ्रंश और राजस्थानी के मिश्रण से बना है। चारणों की वीरगाथात्मक रचनाओं की भाषा डिंगल ही है, जिसमें रासो ग्रंथ प्रमुख है।

इनके अतिरिक्त दो भाषा रूप और दृष्टिगोचर होते हैं। पहली पुरानी हिंदी रूप और दूसरी पुरानी मैथिली का रूप। इसमें अरबी-फारसी के शब्दों का प्राधान्य है और दूसरा रूप विद्यापति की रचनाओं में मिलता है। हिंदी की प्रारंभिक अवस्था के कारण इस काल में

---

1. देसिल बअना सब जन मिट्ठा, तं जैसन जम्पञों अवहट्ठा॥

विभिन्न बोलियों, उपबोलियों और उपभाषाओं का अंतर स्पष्ट नहीं होता, बल्कि प्रत्येक भाषा के रूप में अन्य रूपों का मिश्रण दिखाई देता है।

इस काल के मध्य में देशी भाषाओं का विकास हुआ। इसमें काव्य लिखा गया। काव्यग्रन्थों की टीकाएँ लिखी गई। लेकिन यत्र-तत्र गद्य की भी कुछ झलक मिलती है। इस काल में भाषा के दो मुख्य रूप विकसित हुए – ब्रज एवं अवधी। शौरसेनी अपभ्रंश से ब्रज भाषा का विकास हुआ। हिन्दी क्षेत्र के पश्चिमी हिस्से में भाषा का यही रूप व्यवहृत है। अर्द्धमागधी अपभ्रंश से अवधी भाषा का विकास हुआ। यह पूर्वी हिस्से में प्रचलित है। अवधी भाषा के विकास में तुलसीदास, कुतुबन, मंझन और जायसी ने विशेष येगदान किया है। ब्रज भाषा के विकास में सूरदास और नंददास आदि का योगदान सराहनीय है। अवधी का प्रसार इस काल के मध्य तक ही रहा। लेकिन ब्रज का प्रसार न केवल इस काल के मध्य तक रहा, अपितु समस्त हिन्दी क्षेत्र तक फैला। ब्रज में कविता आधुनिककाल में भी हुई। जगन्नाथदास रत्नाकर, सत्यनारायण कविरत्न में ब्रज का प्रभाव देखा जा सकता है। पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तक ने प्रारम्भ में ब्रज में ही कविता की है।

ब्रज और अवधी के अतिरिक्त हिन्दी की खड़ी बोली पर आधारित दक्खिनी रूप भी दिखाई देती है। दक्खिनी का विकास 12वीं शताब्दी के आस-पास उत्तर भारत में उर्दू के रूप में परिलक्षित हुआ।

इस काल के शासकों की दरबारी भाषा फारसी थी। फारसी का प्रचार-प्रसार इस युग में प्रमुखता से हुआ है। इसीलिए इस भाषा में अरबी, फारसी व तुर्की शब्दों ने अपना स्थान प्रमुखता से ग्रहण किया। धार्मिक साहित्य की प्रधानता के कारण इस काल की भाषा में संस्कृत एवं तत्सम शब्दों का भी प्रचलन प्रभावी रहा। अंग्रेजों, फ्रांसीसियों के संपर्क में आने के कारण इनकी भाषाओं के अनेक शब्द हिन्दी में स्थान पा गए।

अठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध के अन्त में और 19वीं शती के प्रारम्भ में हिन्दी भाषा का आधुनिक रूप प्रकट होने लगता है। अंग्रेजों ने इस समय अपने धर्म-प्रचार व शासन के लिए जनसाधारण में भाषा के प्रचार के लिए 1800 ई॰ में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की और वहाँ क्राइस्ट हिन्दी या हिन्तुस्तानी के अध्यापक नियुक्त हुए। लेकिन 1000 ई॰ से 1950 ई॰ तक का समय भाषा की दृष्टि से संक्रान्ति-काल था। इस दौरान हिन्दी का स्वरूप पूर्णतः दिखाई नहीं देता। इस समय मात्र भाषा का संपूर्ण निर्धारण का प्रयास भर दिखाई देता है। 1850 ई॰ के लगभग हिन्दी का स्वरूप और उस भाषा की दिशा निश्चित हुई। इस दिशा में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं उनके बाद के रचनाकारों ने गद्य-पद्य की भाषा

का नया रूप अपनाया। यही खड़ी बोली पर आधारित रूप था और इसे ही राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाया गया।

हिन्दी के स्वरूप के अतिरिक्त इस युग में अनेक सहभाषाओं, उपबोलियों और बोलियों का विकास हुआ। इस काल में भाषा में तत्सम शब्दों की प्रधानता थी। ज्ञान-विज्ञान के अनेक भाषाओं के शब्द समाहित हुए तथा संस्कृत शब्दावली निश्चित हुई। अन्य भारतीय भाषाओं, आर्यभाषाओं और आर्येतर भाषाओं की शब्दावली भी हिन्दी में ग्रहण की गई । समर्थ साहित्यकारों ने अनेक शब्द भी निर्मित किए।

भारतीय आर्य भाषा के सामञ्जस्य से अत्यन्त अद्भुत जातिगत, धर्मगत तथा संस्कृतगत समन्वय का भी शिलान्यास हुआ, जिससे विश्व को हिन्दू जाति, हिन्दू धर्म तथा हिन्दू संस्कृति के साथ-साथ वैदिक, संस्कृत तथा पालि आदि प्राचीन तथा हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला, पंजाबी एवं अन्य और अर्वाचीन, भारतीय भाषाएँ प्राप्त हुई।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची–

1. भारतीय-आर्य भाषा और हिन्दी; चाटुर्ज्या, सुनीतिकुमार; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,1977.
2. हिन्दी भाषा; तिवारी, भोला नाथ; किताब महल प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद,1966.
3. पृथवीराज रासो : भाषा और साहित्य; सिंह, नामवर; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2014.
4. हिन्दी साहित्य एवं भाषा के विविध आयाम; सिंह, जितेन्द्र कुमार; कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, 2016.

शोध-सहायक
दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध विभाग
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8009123271

हिन्दी और राजभाषा

—भगवान पाण्डेय—

भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से प्रत्येक प्राणी अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है। यह एक दैवी शक्ति है। अपनी भाषा की अभिव्यक्त करने की क्षमता के कारण ही मनुष्य अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ बनाता है। भाषा सम्प्रेषण का माध्यम है। इसीलिए कहा जाता है कि बहुत ही सोच-समझ कर मनोभावों को वाणी के माध्यम से अभिव्यक्त करना चाहिए। अपनी वाणी के प्रभाव से व्यक्ति अक्षय कीर्ति का अधिकारी बन सकता है। अवांछनीय वाणी अपयश एवं पतन का कारण बन सकता है। अतः उसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए जिसे हम अच्छी प्रकार जानते एवं समझते हों। इसी को दृष्टिगत रखते हुए स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त संविधान निर्माताओं ने हिन्दी को राजभाषा का दर्जा प्रदान किया क्योंकि भारत की आबादी की 45 प्रतिशत जनता हिंदी को बोलती एवं समझती थी।

राज्य या प्रशासन की भाषा को राजभाषा कहते हैं, जिसके माध्यम से प्रशासनिक कार्य सम्पन्न किए जाते हैं। यूनेस्को के विशेषज्ञों के अनुसार सरकारी काम-काज के लिए स्वीकार की गई भाषा को राजभाषा कहते हैं, जो शासन एवं जनता के बीच आपसी संपर्क के काम आती है। जब से प्रशासन की परम्परा प्रचलित हुई है तभी से राजभाषा का प्रयोग किया जा रहा है।

प्राचीन काल में भारत में संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश आदि भाषाओं का प्रयोग राजभाषा के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। राजपूत राजाओं के शासन काल में हिंदी भाषा का प्रयोग प्रशासनिक कार्यों के लिए किया जाता था। परन्तु भारत में मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित होने के बाद धीरे-धीरे हिंदी का स्थान अरबी-फारसी भाषाओं ने ले लिया। मराठों के राजकाज में भी हिंदी का प्रयोग किया जाता था। आज भी राजाओं, मुगल बादशाहों के आदेश हिंदी या हिंदी-फारसी में मिलते हैं। उक्त प्रसंग प्रमाणित करता है कि हिंदी राजकाज के कार्य में सक्षम है।

अंग्रेजों ने अपने शासन काल में तत्कालीन प्रचलित राजभाषा फारसी को ही महत्व प्रदान किया। उसी का परिणाम रहा कि स्वतन्त्रता पराप्ति के उपरान्त भी भारत के अधिकांश भागों की कचहरियों में फारसी का प्रयोग चलता रहा। अंग्रेजी शासन की बढ़ती प्रभुसत्ता को ध्यान में रखते हुए लार्ड मैकाले ने भारत की शिक्षानीति में आमूल-चूल परिवर्तन करते हुए अंग्रेजी को भारत की शिक्षा और प्रशासन की भाषा के रूप में स्थापित किया एवं अंग्रेजी

पूर्णरूपेण प्रशासन की भाषा बन गई। प्रशासन की भाषा बनने का परिणाम यह हुआ कि वह वाणिज्य, व्यापार एवं उद्योग-धंधों की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई।

इन्हीं घटनाक्रमों के बीच भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन भी शनैः शनैः आगे बढ़ने लगा एवं सम्पर्क भाषा की आवश्यकता के अनुरूप भारतीय भाषाओं और हिंदी को राष्ट्रभाषा एवं संपर्क भाषा के रूप में प्रचलित करने का प्रयास हुआ । अन्ततोगत्वा हिंदी सम्पर्क भाषा/राष्ट्रभाषा के रूप में सर्वाधिक बोली एवं समझी जाने के कारण राष्ट्रीय नेताओं ने राजभाषा के रूप में स्वीकृति प्रदान की।

किसी भी स्वाधीन देश के लिए जो महत्व उसके राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रगान का है, वही महत्व उसकी राजभाषा का है। प्रजातांत्रिक देश में जनता और सरकार के बीच भाषा की दीवार नहीं होनी चाहिए और शासन का काम जनता की भाषा में की जानी चाहिए। जब तक विदेशी भाषा में शासन होता रहेगा, तब तक कोई देश सही अर्थों में स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति अपनी भाषा में ही सहजता एवं सरलता से अपने भावों को अभिव्यक्त कर सकता है। विश्व के सभी स्वतंत्र देश और नवोदित राष्ट्र यह स्वीकार कर चुके हैं कि उनका विकास उनकी भाषाओं के माध्यम से ही संभव हो सका है। भारतीय संविधान सभा इन तथ्यों से परिचित थी । इसीलिए अंग्रेजी के समर्थकों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति और समृद्धि की वकालत करने के बाद भी आज हिंदी भाषा सम्पर्क भाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में भारत की पहचान बन चुकी है। वैसे तो हिंदी पूरे देश में समझी और बोली जाती है, लेकिन मुख्य तौर पर हिंदी पट्टी के राज्यों में यह भाषा आम बोलचाल, बाजार, व्यापार, राजनीति, पत्रकारिता, सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में संचार एवं संवाद का माध्यम है। स्वतंत्रता के बाद देश की अन्य 22 भाषाओं राष्ट्र के महत्त्वपूर्ण भाषाओं के रूप में संविधान की आठवीं अनुसूची में इसे स्थान दिया गया है। संविधान सभा ने काफी विचार-विमर्श के बाद 14 सितम्बर 1949 को हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्रदान किया ।

संविधान के अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा के रूप में हिंदी की स्थिति का उल्लेख किया गया है एवं राजभाषा के प्रयोग के लिए अधिकृत किया गया, साथ ही प्रारंभ के 15 वर्षों तक अंग्रेजी के प्रयोग को भी सभी शासकीय कार्यों के लिए मान्यता दी गई।

संघीय स्तर राजभाषा के रूप में अंग्रेजी का वर्चस्व आज भी कायम है। अंग्रेजी आज दक्षिण भारतीयों के विरोध के कारण ही नहीं, अपितु प्रशासकों एवं समाज के उच्च वर्ग के अपने निहित स्वार्थ के कारण, राजकाज के स्तर पर, उच्च शिक्षा के स्तर पर छाई हुई है। जब तक अंग्रेजी के साथ प्रतिष्ठा, पैसा, सत्ता और नौकरी से जुड़ा रहेगा, तब तक लोगों से अपेक्षा करना कि वे अपने बच्चों को अंग्रेजी न पढ़ाएं, एक तथ्य को अनदेखा करना है।

गाँधी जी ने अंग्रेजी के इस मोह से पिंड छुड़ाना स्वराज का अनिवार्य अंग माना था, किन्तु देश की विडम्बना है कि वह इस मोह से छूटने की बजाय प्रतिदिन उसमें जकड़ता जा रहा है। अंग्रेजी के लगभग 5 प्रतिशत लोग हिंदी के 45 प्रतिशत लोगों पर भारी पड़ रहे हैं। अतः न केवल राजनीतिक निर्णय के रूप में अपितु आम जन को भावात्मक एवं बौद्धिक विकास को ध्यान में रखते हुए स्वभाषा से जुड़ना चाहिए।

सरकारी कार्यालयों में सांविधिक प्रावधानों, अधिनियमों, नियमों एवं समय-समय पर जारी आदेशों के क्रम में राजभाषा का उत्तरोत्तर विकास हो रहा है एवं प्रत्येक वर्ष 14 सितम्बर को सरकारी कार्यालय प्रायः हिंदी दिवस, राजभाषा सप्ताह, पखवाड़ा एवं माह का आयोजन करते हैं किन्तु जितनी निष्ठा एवं ईमानदारी से हिंदी को अपनाते हैं, वह प्रश्न चिह्न खड़ा करता है।

यदि सरकारी कर्मचारी अपने राष्ट्रीय एवं भाषाई बोध से गर्वित होकर कष्ट उठाकर भी हिंदी को अपनाने का संकल्प कर लें तो राजभाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग संभव हो सकेगा।

राजभाषा परामर्शी
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 6387521396

राजभाषा का महत्व

—एम. एल. सिंह—

एक स्वतंत्र राष्ट्र की पहचान के लिए तीन बातों का होना जरूरी है—उसका एक राष्ट्रीय ध्वज हो, राष्ट्रीय गान हो एवं कोई राष्ट्रभाषा (राजभाषा) हो। इनमें से राष्ट्रध्वज को जनमानस की मान्यता मिल चुकी है, "गुरुदेव रवीन्द्रनाथ" की लेखनी से हमें राष्ट्रगान भी प्राप्त हो गया। राजभाषा के रूप में यूँ तो हिन्दी को स्वीकार किया गया है, परन्तु वास्तव में, क्या इसे राजभाषा का दर्जा प्राप्त हुआ है ?

यह एक यक्ष प्रश्न हमारे सामने खड़ा है।

राजभाषा पर चर्चा करने से पूर्व राजभाषा का अर्थ समझ लेना उचित होगा। सामान्यतः राजकाज की भाषा को ही राजभाषा कहते हैं अर्थात् जिस भाषा में राजकीय कार्य संपन्न किया जाता है, उसे राजभाषा कहते हैं। वस्तुतः यह प्रशासन की भाषा होती है।

किसी भी भाषा को राजभाषा का दर्जा दिये जाने के लिए उसमें चार बातों की आवश्यकता होती है—

1. उस भाषा का उद्गम उसी देश में होना चाहिए।

2. वह राष्ट्र की संस्कृति एवं साहित्य का प्रतिनिधित्व करती हो।

3. उस भाषा को बोलने एवं समझने वालों की संख्या अन्य भाषा-भाषियों की तुलना में अधिक होनी चाहिए।

4. वह भाषा सरल, सहज एवं वैज्ञानिक होनी चाहिए।

हिन्दी भाषा में ये सारी विशेषताएं पायी गयीं और इसलिए इसे राजभाषा के पद पर आसीन किया गया। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या मात्र राजभाषा का दर्जा दिये जाने से हमारे कर्तव्य की इतिश्री हो गयी या हम सच्चे मन से इसे स्वीकार कर पा रहे हैं ? यदि हम इस बात का विश्लेषण करें तो पाते हैं कि राजभाषा को अपना अभिप्रेत स्थान प्राप्त नहीं हो रहा है। उसके पीछे जो कारण हमारी समझ में आया है, वह है राजभाषा कार्यान्वयन हेतु अत्यंत लचीला रुख अपनाया जाना।

14 सितंबर, 1949 को हिन्दी को भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया। परन्तु साथ में अंग्रेजी के यथावत् प्रयोग को मान्यता मिल गयी। हिन्दी को मजबूत व सक्षम बनाने एवं कार्मिकों के हिन्दी प्रशिक्षण हेतु 15 वर्ष का समय निर्धारित किया गया जो वस्तुतः

हिन्दीत्तर भाषी राज्यों के लिए दिया गया था; ताकि वे इस अवधि के दौरान हिन्दी में कार्य करने की कुशलता प्राप्त कर सकें, जबकि हिन्दी भाषी राज्यों को तत्काल हिन्दी का प्रयोग आरंभ कर देना चाहिए था। परन्तु ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि कोई भी नयी शुरूआत चुनौतीपूर्ण होती है, जबकि इसके विपरीत बने-बनाये मार्ग पर चलना आसान होता है। इस प्रकार 15 वर्ष की अवधि समाप्त होने के उपरान्त भी राजभाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग दृढ़ता से आरंभ नहीं किया जा सका । इस बीच कुछ प्रान्तों में हिन्दी के विरुद्ध आवाज उठी, जिसका तत्कालीन प्रधानमंत्री ने यह कहकर समाधान कर दिया कि- "जब तक एक भी अहिन्दी भाषी राज्य नहीं चाहेगा, हिन्दी किसी पर थोपी नहीं जायेगी और इसके साथ अंग्रेजी में काम-काज चलता रहेगा।" दबाव और जल्दबाजी में लिया गया यह निर्णय राष्ट्र के लिए एक विडंबना बन कर रह गया, जिसका परिणाम हमारे सामने है।

अंग्रेजी आज भारत के अभिजात्य वर्ग की भाषा है, ठीक उसी प्रकार जैसे 12वीं और 13वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड के अभिजात्य वर्ग की भाषा फ्रेंच थी। अंग्रेजी भारत में अंग्रेजी राज्य की देन है तो फ्रेंच इग्लैण्ड में फ्रेंच राज्य की। जिस प्रकार भारत में आज हिन्दी को गंवारों की भाषा माना जाता है, उसी प्रकार इंग्लैण्ड में अंग्रेजी देहातियों और अनपढ़ों की भाषा मानी जाती थी। तथापि अंग्रेजों ने फ्रेंच के वर्चस्व को अधिक समय तक स्वीकार नहीं किया तथा फ्रेंच और लैटिन को उखाड़ कर अंग्रेजी के विकास में जी-जान से जुट गए।

हमें समझना होगा कि हिन्दी का महत्व अंग्रेजी से कहीं ज्यादा है। हिन्दी बहुत बड़े आकर्षण और व्यापार का केन्द्र है। हिन्दी से राष्ट्रीय अवधारणाएं और स्वाभिमान जुड़े हैं।

हिन्दी पर सबका अधिकार है। जब शासन के सभी कार्य जनभाषा में होंगे तो कार्यों में अधिक पारदर्शिता आएगी । शासक और शासित एक-दूसरे से बेहतर संवाद बना सकेंगे । हमारे देश में ईसा से 500 वर्ष पूर्व से लेकर 12वीं शताब्दी तक तक्षशिला, नालन्दा जैसे विश्व प्रसिद्ध विश्वविद्यालय थे। इनमें शिक्षा का माध्यम प्रमुखतः संस्कृत या भारतीय भाषाएं थीं। उस युग में भी ऐसे प्रमाण हैं कि विज्ञान का स्तर काफी उन्नत था।

भारत में मुगलों और मराठों के शासन काल में हिन्दी के प्रयोग के प्रमाण नासिक के संग्रहालय में मौजूद ताम्रपत्रों से मिलते हैं यानि हिन्दी आजादी से बहुत पहले भी प्रशासन और सांस्कृतिक आदान-प्रदान की भाषा के रूप में भलीभांति स्वीकृत रही है।

यह भी सच प्रमाणित हुआ है कि देवनागरी लिपि में संस्कृत और हिन्दी कम्प्यूटर पर अंग्रेजी की तुलना में अधिक ग्राह्य सिद्ध हुई है। कम्प्यूटर पर श्रुतलेख अर्थात् डिक्टेशन द्वारा

भी हिन्दी पत्र तैयार किये जा सकते हैं, पर क्या हमारा हिन्दी ज्ञान इस स्तर को प्राप्त कर सका है?

कार्यालयों में अधिकतर पिछले पत्राचार की नकल करते हुए कम से कम परिश्रम द्वारा काम चलाने का रवैया आम है। हिन्दी के विकास के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध यही सुविधाजीवी रवैया रहा है। हमें अधिक मेहनत करके अधिक तैयारी करनी होगी, जिससे कार्मिक लगभग पहले सी सुविधा से हिन्दी में भी काम कर सकें, सरलतम हिन्दी का प्रयोग चलाना होगा, भले ही शुद्धता से समझौता करना पड़े, जैसा कि व्यापार की प्रगति के लिए विज्ञापनों में अंग्रेजी का प्रयोग धड़ल्ले से जारी है और जिसका उपयोग टीवी और सिनेमा वर्ग भी कर रहा है। हम देखते हैं कि बाजार के दबाव के चलते हिन्दी फिल्मों व सीरियलों से विश्वभर में फैल जाने वाले सितारे भी व्यक्तिगत बातचीत और साक्षात्कार में अंग्रेजी में ही सम्मानपूर्वक कहते हैं कि हमें हिन्दी ठीक से नहीं आती। यह अब हमारी आदत में शुमार हो गया है, पर इसे बदलने के लिये जनता को ही पहल करनी होगी, वरना भाषा की दुर्गति की भी कोई सीमा नहीं रहेगी। इसी तरह राजभाषा के कठिन स्वरूप का मजाक बनाने वालों को यह अहसास दिलाना आवश्यक है कि तकनीकी भाषा की अपनी सीमाएं होती हैं। यह कहानी की तरह सरल नहीं होती और न ही बनाई जा सकती। इसे समझने के लिए लोगों को ही अपना हिन्दी ज्ञान निरन्तर उन्नत करना होगा। हिन्दी की प्रारंभिक शिक्षा क्षेत्रीय भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेजी माध्यम से इन्टरनेट पर सर्वसुलभ हो गई है। यह अलग समस्या है कि आज के भागदौड़ से भरे भौतिकता प्रधान जीवन में लोगों को भाषा या राष्ट्र के प्रति लगाव कम रहा है, तथापि हिन्दी अपना रास्ता स्वयं बनाती आगे ही बढ़ रही है एवं अपनी वैश्विक पहचान बना रही है। यह हिन्दी का गुण है, पर इसकी प्रगति में हमारा योगदान बढ़े तो प्रगति की गति तीव्र होगी, इसमें सन्देह नहीं।

देश अपना, भाषा अपनी, चिर स्वतन्त्र जल-थल अपने।
याद करो बापू की हसरत आज के भारत के सब सपने।
हां बुरा नहीं है कोई ज्ञान, इंगलिश जानो अरबी जानो।
पर अपनी मिट्टी अपनी होती है, हिन्दी को ही अपना मानो।
बंगला, मराठी, समझें, और मद्रासी सिंधी भी।
हिन्द देश की हिन्दी भाषा, जय हिन्द ही नहीं जय हिन्दी भी॥

केन्द्र सरकार के कार्यालयो में राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को उत्तरोत्तर बढ़ाने के लिए भारत सरकार सन् 1960 से निरंतर प्रयास कर रही है। हिन्दी के प्रयोग से सरकारी कामकाज हिन्दी में करना आसान हो जाता है। कुछ लोग हिन्दी में काम करना चाहते हैं, किन्तु संदर्भ साहित्य की कमी से वे ऐसा नहीं कर पाते। कुछ लोग शब्दों के लिए अटक जाते हैं, तो कुछ मानक वाक्यांशों के लिए। हिन्दी में काम करने के लिए सर्वप्रथम प्रशासनिक शब्द और वाक्यांश को जानना जरूरी होता है। इसके लिए कर्मचारियों को पुस्तकालयों में अधिकाधिक हिंदी-अंग्रेजी और अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश को पढ़ना चाहिए, जिससे शब्दों का ज्ञान हो सके और उन शब्दों का प्रयोग अपनी भाषा में कर सकें। हिन्दी एक विकासशील भाषा है। संघ की राजभाषा घोषित हो जाने के बाद यह शनैः-शनैः अखिल भारतीय रूप ग्रहण कर रही है। अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के संपर्क में आकर, उनसे बहुत कुछ ग्रहण करके और हिंदीत्तर भाषियों द्वारा प्रयुक्त होते-होते उसका यथासमय एक सर्वसम्मत अखिल भारतीय रूप विकसित होगा।

कार्यालयों में सरकारी कामकाज करने वाले कर्मचारियों का हिन्दी भाषा संबंधी दायित्व होता है, जिसमें कर्मचारी अभ्यास स्वरूप कार्यालय के उपस्थिति पंजिका में प्रतिदिन हस्ताक्षर, आकस्मिक व अर्जित छुट्टी, पत्रावली, रजिस्टरों, फोल्डरों, अपनी दैनिक डायरी, नोट/टिप्पणी, आंतरिक तथा वाह्य शासकीय और अर्द्धशासकीय पत्राचार आदि सभी प्रकार की छुट्टियों के आवेदन पत्र इत्यादि हिन्दी में भरें। ऐसा करने से हिन्दी में कार्य करना आसान होगा और ज्ञान प्राप्त होगा।

भाषा का प्रयोग शुद्ध हो, पत्र इत्यादि में कम से कम शब्दों का प्रयोग करना चाहिए, पत्र लिखते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अपनों से बड़ों को पत्र लिख रहा है या छोटों को। जिस तरह का पत्र लिख रहे हों, उसी तरह से शब्दों का चयन किया जाना चाहिए।

मनुष्य का जीवन इतना विशाल है कि उसके आचरण को रूप देने के लिए नाना प्रकार के ऊँच-नीच और भले-बुरे विचार, अमीरी और गरीबी, उन्नति और अवनति इत्यादि सहायता पहँचाते हैं। पवित्रता-अपवित्रता जो कुछ जगत में हो रहा है वह केवल आचरण के विकास के लिए हो रहा है। अन्तरात्मा वही काम करती है जो बाह्य पदार्थों के संयोग का प्रतिबिम्ब होता है। जिनको हम पवित्रात्मा कहते हैं, क्या पता है, किन-किन कूपों से निकलकर वे अब उदय को प्राप्त हुए हैं।

भाषा ही मनुष्य के सभ्य आचरण का स्वरूप प्रदान करती है, उसमें कोई ध्वनि नहीं है। इसकी ध्वनि अन्तःकरण के कानों से सुनाई देती है। यह सभ्य आचरण राग की भाँति मधुर

प्रभाव उत्पन्न करता है। किसी व्यक्ति की मधुर वाणी में सदाचार का माधुर्य घुला रहता है। विनय, दया, प्रेम, उदारता आदि गुणों से सभ्याचरण प्रकट हो जाता है, इन सात्त्विक गुणों के द्वारा वह दूसरों के मन को जीत लेता है। अत: इन गुणों को सभ्य आचरण का मौन व्याख्यान कहा जाता है। जो मुख से कुछ न कहने पर भी व्यवहार से सब कुछ कह देता है, उसका प्रभाव चिरकाल तब बना रहता है। सदाचरण आत्मा पर सीधा प्रभाव डालता है और धीरे-धीरे यह मनुष्य की आत्मा को अपने रंग ले लेता है, अर्थात् अपनी ही भाँति मनुष्य की आत्मा को भी निष्कलंक एवं सेवा के लिए समर्पित बना देता है।

देश की भाषा का उसकी संस्कृति से गहरा सम्बन्ध होता है। संस्कृति यद्यपि परम्परागत होती है तो भी समय के अनुसार उसमें परिवर्तन और विकास होता रहता है। जैसे-जैसे विज्ञान की प्रगति होती है, वैसे-वैसे संस्कृति की प्रगति भी होती रहती है। जब कोई देश वैज्ञानिक प्रगति करता है तो उसका प्रभाव उस देश की संस्कृति पर अवश्य पड़ता है। जब देश में विज्ञान के नये-नये आविष्कार होते हैं, तो उसके प्रभाव से उस देश की संस्कृति में अनेक परिवर्तन आते हैं। संस्कृति के उन परिवर्तनों को शब्दों के द्वारा व्यक्त करने के लिए भाषा में भी नया परिवर्तन होना आवश्यक होता है। भाषा में जो प्रयोग प्राचीन काल से चले आ रहे हैं, वे नये सांस्कृतिक परिवर्तनों को व्यक्त करने में समर्थ नहीं हैं। नित्य-प्रति संस्कृति में हुए परिवर्तनों को भाषा द्वारा व्यक्त करने के लिए भाषा में नये-नये प्रयोगों, नये-नये शब्दों की खोज का कार्य होना बहुत आवश्यक है, जिससे बदलते हुए नये भावों को उचित रूप से व्यक्त किया जा सके।

आप भी सारे विश्व में हिन्दी का परचम लहराओ
हिन्दी को अभिमान से अपनाओ
हिन्दी को प्रेम से गले लगाओ
हिन्दी को ऊँचा स्थान दिलाओ
और उसे खोया हुआ सम्मान वापस दिलाओ।

वरिष्ठ सहायक (प्रशासन-प्रथम)
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9198241794

हम और हिंदी

—रीना पांडेय—

एक भाषा के रूप में हिंदी न सिर्फ भारत की पहचान है बल्कि यह हमारे जीवन मूल्यों, संस्कृति एवं संस्कारों की सच्ची संवाहक, संप्रेषक और परिचायक भी है। बहुत सरल, सहज और सुगम भाषा होने के साथ हिंदी विश्व की संभवतः सबसे वैज्ञानिक भाषा है जिसे दुनिया भर में समझने, बोलने और चाहने वाले लोग बहुत बड़ी संख्या में मौजूद हैं। यह विश्व में तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है जो हमारे पारम्परिक ज्ञान, प्राचीन सभ्यता और आधुनिक प्रगति के बीच अब एक सेतु भी है। हिंदी भारत संघ की राजभाषाओं में से एक होने के साथ ही ग्यारह राज्यों और तीन संघ शासित क्षेत्रों की भी प्रमुख राजभाषा है। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित अन्य इक्कीस भाषाओं के साथ ही राष्ट्रीयता हेतु भी हिंदी का एक विशेष स्थान है।

देश की स्वतंत्रता के उपरान्त अब तक हिन्दी ने कई महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। भारत सरकार द्वारा विकास योजनाओं तथा नागरिक सेवाएं प्रदान करने में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है, क्योंकि हिंदी हमारे राष्ट्र के एक बहुत बड़े वर्ग की संपर्क भाषा है। हिंदी तथा प्रांतीय भाषाओं के माध्यम से हम बेहतर जन सुविधाएं लोगों तक पहुँचा सकते हैं। इसके साथ ही विदेश मंत्रालय द्वारा ''विश्व हिंदी सम्मेलन'' और अन्य अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों के माध्यम से हिंदी को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय बनाने का कार्य किया जा रहा है। इसके अलावा प्रत्येक वर्ष सरकार द्वारा ''प्रवासी भारतीय दिवस'' मनाया जाता है जिसमें विश्व भर में रहने वाले प्रवासी भारतीय भाग लेते हैं और इसके माध्यम से यह प्रयास किया जाता है कि वे अपनी मातृभाषा में संपर्क करें जिसमे हिंदी की एक विशेष भूमिका है। विदेशों में रह रहे प्रवासी भारतीयों की उपलब्धियों के सम्मान में आयोजित इस कार्यक्रम से भारतीय मूल्यों का विश्व में और अधिक विस्तार हो रहा है, और हिंदी न मात्र हमारी भाषा है अपितु हमारे मूल्यों का भी संवर्धन करती है। विश्वभर में करोड़ों की संख्या में भारतीय समुदाय के लोग एक संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी का इस्तेमाल कर रहे हैं। इससे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी को एक नई पहचान मिली है। यूनेस्को की सात भाषाओं में हिंदी को भी मान्यता मिली है। भारत रत्न से सम्मानित भारत के पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय अटल बिहारी वाजपेयी ने सन् 1977 में भारत के विदेश मंत्री के रूप में संयुक्त राष्ट्र में हिंदी में भाषण देकर न मात्र भारत अपितु भारत और हिंदी दोनों का मान बढ़ाया।

भारतीय विचार और संस्कृति का वाहक होने का श्रेय हिंदी को ही जाता है। अब और व्यापक रूप से संयुक्त राष्ट्र जैसी संस्थाओं में भी हिंदी की गूंज सुनाई देने लगी है। वर्ष 2016, सितंबर माह में हमारे प्रधानमंत्री द्वारा संयुक्त राष्ट्र महासभा में हिंदी में ही भाषण दिया गया था। विश्व हिंदी सचिवालय विदेशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार करने और संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने के लिए कार्यरत है। उम्मीद है कि हिंदी को शीघ्र ही संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा का दर्जा भी प्राप्त हो सकेगा।

भाषा वही जीवित रहती है जिसका प्रयोग जनता करती है। भारत में लोगों के बीच संवाद का सबसे बेहतर माध्यम हिन्दी है। इसलिए इसको एक-दूसरे में प्रचारित करना चाहिये। इस कारण हिन्दी दिवस के दिन उन सभी से निवेदन किया जाता है कि वे अपने बोलचाल की भाषा में भी हिंदी का ही उपयोग करें। हिंदी भाषा के प्रसार से पूरे देश में एकता की भावना और मजबूत होगी, और ऐसा होता है इसका प्रमाण आपातकाल में दिया गया यह नारा है "जय प्रकाश का बिगुल बजा तो जाग उठी तरुणाई है, उठो जवानों तुम्हे बुलाने क्रांति द्वार पर आई है।"

हिंदी हमारी आत्मा है, आत्मा कभी मरती नहीं, परन्तु उसे पहचानने की आवश्यकता होती है, इसलिए हमें सदैव सम्पर्क हेतु अधिकाधिक हिंदी भाषा के प्रयोगार्थ प्रयासरत रहना चाहिए। विदेशी शब्दों को हिंदी में सम्मिलित कर इसके शब्दकोष को बढ़ावा देना चाहिए, परन्तु सतर्क रहना चाहिए की कही ऐसा न हो की भाषा अपनी मूल पहचान ही खो दे, और इसीलिए "क्लिष्ट" शब्द की ओट में छुपकर शब्दों को प्रयोग न करने के तर्क नहीं प्रस्तुत करने चाहिए अन्यथा हम आत्मा को पहचानने के स्थान पर उसे छुपाने लगेंगे। हिंदी भारतीयों की आत्माओं को एक करती है, इस शक्ति को पहचनाने और इसे संवर्धित करने की आवश्यकता है।

कार्यालय सहायक
शिक्षक शिक्षण केंद्र
के.उ.ति.शि. सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं. - 8765623681

हिन्दी भाषा - दशा और दिशा

—रीति कुमारी—

प्रस्तुत विषय 'हिन्दी भाषा - दशा और दिशा' को शीर्षक के रूप में चुनने का मेरा उद्देश्य उन भारतीय भाई-बन्धुओं को यह पैगाम देना है जो हमारी भारतीय राष्ट्रीय भाषा हिन्दी जैसी समृद्ध भाषा होते हुए भी अंग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाओं को अधिक महत्व देते हैं। इस अनुपम हिन्दी भाषा को समृद्ध एवं सम्पन्न बनाने में पूर्व के हिन्दी विद्वानों की असीम कृपा रही है। अतः हम सभी उन महान् विभूतियों के कृतज्ञ हैं, जिन्होंने हमें ऐसी सम्पन्न भाषा प्रदान कर हमारे भारतीय संस्कृति संरक्षण में हमें नेक योगदान दिये हैं।

यह लेखन मुख्यतः चार भागों में विभक्त है। यथा-

(1) हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति और विकास।

(2) आजादी के समय हिन्दी की स्थिति।

(3) वर्तमान समय में हिन्दी की स्थिति।

(4) उपसंहार।

(1) हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति और विकास

प्राचीनकाल में फारस के लोग जब भारत आए तब उन्होंने सिन्धु नदी को हिन्दू कहा, क्योंकि फारसी में 'स' के स्थान पर 'ह' बोला जाता है। यही हिन्दी का 'ऊ' लोप हो जाने से हिन्द रहा। हिन्द में 'ईक्' प्रत्यय लगने पर हिन्दीक बना, जिसका अर्थ है- हिन्द का। बाद में हिन्दीक का 'क' लुप्त होकर हिन्दी शब्द बना। भाषा के लिए हिन्दी शब्द का प्रयोग लगभग तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में हुआ। इससे पहले हिन्दी शब्द का प्रयोग भारत या भारतवासियों के लिए होता था। भारत में बनी वस्तुओं के लिए भी इस शब्द का प्रयोग हुआ करता था।

मानव के क्रिया-कलाप भाषा के माध्यम से होता है। डॉ. श्याम सुन्दर दास ने भाषा के विषय में कहा है- मनुष्य और मनुष्य के बीच ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं। भाषा का आविष्कार मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है क्योंकि मनुष्य में किसी जानवर से अलग विशेषता यह होती है कि इसमें बोलने और समझने की क्षमता होती है और बोलना किसी भाषा पर निर्भर है। आज पूरे विश्व में 6909 भाषाओं और बोलियों का प्रचलन है और इन सभी भाषाओं में हिन्दी भाषा का स्थान दूसरा है। प्रारम्भ में हिन्दी शब्द भारत में बोली जाने वाली देशी भाषाओं के लिए होता था। चौदहवीं शताब्दी में अमीर खुसरों ने हिन्दी शब्द का प्रयोग एक स्वतन्त्र भाषा के लिए किया। अंग्रेजी शासन के समय हिन्दी, हिन्दुस्तानी या खड़ी बोली और हिन्दवी इन सभी शब्दों का प्रयोग केवल एक ही भाषा के लिए होता था।

इस प्रकार हिन्दी भाषा का उद्भव आज एक आदर्श एवं विस्तृत भाषा के रूप में मौजूद है। हिन्दी भाषा का इतिहास बहुत अधिक प्राचीन नहीं है। यही लगभग डेढ़ सौ साल पूर्व से ही इस भाषा का इतिहास माना जाता है। हिन्दी भाषा पूर्ण रूप से तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी शब्दों से समृद्ध है जिसमें सर्वाधिक तत्सम अथवा संस्कृत भाषा का प्रभाव पड़ा है। हिन्दी ने अनेक भाषाओं के शब्दों को अपना कर उसे अपने अनुकूल बना लिया है 'हिन्दी भाषा वैशिष्ट्य और उसकी सार्वभौमिकता सर्वविदित है। अन्यान्य विशेषताओं के साथ हिन्दी की एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसने दूसरी भाषा के शब्दों को अपनाकर, पचाकर अपने अनुकूल बना दिया है।'

(2) आजादी के समय हिन्दी की स्थिति

विगत कई वर्षों से भारतवर्ष अंग्रेजों के गुलाम रहने के बावजूद भारत में हिन्दी भाषा का अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ। भारत सम्पूर्ण विश्व में अनेकता में एकता के लिए विख्यात है और अनेकता में एकता कायम रखने में हिन्दी भाषा की सर्वश्रेष्ठ भूमिका रही है। अतः हम हिन्दी को एकता की रीढ़ कह सकते हैं। आजादी के समय प्रायः सभी राष्ट्रीय नेता हिन्दी भाषा को ही अपना लिये थे। महात्मा गाँधी जी स्वयं एक गुजराती लेखक होते हुए भी जन-जन तक हिदी में ही बोला करते थे। अतः 14 सितम्बर 1949 को संविधान सभा ने हिन्दी को राजभाषा का दर्जा प्रदान किया। आजादी के बाद भी हिन्दी की दशा अच्छी रही। सरकारी कार्यालयों में हिन्दी और अंग्रेजी भाषा का ही प्रयोग होने लगा। जब से हिन्दी भाषा को राजभाषा का दर्जा दिया गया, तब से हर वर्ष 14 सितम्बर को पूरे भारतवर्ष में हिन्दी दिवस बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान भी सभी देशभक्तों को एकजुटता बनाए रखने में हिन्दी भाषा का योगदान सर्वोपरि था। किसी भी देश की भाषा एवं संस्कृति अगर अच्छी न हो तो वह देश कभी आदर्श नहीं हो सकता। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत का बहुत विकास हुआ और इस विकास के लिए हिन्दी भाषा ने अपने दायित्व को पूर्ण रूप से निभाया है।

(3) वर्तमान समय में हिन्दी की स्थिति

देश में नई पीढ़ी पर भले ही अंग्रेजी का भूत चढ़ रहा हो, विदेशी में हिन्दी की महत्ता पिछले कुछ सालों से काफी बढ़ी है। आज हिन्दी भारत ही नहीं, बल्कि पाकिस्तान, नेपाल, इराक, इण्डोनेशिया, इजराइल, सउदी अरब, पेरू, रूस, बंग्लादेश, म्यामार, यमन आदि देशों में जहाँ लाखों प्रवासी भारतीय व हिन्दी भाषी हैं। विदेशों के विश्वविद्यालयों ने हिन्दी को एक अनिवार्य विषय के रूप में अपनाया है। आज विदेशों में 150 से अधिक शिक्षा संस्थानों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है।

आधुनिक काल में विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में हिन्दी का बहुत महत्व है। विश्व में विज्ञान के क्षेत्र में लेखन कार्य सर्वप्रथम संस्कृत भाषा से प्रारम्भ हुआ। बारहवीं शताब्दी तक विज्ञान के अनेक ग्रन्थ मूल रूप से संस्कृत में लिखे गए थे। संस्कृत का उत्तराधिकार हिन्दी को प्राप्त है। आज कम्प्यूटर का बहुत सा काम हिन्दी के माध्यम से किया जाता है।

एच.पी. कम्प्यूटर एक ऐसी तकनीक का विकास करने में जुटा हुआ है जो हाथ से लिखी हिन्दी लिखावट को पहचान कर कम्प्यूटर में आगे की कार्यवाही कर सकता है। वर्तमान समय के विज्ञान-प्रौद्योगिकी से लेकर तमाम विषयों पर हिन्दी में किताबें अब उपलब्ध हैं।

अमेरिका जो कि अपने भाषा के अलावा किसी भी अन्य भाषा को श्रेष्ठ नहीं मानता, परन्तु हिन्दी सीखने में उसकी रुचि का प्रदर्शन निःसन्देह भारत के लिए गौरव की बात है। वहाँ भाषा आधारित गणना की एक ब्योरा के अनुसार 65 लाख लोग हिन्दी बोलते हैं। पहले ऐसा हुआ करता था कि कोई टूटी-फूटी हिन्दी बोलने के लिए क्षमा-याचना किया करते थे लेकिन अब विपरीत हुआ है, लोग टूटी-फूटी अंग्रेजी बोलने के लिए क्षमा माँगते हैं। तात्पर्य यह है कि आज लोग हिन्दी की तुलना में अंग्रेजी भाषा को अधिक महत्व देने लगे हैं जो हमारे लिए बुरी बात है। अंग्रेजी सीखना परम अनिवार्य अवश्य है, परन्तु इतना महत्व देना भी उचित नहीं जिससे अपनी राष्ट्र भाषा के अस्तित्व पर बुरा प्रभाव पड़े, क्योंकि कोई भी समाज हो या संस्था, राष्ट्र हो या राज्य, इन सभी के विकास के लिए एक आदर्श भाषा और संस्कृति का होना परम अनिवार्य है।

(4) उपसंहार

भारत की आजादी से लेकर देश के विकास तथा सांस्कृतिक संरक्षण में हिन्दी का बहुत बड़ा महत्व रहा है। विश्व स्तर पर भी यह एक विशाल अथवा विस्तृत भाषा है जिसका सम्पूर्ण विश्व में दूसरा स्थान है। यह हम सब देशवासियों के लिए गौरव की बात है। हमारे देश में प्रतिदिन सैकड़ों हिन्दी पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं, आकाशवाणी दूरदर्शन के माध्यम से भी हिन्दी ही सर्वाधिक प्रयोग होता है और सिनेमा जगत में तो हिन्दी का इतना प्रचार-प्रसार हो रहा है, उसी तरह हमें अपनी राष्ट्र भाषा को भी सर्वश्रेष्ठ महत्व देना चाहिए। हमारी भारत की इस महानतम भाषा और संस्कृति पर हम सभी को गर्व महसूस करना चाहिए। इसकी महत्ता को भली-भाँति जानकर इसका भरपूर प्रयोग करना हम सभी देशवासियों का परम दायित्व है, तभी हमारा देश भारतवर्ष विकास के क्षेत्र में और भी गति प्राप्त कर सकता है।

शास्त्री, तृतीय वर्ष
के.उ.ति.शि.सं, सारनाथ, वाराणसी

पारिभाषिक शब्दावली : परंपरा एवं विकास

—डॉ. संजय कुमार सिंह—

कार्यालयों में राजभाषा हिंदी में कार्य करते समय हमें सामान्य शब्दों के साथ पारिभाषिक शब्दों का भी उपयोग करना पड़ता है । कार्यालयी हिंदी के बारे में कुछ प्रतिक्रियाएँ बहुत ही सामान्य हैं। साहित्य के क्षेत्र में, पत्रकारिता के क्षेत्र में, जनसामान्य द्वारा एवं कार्यालय के अधिकारियों-कर्मचारियों द्वारा भी प्रायः कार्यालयी हिंदी को कठिन, नीरस कहा जाता है। प्रायः हर मंच से सरल हिंदी लिखने का आग्रह किया जाता है।

यह बात इसलिए पैदा होती है क्योंकि हमारा प्रशासनिक ढांचा अंग्रेजी भाषा में निर्मित हुआ है। किसी भी कार्य के लिए अंग्रेजी के वाक्य-पदों का प्रयोग पहले किया जाता है, उसके बाद हिंदी में उसका अनुवाद किया जाता है। जाहिर है कि भाषा में थोड़ी कृत्रिमता आती है, लेकिन हमारे देश की परिस्थिति ऐसी है कि इस स्थिति से बचा नहीं जा सकता है । हमारे विद्वानों ने यथासंभव कार्यालयी हिंदी को सरल, सहज, सुबोध बनाने का प्रयास किया है। इस लेख में पारिभाषिक शब्दावली की परंपरा के साथ ही इन प्रयासों की चर्चा की जाएगी।

परिभाषा की दृष्टि से हम तीन तरह के शब्दों का प्रयोग करते हैं- सामान्य, पारिभाषिक और अर्धपारिभाषिक।

सामान्य शब्द वे होते हैं, जो सीधे अपना अर्थ प्रकट करते हैं। इन शब्दों की परिभाषा बताने की जरूरत नहीं होती है। जैसे- रोटी, कपड़ा, मकान इत्यादि। पारिभाषिक शब्द वे होते हैं जिनका सीधा अर्थ प्रकट नहीं होता है । वाक्यों में उनका अर्थ बताना पड़ता है । जैसे- द्वैतवाद, अद्वैतवाद, क्रियाविशेषण इत्यादि । अर्धपारिभाषिक शब्द वे होते हैं, जो कभी सामान्य अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, तो कभी पारिभाषिक अर्थ में। जैसे क्रिया(Verb) पारिभाषिक शब्द है, लेकिन क्रियाकलाप में सामान्य अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है।

पारिभाषिक शब्द प्राचीन काल से ही प्रयोग में लाए जाते हैं । वैदिक साहित्य हो, कौटिल्य का अर्थशास्त्र हो या अन्य पुराने ग्रंथ, उनमें तमाम शब्द ऐसे मिलेंगे, जो बिना संदर्भ के नहीं समझे जा सकते। आज उनका अर्थ बताने के लिए उनकी परिभाषा से अवगत कराना होगा। कार्यों के संचालन के लिए भी पारिभाषिक शब्द इस्तेमाल किए जाते हैं। ऐसे शब्दों के संग्रह का प्रयास महाराज छत्रपति शिवाजी के काल में किया गया। उनकी आज्ञा से रघुनाथ पंत ने डेढ़ हजार पारिभाषिक शब्दों का 'राजकोश' नामक एक शब्दकोश बनाया।

स्वतंत्रता आंदोलन के समय हिंदी भाषा के प्रति जागरूकता आई । हिंदी स्वतंत्रता आंदोलन की संवाहक भाषा बन गई । शिक्षा एवं प्रशासन में इसका उपयोग होने लगा ।

आजादी के बाद देश का राजकाज इसी भाषा में होना प्रायः तय था । तमाम संस्थाओं ने अंग्रेजी के समतुल्य हिंदी शब्दों का निर्माण शुरू किया और उनके कोश बनाए । नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा 1898 में पारिभाषिक शब्दावली कोश बनाया गया, जिसमें एक विषय राजनीतिक अर्थव्यवस्था भी था । स्वतंत्रता के बाद भी अलग-अलग प्रांतीय सरकारों, संस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा कोश बनाने की परंपरा जारी रही ।

गौर करने पर यह पाया गया कि सभी कोशों में शब्द निर्माण की प्रक्रिया में नीतिगत अंतर है । व्यक्तिगत रुचि का भी प्रभाव पाया गया । शैली की दृष्टि से देखा जाए तो तीन शैलियों का प्रभाव पाया गया- संस्कृतनिष्ठ, हिंदुस्तानी और अंग्रेजीनिष्ठ । इतनी विविधता के चलते एकरूपता को लेकर दिक्कत आ रही थी, जबकि राजभाषा में यह एक जरूरी तत्व है । कई शब्दों को लेकर हास्यास्पद स्थिति थी ।

इस बीच भारतीय संविधान के अनुच्छेद 344 के अंतर्गत राजभाषा आयोग का गठन 1955 में किया गया और इसकी रपट 1956 में आ गई । इस पर विचार करने के लिए संसदीय समिति का गठन भी किया गया और उसकी संस्तुति प्राप्त हुई । समिति की संस्तुति के आधार पर 1961 में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग का गठन किया गया । इस समिति में अखिल भारतीय स्तर के विद्वानों को शामिल किया गया और शब्दों के निर्माण के संबंध में नीति निर्धारण के लिए व्यापक विचार विमर्श किया गया । उद्देश्य यह था कि दृष्टिकोण अतिवादी न हो, संतुलित हो तथा यथासंभव अखिल भारतीय स्तर पर इसकी स्वीकार्यता हो । इसी उद्देश्य से आयोग ने शब्द निर्माण के पूर्व कुछ सिद्धांत तय किए और शब्द निर्माण में इन्हीं सिद्धांतों को अपनाया । इन सिद्धांतों को ज्यों का त्यों पढ़ना और समझना जरूरी है-

1. अंतरराष्ट्रीय शब्दों को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेजी रूपों में ही अपनाना चाहिए और हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण करना चाहिए । अंतरराष्ट्रीय शब्दावली के अंतर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिए जा सकते हैं:
   (क) तत्वों और यौगिकों के नाम, जैसे- हाइड्रोजन, कार्बनडाइ आक्साइड आदि;
   (ख) तौल और माप की इकाइयाँ और भौतिक परिमाण की इकाइयाँ, जैसे- डाइन, कैलॉरी, एम्पियर आदि;
   (ग) ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाए गए हैं, जैसे- मार्क्सवाद (कार्ल मार्क्स), ब्रेल (ब्रेल), बायॅकाट (कैप्टेन बॉयकाट), गिलोटिन (डॉ. गिलोटिन), गेरीमैंडर (मि. गेरी), एम्पियर (मि. एम्पियर), फारेनहाइट तापक्रम (मि. फारेनहाइट) आदि;
   (घ) वनस्पति विज्ञान, प्राणिविज्ञान, भूविज्ञान आदि की द्विपदी नामावली;
   (ड) स्थिरांक, जैसे - π, g आदि;

(च) ऐसे अन्य शब्द जिनका आमतौर पर सारे संसार में व्यवहार हो रहा है, जैसे- रेडियो, पेट्रोल, रडार, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, आदि;

(छ) गणित और विज्ञान की अन्य शाखाओं के संख्यांक, प्रतीक, चिह्न और सूत्र, जैसे- साइन, कोसाइन, टेन्जेन्ट, लॉग, आदि (गणितीय संक्रियाओं में प्रयुक्त अक्षर रोमन या ग्रीक वर्णमाला के होने चाहिए)।

2. प्रतीक, रोमन लिपि में अंतरराष्ट्रीय रूप में ही रखे जाएँगे परंतु संक्षिप्त रूप नागरी और मानक रूपों में भी, विशेषत: साधारण तौल और माप में लिखे जा सकते हैं, जैसे - सेंटीमीटर का प्रतीक cm हिंदी में भी ऐसे ही प्रयुक्त होगा परंतु नागरी संक्षिप्त रूप से.मी. भी हो सकता है। यह सिद्धांत बाल-साहित्य और लोकप्रिय पुस्तकों में अपनाया जाएगा, परंतु विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मानक पुस्तकों में केवल अंतरराष्ट्रीय प्रतीक, जैसे, cm ही प्रयुक्त करना चाहिए।
3. ज्यामितीय आकृतियों में भारतीय लिपियों के अक्षर प्रयुक्त किए जा सकते हैं, जैसे - क, ख, ग या अ, ब, स परंतु त्रिकोणमितीय संबंधों में केवल रोमन अथवा ग्रीक अक्षर ही प्रयुक्त करने चाहिए, जैसे- साइन A, कॉस B, आदि।
4. संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाले शब्दों का सामान्यत: अनुवाद किया जाना चाहिए।
5. हिंदी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता, और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधार-विरोधी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।
6. सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथासंभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो-

   (क) अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों, और

   (ख) संस्कृत धातुओं पर आधारित हों।
7. ऐसे देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग के पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे- telegraphy/telegram के लिए तार, continent के लिए महाद्वीप, post के लिए डाक, आदि इसी रूप में व्यवहार में लाए जाने चाहिए।
8. अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, आदि भाषाओं के ऐसे विदेशी शब्द जो भारतीय भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे- टिकट, सिग्नल, पेंशन, पुलिस, ब्यूरो, रेस्तरां, डीलक्स, आदि इसी रूप में अपनाए जाने चाहिए।
9. अंतरराष्ट्रीय शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण - अंग्रेजी शब्दों का लिप्यंतरण इतना जटिल नहीं होना चाहिए कि उसके कारण वर्तमान देवनागरी वर्णों में नए चिह्न व प्रतीक

शामिल करने की आवश्यकता पड़े । शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण अंग्रेजी उच्चारण के अधिकाधिक अनुरूप होना चाहिए और उनमें ऐसे परिवर्तन किए जाएं जो भारत के शिक्षित वर्ग में प्रचलित हों ।

10. लिंग - हिंदी में अपनाए गए अंतरराष्ट्रीय शब्दों को, अन्यथा कारण न होने पर, पुल्लिंग रूप में ही प्रयुक्त करना चाहिए ।
11. संकर शब्द - पारिभाषिक शब्दावली में संकर शब्द, जैसे guaranteed के लिए गारंटित, classical के लिए 'क्लासिकी', codifier के लिए 'कोडकार' आदि के रूप सामान्य और प्राकृतिक भाषाशास्त्रीय प्रक्रिया के अनुसार बनाए गए हैं और ऐसे शब्द रूपों को पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकताओं तथा सुबोधता, उपयोगिता, और संक्षिप्तता का ध्यान रखते हुए व्यवहार में लाना चाहिए ।
12. पारिभाषिक शब्दों में संधि और समास- कठिन संधियों का यथासंभव कम से कम प्रयोग करना चाहिए और संयुक्त शब्दों के दो शब्दों के बीच हाइफन लगा देना चाहिए । इससे नई शब्द-रचनाओं को सरलता और शीघ्रता से समझने में सहायता मिलेगी । जहाँ तक संस्कृत पर आधारित 'आदिवृद्धि' का संबंध है, 'व्यावहारिक', 'लाक्षणिक', आदि प्रचलित संस्कृत तत्सम शब्दों में आदिवृद्धि का प्रयोग ही अपेक्षित है परंतु नवनिर्मित शब्दों में इससे बचा जा सकता है ।
13. हलंत - नए अपनाए हुए शब्दों में आवश्यकतानुसार हलंत का प्रयोग करके उन्हें सही रूप में लिखना चाहिए ।
14. पंचम वर्ण का प्रयोग - पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करना चाहिए । परंतु lens, patent, आदि शब्दों का लिप्यंतरण लेंस, पेटेंट या पेटेण्ट न करके, लेन्स, पेटेन्ट ही करना चाहिए ।

उपर्युक्त सिद्धांतों का पालन करते हुए आयोग द्वारा शब्दों का निर्माण किया गया और 1965 में प्रशासनिक शब्दावली का प्रकाशन किया गया । इसमें वृद्धि होती रही और 1968 में समेकित प्रशासनिक शब्दावली का प्रकाशन किया गया । तब से आज तक इसके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं ।

आज इस बात की जरूरत है कि कार्यालयी कार्यों में प्रशासनिक शब्दावली में दिए गए शब्दों का प्रयोग किया जाए, ताकि अखिल भारतीय एकरूपता बनी रहे और अर्थ निर्धारण की समस्या न आए । संभव है कि किसी क्षेत्र विशेष में कोई शब्द इनकी तुलना में सरल लगे, लेकिन दूसरे क्षेत्र के लिए वह कठिन हो सकता है और सही अर्थ निर्धारण की समस्या भी आ सकती है ।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक जनहित याचिका के परिप्रेक्ष्य में 2002 में आयोग द्वारा बनाए गए शब्दों के प्रयोग के लिए आदेश पारित किए हैं। इससे यह स्पष्ट हो गया है कि संघ के कार्यालयों के साथ ही विश्वविद्यालयों, शिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रमों इत्यादि को तैयार करते समय भी आयोग द्वारा बनाए गए शब्दों का ही प्रयोग किया जाना है, जिससे अखिल भारतीय स्तर पर शब्दों के प्रयोग में एकरूपता स्थापित हो सके।

कार्यालयों में सरल हिंदी लिखने के परिप्रेक्ष्य में गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग ने भी 2010 में एक कार्यालय ज्ञापन जारी किया और इसके अंतर्गत कुछ निर्देश दिए। व्यावहारिक संप्रेषण के लिए ये निर्देश महत्वपूर्ण हैं। मानक हिंदी- अंग्रेजी दस्तावेज तैयार करते समय शब्दावली आयोग द्वारा अपनाए गए सिद्धांतों का पालन जरूरी है। यदि हम आयोग के सिद्धांतों को गहराई से आत्मसात करें और हिंदी लिखते समय पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग के साथ इनकों भी ध्यान में रखें तो भाषा सरल एवं सुबोध होगी।

दरअसल भाषा केवल शब्दों के कारण जटिल या दुर्बोध नहीं होती है। विषय को ठीक से न समझने और सही वाक्य विन्यास में उसे विन्यस्त(अभिव्यक्त) न करने से भी वाक्य जटिल और दुर्बोध हो जाते हैं। इसलिए कर्मचारियों को अच्छी, स्पष्ट, सटीक हिंदी लिखने का अभ्यास करना भी जरूरी है।

आज परिभाषिक शब्दों की आलोचना करने की बजाय उनका प्रयोग अधिक से अधिक बढ़ाने की जरूरत है। पुरानी बात है कि कोई भी शब्द सरल या कठिन नहीं होता है, हम जानते हैं, वह सरल है, जो नहीं जानते वह कठिन है। जैसे-जैसे शब्दों का प्रयोग बढ़ेगा, प्रचार-प्रसार बढ़ेगा, शब्द सरल लगने लगेंगे। ग्लासनोस्त एवं पेरेस्त्रोइका जैसे रूसी शब्द एक समय मीडिया में प्रयोग के चलते प्रचलन में आ गए थे। पारिभाषिक शब्द तो भारतीय मूल के हैं, इसलिए इनकी अखिल भारतीय लोकप्रियता होने में कोई संदेह नहीं है।

वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी
बनारस रेल इंजन कारखाना, वाराणसी
मो.- 9794861011

राष्ट्रीय से अंतरराष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में बढ़ती हिंदी

—डॉ. सत्य प्रकाश पाल—

भाषा के माध्यम से मनुष्य न केवल अपने भावनाओं की सरल, सहज, सक्षम और अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति करता है बल्कि सर्जनात्मक गतिविधियों के लिए भी भाषा अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। भाषा ही वह अद्वितीय उपलब्धि है जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से अधिक विशिष्ट, विवेकवान, सक्रिय और समर्थ बनाती है। इसलिए यह कहा जाता है कि भाषा ने मनुष्य को वास्तविक अर्थ में मनुष्य बनाया है। आज के समय में भाषा विहीन मनुष्य और मानव समाज की कल्पना करना भी भयावह प्रतीत होता है। परंतु भाषा की उपलब्धि मनुष्य के लिए बिल्कुल भी आसान नहीं थी। विकास की एक लंबी प्रक्रिया के साथ मनुष्य ने अपने अनुकूल भाषा कौशल विकसित किया। एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति और अनेक व्यक्तियों के बीच आपसी संपर्क निर्मित करने और भावनाओं के आदान-प्रदान के साथ-साथ अभिव्यक्ति के विभिन्न स्वरूपों के लिए भाषा की आवश्यकता अनिवार्य है। लगभग 130 करोड़ की आबादी वाले भारत जैसे विशाल देश में विभिन्न भाषा-भाषी लोगों की पर्याप्त संख्या पाई जाती है। भारत आरंभ से ही समृद्ध संस्कृति की भूमि रही है। यहां अनेक बोली और भाषा पायी जाती हैं। 'कोस-कोस पर पानी बदले और तीन कोस पर बानी' जैसे लोक कथन भारत की भाषिक विशेषता जिसमें प्रत्येक तीन कोस की दूरी पर बानी अर्थात बोली और भाषा के बदल जाने की विशेषता की ओर संकेत किया गया है, के आधार पर भारत में बोली और भाषा की चली आ रही समृद्ध परंपरा का परिचय प्राप्त होता है। भारत जैसे विशाल जनसंख्या और समृद्ध भाषिक विरासत वाले देश में किसी एक भाषा का ही प्रयोग होना अत्यंत मुश्किल और असंभव है। भारत में सैकड़ों बोली और भाषाओं का प्रयोग जनता द्वारा किया जाता है परंतु हिंदी एक ऐसी भाषा है जिसका प्रयोग भारत के प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक समुदाय के लोग करते हैं। भारत के अधिकांश लोगों को हिंदी भाषा पढ़ने लिखने बोलने-सुनने और समझने में सामान्यतया कोई विशेष परेशानी नहीं होती है। भारत के हर हिस्से में लोग हिंदी भाषा आसानी से बोलते और समझते हैं। भारत के लोग जब एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में देश के भीतर आवागमन करते हैं तो वे अपनी बात हिंदी में ही व्यक्त करते हैं और एक दूसरे के साथ संपर्क साधते हैं। दक्षिण भारत में जहां द्रविड़ जाति की भाषाओं का प्रयोग अधिक होता है, वहां भी हिंदी भाषा मुख्य संपर्क भाषा के रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन करती है। उत्तर-पूर्व के राज्यों में जहां उनकी अपनी भाषाएं और विभिन्न बोलियां पाई जाती हैं, वहां भी हिंदी भाषा ही प्रमुख संपर्क भाषा के रूप में कार्य करती है। दक्षिण और उत्तर पूर्व के राज्यों के अलावा शेष अतिरिक्त भारत के राज्यों और गुजरात, राजस्थान और जम्मू

कश्मीर में भी हिंदी भाषा ही प्रमुख संपर्क भाषा के रूप में दिखाई पड़ती है। इस तरह संपूर्ण भारत में हिंदी भाषा है। सबसे बड़ी, सबसे सरल सहज और कारगर ढंग से संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग की जाती रही है और की जा रही है। इसलिए यह निर्विवाद है कि हिंदी ही भारत की सबसे प्रमुख संपर्क भाषा है।

सम्पर्क भाषा वह भाषा होती है जो किसी क्षेत्र, प्रदेश या देश के ऐसे लोगों के बीच पारस्परिक विचार-विनिमय के माध्यम का काम करे जो एक दूसरे की भाषा नहीं जानते। दूसरे शब्दों में विभिन्न भाषा-भाषी वर्गों के बीच सम्प्रेषण के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है, वह सम्पर्क भाषा कहलाती है। 'सम्पर्क भाषा' की सामान्य परिभाषा यह है कि- 'एक भाषा-भाषी जिस भाषा के माध्यम से किसी दूसरी भाषा के बोलने वालों के साथ सम्पर्क स्थापित कर सके, उसे सम्पर्क भाषा कहते हैं।' भारत में 'हिन्दी' बहुत पहले से ही सम्पर्क भाषा के रूप में रही है और इसीलिए यह बहुत पहले से 'राष्ट्रभाषा' कहलाती है क्योंकि हिन्दी की सार्वदेशिकता सम्पूर्ण भारत के सामाजिक स्वरूप का प्रतिफल है। भारत की विशालता के अनुरूप ही राष्ट्रभाषा विकसित हुई है जिससे उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम कहीं भी सांस्कृतिक आदान-प्रदान की भाषा के रूप में हिन्दी का ही अधिकतर प्रयोग होता है। इस प्रकार इन सांस्कृतिक परम्पराओं से हिन्दी ही सार्वदेशिक भाषा के रूप में लोकप्रिय है। विशेषकर दक्षिण और उत्तर के सांस्कृतिक सम्बन्धों की दृढ़ श्रृंखला के रूप में हिन्दी ही सशक्त भाषा बनीं।

वर्तमान समय में वैज्ञानिक-तकनीकी क्रांति के इस अति महत्वपूर्ण दौर में वैज्ञानिक-तकनीकी कर्मियों की संख्या की दृष्टि से भारत का दुनिया में तीसरा स्थान है। ये तकनीकी कर्मी विश्व के अलग-अलग देशों में काम करते हैं और हिंदी के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इलेक्ट्रॉनिक संचार-माध्यम और कम्प्यूटर आदि के उपयोग में हिंदी ने धीरे-धीरे अपनी मजबूत जगह बना ली है। आज विश्व में मोबाइल और इंटरनेट उपभोक्ताओं की एक विशाल संख्या भारत में है। इससे एक तरफ इन माध्यमों से हिंदी का प्रसार हो रहा है, तो दूसरी तरफ हिंदी क्षेत्र में इलेक्ट्रोनिक यंत्रों का बाजार भी फैल रहा है। इससे हिंदी की अंतरराष्ट्रीय भूमिका मजबूत हो रही है। पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने एक बार कहा था कि – यदि भारत को समझना है, तो हिंदी सीखो। वस्तुत: हिंदी हमारे चिंतन की, हमारे सपनों की, हमारे प्रतिरोध की भाषा बनकर हमारी सांस्कृतिक और राष्ट्रीय स्वायत्तता की रक्षा की भाषा बनकर हमें ताकत देती है। इसलिए आज दुनिया भर के लोग हिंदी सीखने और उसमें व्यवहार करने पर ध्यान दें रहे हैं। पूंजीवाद और भूमंडलीकरण के इस दौर में जब खुले बाजार की व्यवस्था का बोलबाला है, हिंदी भाषा राष्ट्रीय संपर्क भाषा की अपनी भूमिका से बढ़कर अंतरराष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करते हुए अपनी पहचान निर्मित कर रही है।

आज भारत की अर्थव्यवस्था अत्यंत सुदृढ और अग्रगामी है। एक बड़े अंतराल के बाद लंबे समय से केंद्र में एक स्थायी और पूर्ण बहुमत की सरकार है, इससे विभिन्न क्षेत्रों में भारत की साख में इजाफा हुआ है। 130 करोड़ की आबादी वाला देश दुनिया के लिए एक बहुत बड़े बाजार के रूप में अवसरों की अपार संभावनाएं उपलब्ध करवाता है। राष्ट्रीय स्तर के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी विभिन्न क्षेत्रों में काम कर रहे विभिन्न संगठनों और लोगों को भारतीय बाजार में प्रवेश की महत्वाकांक्षा है। थोड़ी सी सरकारी नियत और जन जागरूकता से हिंदी अंतरराष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में भी महत्वपूर्ण स्थिति प्राप्त कर सकती है। राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी की संपर्क भाषा के रूप में मजबूती का प्रमाण यह है कि जहां एक तरफ दक्षिण भारत के विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में बनी फिल्मों को हिंदी भाषा में डव करके चलाया जाता है और वह फिल्में कई सौ करोड़ रुपये का व्यापार करती है और मुनाफा कमाती है, वहीं दूसरी तरफ बहुत से हिंदी भाषी क्षेत्रों के राजनेता दक्षिण भारत में जाकर शुद्ध हिंदी में भाषण देते हैं। दक्षिण भारत के भी बहुत से कलाकार हिंदी क्षेत्रों में आकर हिंदी बोलकर लोगों के साथ अपना संपर्क बढ़ाते हैं। हाल के कुछ वर्षों में विदेशी पर्यटकों के रूप में भारत में पर्याप्त मात्रा में विदेशी आते हैं, जिन्हें भारत के बाजारों, रेस्त्रां, घाट और पार्कों और सड़कों पर चलते हुए हिंदी में बोलते हुए संपर्क करते देखा जा सकता है। आज आवश्यकता है कि राष्ट्रीय संपर्क भाषा के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में भी हिंदी की बढ़ती हुई भूमिका की शिनाख्त की जाए और उसे बढ़ावा भी दिया जाए। निःसंदेह इसके लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति अत्यंत आवश्यक है। तथापि भारत की जनता भी अपने स्तर से तथा हिंदी की इस बदलती हुई भूमिका को अध्यापक और समृद्ध कर सकते हैं। बदलते समय संदर्भों के साथ सोशल मीडिया के विकास और विस्तार ने दुनिया को मुट्ठी में बंद एक मोबाइल में कैद कर दिया है। इन सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के उपयोग के दौरान भी हिंदी भाषा के प्रयोग के माध्यम से संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की बदलती भूमिका को और समृद्ध किया जा रहा है। इन विशेषताओं के कारण अब हिंदी भाषा राष्ट्रीय से अंतरराष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में बढ़ रही है। यह स्थिति प्रत्येक हिंदी प्रेमी भारतवासी को गौरवान्वित करने वाला है।

सहायक आचार्य
हिन्दी विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

हिन्दी भाषा एवं हिन्दी-दिवस

—डॉ. ओम् प्रकाश पाण्डेय—

मनुष्य अपने मनोगत भावों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से करता है। भाषा मनुष्य के चतुर्दिक विकास एवं बौद्धिक उन्नति की परिचायिका होती है। प्राचीन काल में संस्कृत भाषा का प्रचार कश्मीर से कन्याकुमारी एवं पूर्वोत्तर से सुदूर पश्चिमी प्रदेशों तक था। संस्कृत सुदीर्घ काल तक राष्ट्रभाषा के रूप में मान्य रही परन्तु सभ्यता के विकास के साथ विचारधाराओं में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। बौद्धकाल, मुगलकाल एवं ब्रिटिशकाल तक आते-आते संस्कृत, पाली एवं प्राकृत भाषाओं का प्रयोग एवं महत्त्व क्रमेण कम होता गया। स्वार्थवश अंग्रेज अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रचारार्थ अंग्रेजी के अध्ययन-अध्यापन पर अत्यधिक बल देने लगे, इस बल को लार्ड मैकाले ने पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। स्वतन्त्रता संग्राम में हिन्दी पूरे देश की सर्वाधिक प्रयोग की जाने वाली भाषा सिद्ध हो चुकी थी। स्वतन्त्रता के उपरान्त संविधान निर्माताओं ने 14 सितम्बर, 1949 को एक प्रस्ताव के द्वारा स्वीकार किया था कि – संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंको का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा, अंग्रेजी का प्रयोग आगे के 15 वर्षों तक बना रहेगा। अंग्रेजी के प्रयोग को न्यून करने तथा उसी के समान्तर हिन्दी का प्रसार भी हो, इस हेतु भारत के संविधान के भाग 17 के अध्याय 4 के अनुच्छेद 351 में हिन्दी भाषा के विकास के लिए इस प्रकार निर्देश दिय गये हैं– "संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाये, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके तथा उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली एवं पदों को आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वाञ्छनीय हो वहाँ उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि करे।"

संविधान में इतनी सुस्पष्ट व्यवस्था रहते हुए भी यह विडम्बना ही है कि कतिपय स्वार्थी तत्त्वों द्वारा हिन्दी की अनवरत उपेक्षा की जाती रही है, यही तत्त्व हिन्दी की उन्नति में बाधक बनते रहे हैं। राजभाषा विभाग, गृह मन्त्रालय ने हिन्दी के प्रयोग की मात्रा के परिप्रेक्ष्य में देश को 'क' 'ख' 'ग' तीन श्रेणियों में विभक्त किया है – 'क' श्रेणी में वे राज्य आते हैं जिनके

सरकारी कार्यालयों एवं मन्त्रालयों में अधिकतर कार्य हिन्दी में किये जाते हैं। 'ख' एवं 'ग' श्रेणी में वे राज्य हैं जिनमें हिन्दी भाषा का प्रयोग न्यून से न्यूनतर होता है। इसमें तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, आन्ध्र एवं तेलंगाना आते हैं। इन प्रदेशों के राजनीतिज्ञों को यह निर्मूल आशंका रहती है कि हिन्दी उनकी मातृभाषा की उन्नति में अवरोधक होगी। इन राज्यों को हिन्दी का प्रचार साम्राज्यवादी सोच का प्रतीक प्रतीत होता है। इन्हें यह भय सताता रहता है कि हिन्दी के प्रयोग से इनकी क्षेत्रीय भाषा गौण हो जायगी। यहाँ ध्यातव्य है कि हिन्दी कोई वैदेशिक भाषा तो है नहीं कि इसे अपने उपनिवेश की आवश्यकता है यह देश की सर्वाधिक बोले जाने वाले भू-भाग को आच्छादित करती है। हिन्दी का प्रयोग उनकी मातृभाषा के प्रयोग को कथमपि निषिद्ध या बाधित नहीं करता है।

हिन्दी-दिवस

संविधान सभा ने हिन्दी को राजभाषा के पद पर स्थापित करने का प्रस्ताव 14 सितम्बर, 1949 को पारित किया था। वर्धा-प्रचार-समिति की अनुशंसा पर 1953 से प्रतिवर्ष 14 सितम्बर को केन्द्र सरकार के कार्यालयों, विभागों, मन्त्रालयों तथा उनके अधीन सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में हिन्दी-दिवस, सप्ताह अथवा हिन्दी पखवाड़ा मनाया जाता है। इन दिनों में पत्राचार, अनुवाद, निबन्ध-लेखन, वाद-विवाद, भाषण आदि प्रतियोगिताएं आयोजित कर हिन्दी के प्रचार-प्रसार पर बल दिया जाता है। यहाँ ध्यातव्य यह है कि हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार हेतु मात्र एक दिन सुनिश्चित कर या सप्ताह अथवा पखवाड़ा आयोजित कर हिन्दी भाषा का सम्यक् विकास नहीं किया जा सकता। 'कुछ भी नहीं' किये जाने की अपेक्षा उपर्युक्त आयोजन श्रेयस्कर है। हिन्दी के प्रसार हेतु वर्ष पर्यन्त सार्थक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। सार्वजनिक उपक्रमों, उच्च न्यायालयों, तकनीकी संस्थानों तथा उच्च शैक्षिक संस्थानों में आज भी अंग्रेजी का वर्चस्व है। इन संस्थानों के उच्च पदों पर आसीन पदाधिकारियों द्वारा अन्तःकरण से अंग्रेजी का प्राधान्य प्रतिपादित किये जाने के निरन्तर प्रयत्न किये जाते हैं। इनके द्वारा हिन्दी को द्वितीय श्रेणी की भाषा मानना, हिन्दी के लिए सर्वाधिक हानिकारक कारण है।

नई शिक्षा-नीति 2019 के मसौदे में त्रिभाषा सूत्र को लागू करने की बात कही गयी तो विपक्षी नेताओं ने (विशेषकर तमिलनाडु के) यह कहकर विरोध करना प्रारम्भ कर दिया कि हिन्दी को हमारे ऊपर थोपनें का प्रयास, केन्द्र सरकार कर रही है। फलस्वरूप सरकार को स्पष्टीकरण देना पड़ा। इस प्रकार 'त्रिभाषा-सूत्र' पुनः राजनीतिक षड्यन्त्र का शिकार हो गया।

यहाँ दक्षिण भारतीय राजनीतिज्ञों को यह विश्वास दिलाये जाने की आवश्यकता है कि हिन्दी की प्रतिस्पर्धा अंग्रेजी से है न कि क्षेत्रीय भाषाओं तमिल, तेलगु, कन्नड या मलयाली आदि से। इस हेतु दक्षिण भारत के राज्यों को विश्वास में लेकर ही 'त्रिभाषा-सूत्र' लागू किया जाना चाहिए। इसी प्रकार विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो रहे नित नूतन आविष्कार जनित शब्दों का हिन्दी में पारिभाषिक कोश तैयार किये जाने की आवश्यकता है।

संयुक्त विकास आयुक्त (से.नि.)
SA 17/278 D-2, अनुपम नगर, पञ्चक्रोशी रोड
(निकट लक्ष्मी मन्दिर), पहड़िया, वाराणसी-21007
फोन नं.- 9415270191
ईमेल- oppandey1960@gmail.com

मानक वर्तनी एवं अशुद्धियाँ

—डॉ० उमेश कुमार मिश्र—

किसी शब्द के वर्ण, उनका क्रमविन्यास तथा उच्चारण एवं लेखन का विहित विधिमार्ग को ही वर्तनी कहा जाता है तथा जिन वर्णों / अंकों / शब्दों के कई-कई रूप प्रचलित हो अथवा लेखन की विविधिता के कारण अन्यथा अर्थबोध की सम्भावना हो तो सर्वग्राह्य उनके एक निश्चित रूप को अपनाया जाना मानकीकरण कहलाता है। इस प्रकार मानक ज्ञान के साथ शुद्ध उच्चारण और तदनुरूप लेखन ही वर्तनी का आधार है। सुलेख के पश्चात् मानक लेखन को लेखनशिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। मानक लेखन का आशय उच्चारण और लेखन के स्तर पर एकरूपता को स्वीकार करते हुए तत्सम्बन्धी अशुद्धियों न करने से है।

वर्तनी का आशय 'लेखन' से है। उर्दू में इसे हिज्जे कहते हैं और अंग्रेजी में इसे स्पेलिंग कहते हैं। प्राचीन समय में जिसे अक्षरी या वर्णविन्यास कहा जाता था उसे ही वर्तमान समय में वर्तनी के नाम से जाना जाता है। इस शब्द का सम्बन्ध संस्कृत की 'वृतु वर्तने' धातु से है। यह शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है- आगे बढ़ना, गति करना, प्रेषण अथवा पिसाई, बैंटने की क्रिया, रास्ता, किसी शब्द के वर्ण, उनका क्रम तथा उच्चारण विधि (स्पेलिंग) आदि।

प्रकृत सन्दर्भ में वर्तनी से तात्पर्य है- किसी शब्द के वर्ण, उनका क्रमविन्यास तथा उच्चारण एवं लेखन का विहित विधि / मार्ग। भाषा विज्ञान के महनीय आचार्य इन्हीं अर्थों में सन्दर्भित वर्तनी का व्यवहार करते दिखाई देते हैं। वर्तनी के सम्बन्ध में प्रमुख भाषाविदों के विचार अधोलिखित है-

- "किसी भी भाषा का कोई शब्द किसी वर्णमाला में जिस रूप में लिखा जाता है, वही उसकी वर्तनी है।" - भोलानाथ तिवारी
- "सार्थक ध्वनियों का समूह ही शब्द कहलाता है। शब्द में प्रयुक्त ध्वनियों को जिस क्रम से उच्चरित है, लिखने में उसी क्रम से विन्यस्त करने का नाम वर्तनी है।"

  - डा० विजयपाल सिंह
- "शिष्ट उच्चारणानुरूप लेखन को वर्तनी कहते हैं।" - श्रीरमापति शुक्ल
- किसी शब्द का वह उच्चारण जो प्रबुद्धजनों, विद्वानों, भाषाविदों द्वारा किया जाता हैं- शिष्ट उच्चारण कहलाता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि वर्तनी का संबंध एक निश्चित अर्थबोध की दृष्टि से ध्वनियों को जिस क्रम में उच्चारित किया जाता है, उसी क्रम में नियमों का पालन करते हुए वर्णों / मात्राओं को अंकित किये जाने से है।

मानक वर्तनी की आवश्यकता-

वर्णों के उच्चारण- भेद की अज्ञानता के कारण प्रायः हमलोग एक अक्षर के स्थान पर उसी से मिलता-जुलता दूसरा वर्ण लिख देते हैं कभी-कभी एक वर्ण के परिवर्तित हो जाने से पूरे शब्द का ही अर्थ बदल जाता है; उदाहरणार्थ- 'शर' और 'सर' दोनों का अर्थ एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है । इसी प्रकार 'शकल' का सकल आदि। इसी प्रकार अभिनेता शब्द का स्त्रीलिंग 'अभिनेत्री' है । इसे दूसरी तरह से नहीं लिखा जा सकता, जैसे- 'अभिनेतृ', अभिनैत्रि आदि।।

भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने सन् 1961 में एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया जिसने अप्रैल, 1962 में अपनी अन्तिम सिफारिशें प्रस्तुत कीं, जिन्हें सरकार ने स्वीकार कर सन् 1967 में हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण शीर्षक से ग्रन्थ प्रकाशित किया गया था । मानक वर्णों के साथ ही मानक अंकों के स्वरूप भी निश्चित किये गए।

सुलेख के पश्चात् शुद्ध लेखन को लेखनशिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। शुद्ध लेखन का आशय लेखन सम्बन्धी अशुद्धियाँ न करने से है। शुद्ध उच्चारण और मानक का ज्ञान ही वर्तनी का आधार है। अन्यथा लेखन अशुद्ध वर्तनी का परिचायक माना जाता है, जैसे- 'अधिक' का 'अधीक' आदि। उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि मानक वर्तनी की महती आवश्यकता है।

मानकीकरण - एक दृष्टि में

लेखन में दिखाई देने वाली अनेकरूपता जैसे- नयी / नई, गर्मी / गरमी, भंडार / भाण्डार, आयेगा / आएगा चाहिए / चाहिये आदि लेखन की दृष्टि से हिन्दी भाषियों के लिए तो इनके प्रयोग में कोई विशेष कठिनाई नहीं आती हैं, वे सभी रूपों को व्याकरणिकता / आंचलिकता की दृष्टि से इच्छानुरूप किसी एक रूप का प्रयोग कर लेते हैं, परन्तु जब इस प्रकार की परिस्थिति अहिन्दी भाषाभाषियों एवं विदेशियों के समक्ष आती थी तो स्थिति कठिन हो जाती थी। ऐसी स्थिति में प्रचलित रूपविकल्पों में से किसी एक रूप की स्वीकृति की आवश्यकता बहुतायत में अनुभव की गई जो आगे चलकर मानकीकरण का आधार बनीं।

इसी प्रकार अनेक भाषाविदों ने मानकीकरण को लेकर अपना योगदान दिया, परन्तु समेकित प्रयास और उसके प्रकाशन / स्वीकार्यता के अभाव में समग्रता की दृष्टि से मानकीकरण की आवश्यकता भाषा-भाषियों / जिज्ञासुमना पाठकों, लेखकों, संशोधकों,

सन् 1900 में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने हिन्दी वर्तनी की एकरूपता के सम्बन्ध में कुछ सार्थक प्रयास किया था । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिन्दी के मानक रूप को स्थिर करने का निरन्तर प्रयास करते रहे।

मुद्रकों एवं सुधीजनों को निरन्तर प्रतीत होती रही। आगे चलकर के इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने हिन्दी वर्तनी में एकरूपता स्थापित करने एवं उनका मानक रूप प्रचारित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

मानक वर्तनी-

जिन वर्णों / अंकों / शब्दों के कई-कई रूप प्रचलित हो अथवा लेखन की विविधिता के कारण अन्यथा अर्थबोध की सम्भावना हो तो सर्वग्राह्य उनके एक निश्चित रूप को अपनाया जाना या मान्यता दिया जाना मानकीकरण कहलाता है। भारत सरकार के विशेषज्ञ समिति द्वारा मानकीकरण के समय वर्तनी की सरलता और उसकी एकरूपता दोनों ही दृष्टियों को ध्यान में रखते हुए कार्य किया गया। फलस्वरूप मानकीकरण के उपरान्त वर्तनी का जो स्वरूप समाज के समक्ष प्रस्तुत हुआ वह सच में मील का पत्थर सिद्ध हुआ और अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के साथ-साथ वैश्विक क्षितिज पर हिन्दी की स्वीकार्यता देखने को मिली। संक्षेप में वर्तनी की मानक इकाई का स्वरूप इस प्रकार है-

क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, (ड़, ढ़)
त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष, त्र, ज्ञ।
अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ।

अनुस्वार - (ं), चन्द्रबिन्दु - (ँ) आगत ध्वनि / चन्द्री (W), विसर्ग- (:), हलन्त (्) । ध्यातव्य हो कि प्रयोग की दृष्टि से ऋ और ऌ वर्ण का प्रयोग हिन्दी भाषा में तत्सम शब्दों में पाया जाता है। देवनागरी वर्णमाला में स्वर वर्णों और व्यंजन वर्णों के अतिरिक्त अयोगवाह का उपयोग किया जाता है। अनुस्वार विसर्ग, चन्द्रबिन्दु, आगतध्वनि / चन्द्री को अयोगवाह कहा जाता है। इनका प्रयोग स्वर वर्णों के बाद किया जाता है। प्रारंभिक अभ्यास के क्रम में स्वर वर्णों के परिचय के अन्त में दिखाई पडने वाले अं अः जैसे प्रतीक संकेत इसी बात के द्योतक हैं।

देवनागरी अंक- १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०।

भारतीय अंकों का अन्तरराष्ट्रीय रूप-

1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 0।

संख्यावाचक शब्दों की वर्तनी में भी अनेकरूपता को देखते हुए अंकों की मानक वर्तनी निश्चित कर दी गयी है।

विसर्ग केवल तत्सम शब्दों में लगता है, अतः हिन्दी की संख्या सम्बन्धी वर्तनी में 'छः' के स्थान पर 'छह' लिखना तर्क संगत है।

पूर्व में जिन वर्णों के कई-कई रूप प्रचलित थे, उनके एक रूप को मान्यता दी गयी-

अ्र - अ	ल - ल	भ - भ
रव - ख	श - श	
छ - छ	क्ष - क्ष	
झ - झ	त्र - त्र	
ण - ण	ध - ध	

एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह चौदह, पन्द्रह सोलह, सत्रह, अठारह, उन्नीस, बीस, इक्कीस, बाइस, तेइस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सताइस, अठाईस, उन्तीस, तीस, इकतीस, बत्तीस, तैंतीस, चौंतीस, पैंतीस, छत्तीस, सैंतीस, अड़तीस, उनतालीस, चालीस, इकतालीस, बयालीस, तैंतालीस, चवालीस, पैंतालीस, छियालीस, सैंतालीस, अड़तालीस, उनचास, पचास, इक्यावन, बावन, तिरपन, चौवन, पचपन, छप्पन, सतावन, अठावन, उनसठ, साठ, इकसठ, बासठ, तिरसठ, चौंसठ, पैंसठ, छियासठ, सड़सठ, अड़सठ, उनहत्तर, सत्तर, इकहत्तर, बहत्तर, तिहत्तर, चौहत्तर, पचहत्तर, छिहत्तर, सतहत्तर, अठहत्तर, उनासी, अस्सी, इक्यासी, बयासी, तिरासी, चौरासी, पचासी, छियासी, सतासी, अठासी, नवासी, नब्बे, इक्यानवे, बानवे, तिरानवे, चौरानवे, पंचानवे, छियानवे, सतानवे, अठानवे, निन्यानवे, सौ।

वर्तनी संबंधी कुछ ध्यातव्य बातें-

वे व्यंजन जिनके अन्त में पाई होती है, उन्हें दूसरे व्यंजनों के साथ संयुक्त करते समय उनकी अन्त्य पाई हटा दी जाती है, जैसे- ख ग घ मुख्य, ग्लानि, कृतघ्न, च्युत, सज्जन आदि। जिन वर्गों के मध्य में पाई होती है, उन्हें दूसरे व्यंजनों के साथ संयुक्त करने पर उनकी शुंडिका का नीचे लटकने वाला भाग समाप्त कर दिया जाता है, जैसे-

क - क्यारी फ - मुफ्त

बिना पाई या गोल पेंदी वाले व्यंजनों को दूसरे व्यंजनों के साथ संयुक्त करते समय इनके नीचे हल (्) का चिह्न लगा दिया जाता है, जैसे-

ङ - वाङ्मय, दिङ्नाग छ - उच्छ्वास

ट - कट्टर, लट्टू ड - लड्डू

ह- चिह्न या अपराह्न ('ह' वर्ण हल करके (ह्) अथवा दायीं ओर की शुण्डिका को सीधा करके (ह्) संयुक्त किया जाता है)।

समान वर्णों का संयोग प्रायः आरम्भ में नहीं होता। ठ, ढ- यह किसी शब्द में संयुक्त रूप में प्रायः प्रयुक्त नहीं होता। व्यावहारिक प्रयोग में जहाँ वर्तनी के मानक नियमों का पालन नहीं होता, वहाँ अशुद्धियाँ हो जाती हैं। अतः इनकी समझ आवश्यक है।

वर्तनी सम्बन्धी सामान्य त्रुटियाँ-

वर्तनीत्रुटि की दृष्टि से स्वर, व्यंजन अयोगवाह तथा विरामचिह्न सम्बन्धी त्रुटियों प्रायः देखने को मिलती हैं। स्वरों के प्रयोग में अनेक प्रकार की त्रुटियाँ देखने को मिलती हैं।

उच्चारण अशुद्धि के कारण कहीं ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ हो जाता है। कहीं दीर्घ स्वर के स्थान पर ह्रस्व स्वर लिखने की भूल हो जाती है, जैसे-

अशुद्ध रूप	**शुद्ध रूप**	**अशुद्ध रूप**	**शुद्ध रूप**
अगामी	आगामी	गुरू	गुरु
आधीन	अधीन	तिथी	तिथि
अंजली	अंजलि	वाल्मिकी	वाल्मीकि
परिणती	परिणति	विभिशिका	विभीषिका

व्यंजन विषयक त्रुटियाँ-

वर्ण- प्रयोग की जानकारी न होना या मुख-सुख आदि अनेक कारणों से कुछ व्यंजन वर्णों के प्रयोग में हमसभी लोगों से कभी-कभी अनेक त्रुटियाँ हो जाती हैं, जैसे-

'ण' और 'न'- 'ण' ध्वनि प्रायः तत्सम शब्दों में मिलती है।

संस्कृत की तत्सम ध्वनियों को उनके मूल स्वरूप में ही ग्रहण किया जाना। जैसे- ब्रह्म को ब्रम्ह, चिह्न को चिन्ह, ऋण को रिण, पूर्वाह्न को पूर्वान्ह जैसे प्रयोग अशुद्ध हैं।

खड़ी बोली में कहीं- कहीं 'ण' का 'न' भी हो जाता है, इसी कारण हमलोग 'ण' के स्थान पर 'न' और न के स्थान पर 'ण' का प्रयोग कर देते है-

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध**	**शुद्ध**
रन	रण	रमायन	रामायण
गुन	गुण	रोहिनी	रोहिणी

'ब' और 'व' की अशुद्धियाँ- जिन शब्दों में इन दोनों वर्णों का प्रयोग होता है, उन्हें प्रायः अधिकांश लोग अशुद्ध लिखते हैं। उनकी दृष्टि से 'वीर' और 'बीर', 'दिवस' और 'दिवस'; 'वाचन' और बाचन', बालक' और 'बालक' आदि शब्दों में कोई भेद नहीं। वे बहुधा एक के स्थान पर दूसरा वर्ण लिखकर शब्द का स्वरूप ही बदल देते हैं। वर्तनी की दृष्टि से ऊपर के सभी जोड़ों में पहला शब्द शुद्ध है और दूसरा अशुद्ध है।

किसी वाक्य में जब एक से अधिक क्रियाएं हों, तो सभी क्रियाएं अलग-अलग लिखी जायेंगी, जैसे- खाया करता है, खेला करेगा, घूमता रहेगा।

सर्वनाम शब्दों में विभक्ति चिह्न अलग करके नहीं लिखे जायेंगे, अपितु जोड़कर लिखे जायेंगे, जैसे- उसने, उसको, उससे आदि। जहाँ पर सर्वनामों के साथ आपको दो विभक्ति चिह्न दिखाई दें वहाँ पहला मिलाकर और दूसरा पृथक् लिखें, जैसे- उसके लिए, इसमें से आदि।

'छ' और 'क्ष' की अशुद्धियाँ- हमसभी लोग प्रायः छ' के स्थान पर 'क्ष' या इसके विपरीत लिखते हैं। 'छात्र' और 'क्षात्र', 'इच्छा' और 'इक्षा परीक्षा' और 'परीच्छा', 'क्षमा और 'छमा'. आदि शब्दों को लिखने में बहुधा एक के स्थान पर दूसरा वर्ण लिख देते हैं।

'ड़' और 'ण' की अशुद्धियाँ- इन दोनों वर्णों के प्रयोग भेद को तो अधिकतर नहीं समझते। और बहुधा इनका अशुद्ध प्रयोग करते है। उदाहरणार्थ- 'परिणाम' का 'परिड़ाम, कण' का 'कड़', 'वीणा' का 'बीड़ा' आदि।

'रि' और 'ऋ' की अशुद्धियाँ- अधिकतर ऋ के प्रयोग से अनभिज्ञ होते हैं और प्रायः इस प्रकार की अशुद्धियाँ करते हैं कि 'ऋ' के स्थान पर रि अथवा इसके विपरीत लिख देते हैं, कुछ उदाहरण हैं- 'ऋतु' का 'रितु', 'ऋषि' का 'रिषि', 'रिक्त' का 'ऋक्त' आदि।

'ष' और 'ष' की अशुद्धियाँ- 'श' और 'ष' वर्णों से बने हुए शब्दों को तो अधिकतर अशुद्ध लिखते ही हैं, उदाहरण-पाशाण' के स्थान पर 'पाषाण': 'दृष्य' के स्थान पर 'दृश्य', 'वेष-भूषा' के स्थान पर 'वेश-भूषा' आदि।

लिंग भेद की अशुद्धियाँ-

लिंग भेद की अशुद्धियाँ प्रायः की जाती है। अहिन्दी भाषा - भाषी प्रदेश के लोग प्रायः लिंग भेद की अशुद्धियाँ करते हैं। स्त्रीलिंग में विदुषी महिला के स्थान पर 'विद्वान महिला' 'छात्रा' के स्थान पर 'छात्र। 'प्रतिभाशालिनी' छात्रा के स्थान पर प्रतिभाशाली छात्रा। प्रार्थिनी के स्थान पर प्रार्थी आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो सर्वथा अशुद्ध है। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि सामान्य व्याकरणिक अवधारणाओं की समझ विकसित कर वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों से बच सकते हैं।

विदेशी शब्दों के बहुवचन रूप हिन्दी के अनुसार ही बनाये जाने चाहिए, जैसे- सवाल-सवालों (सवालात नहीं), कालेज, कोलेजों (कालेजेज नहीं), स्कूलों (स्कूल्स नहीं)।

वचन सम्बन्धी अशुद्धियाँ-

बहुवचन शब्दों के साथ चाहे वे संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण कुछ भी हों-सामान्यतया अनुस्वार (ं) का प्रयोग होता है, यथा- लड़कों, विशेषताओं आदि। किन्तु वाक्य में यदि कर्म नहीं है या शब्द का प्रयोग इस रूप में हुआ है कि उसके साथ कर्ता की विभक्ति 'ने' का प्रयोग नहीं हुआ है तो अपवादस्वरूप बहुवचन कर्ता के

वाक्य में आने वाली संख्या को लिखने के लिए अंक के स्थान पर शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए, जैसे- 1 आदमी जा रहा था (अशुद्ध), एक आदमी जा रहा था (शुद्ध)।

साथ अनुस्वार का प्रयोग नहीं होगा, यथा- लड़के खेल रहें हैं, न कि लड़कों खेल रहे हैं अथवा लड़कें खेल रहे हैं। सम्बोधन में बहुवचन के शब्दों के साथ भी अनुस्वार का प्रयोग नहीं होता है, यथा- भाइयो! बहनो! आदि! न कि भाइयों! बहनों! साथियों! आदि जैसा कि प्रायः लोग किया करते हैं। यदि कर्ता बहुवचन का है तो उस वाक्य में कर्त्ता से सीधे सम्बद्ध-विशेषण एवं क्रिया शब्द भी बहुवचन में ही होंगे, यथा- "अच्छे लड़के खेलते हैं"। यहाँ, विशेषण शब्द 'अच्छे' तथा क्रिया पद 'खेलते हैं दोनों ही बहुवचन में हैं।

विराम चिह्न सम्बन्धी अशुद्धियाँ-

पूर्ण विराम (।) का प्रयोग वाक्य पूरा होने पर ही किया जाता है; न कि प्रत्येक है, हैं, था, थे, थी आदि के साथ। यथा- उसने कहा था । कि वह उदयपुर जायेगा । यहाँ 'था' के पश्चात् पूर्ण विराम का चिह्न गलत है।

सर्वनाम और विभक्ति के बीच यदि 'ही, 'तक' आदि निपात हो तो विभक्ति को पृथक् रूप से लिखा जायेगा, जैसे- आप ही के लिए, सुरेश तक को।

संयोजक शब्द सम्बन्धी अशुद्धियाँ-

संयोजक शब्द प्रायः अव्यय होते हैं। संयोजक शब्द दो वाक्य या वाक्यांशों को परस्पर जोड़ने का काम करते हैं। इसमें से कुछ हैं- और, तथा, किन्तु पर, परन्तु कि, तो, हालांकि, वरना, या, वा, चूँकि आदि। ये शब्द संयोजक है परन्तु इनके साथ योजक चिह्न का प्रयोग प्रायः नहीं किया जाता हैं। योजक चिह्न सामान्यतया सामासिक पदों को जोड़ने के काम आता है यथा- राजा-रानी: गरीब-अमीर, आदि।

'कि' और 'की' से सम्बन्धित अशुद्धियों तथा अनुस्वार (ं) से सम्बन्धित अशुद्धियाँ-

'कि' और 'की' के प्रयोग से सम्बन्धित अशुद्धियाँ भी बड़ी सामान्य बन गयी हैं। प्रायः 'कि' के स्थान पर 'की' अथवा इनके व्युत्क्रम का प्रयोग करते हैं; यथा- राम ने कहा की .....अथवा राम कि माता ने कहा की। इन अशुद्धियों के निवारण हेतु यह समझना जरूरी है कि 'की' सम्बन्ध कारक है। इसका प्रयोग सदैव दो शब्दों को जोड़ने हेतु किया जाता है। 'कि' का प्रयोग दो वाक्य या वाक्यांशों को जोड़ने हेतु किया जाता है। इस नियम को ध्यान में रखते हुए ऊपर के वाक्य का शुद्ध रूप होगा- राम की माता ने कहा कि . ।.

सड़क नम्बर, मकान नम्बर, कक्ष संख्या आदि के लेखन में संख्याएँ ही प्रयुक्त की जानी चाहिए, शब्द नहीं। हाँ, वाक्य के प्रारम्भ में संख्या न लिखें। दिन को दिनाँक से पहले लिखना चाहिए जैसे- गुरुवार, 03 फरवरी, 2022

जिस अक्षर से पहले आपको (ं) या ङ्, 'ण्' 'न्' अथवा 'म्' का प्रयोग करना है, उस

अक्षर के वर्ग के अन्तिम वर्ण को देखिए। यदि वह ङ्, 'ण्' 'न्' अथवा 'म्' में से कोई अक्षर है तो इन्हीं अक्षरों के आधे रूप का प्रयोग होगा, यदि इन अक्षरों में से कोई भी अक्षर नहीं है तो अनुस्वार का प्रयोग होगा। वर्तमान में मानकीकरण के अन्तर्गत सर्वत्र अनुस्वार का प्रयोग भी स्वीकार कर लिया गया हैं।

वर्तनी दोष के कारण और निवारण-

अक्षरों या शब्दों का अशुद्ध उच्चारण किये जाने के भी मूलतः तीन कारण हैं- (1) क्षेत्रीय प्रभाव (2) संगति दोष (3) ध्वनि स्थानों की जानकारी का अभाव या व्याकरण ज्ञान की अज्ञानता। पहले दो कारणों का सम्बन्ध अनुकरण से अधिक है। भाषा अनुकरण प्रधान होती है। बच्चे उच्चारण की शिक्षा अपने से बड़ों से ही ग्रहण करते हैं। जिनमें क्षेत्रीयता का प्रभाव और संगति दोष सम्भव है। क्षेत्रीय प्रभाव एवं संगति दोष जैसे कारणों से बचने का सरल उपाय है- उच्चारणाभ्यास। ध्वनि स्थानों की जानकारी के अभाव के कारण जो त्रुटियाँ होती हैं उसे उच्चारण स्थान संबंधी समझ विकसित कर दूर किया जा सकता हैं। वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों का एक कारण व्याकरण सम्बन्धी नियमों की व्यावहारिक जानकारी न होना भी है। व्याकरण के व्यावहारिक पक्ष को अपनाकर वर्तनी संबंधी दोषों को दूर किया जा सकता है।

वर्तनी दोष निवारण हेतु कुछ महत्वपूर्ण सुझाव-

उपर्युक्त अशुद्धियों के निराकरण हेतु मानक वर्तनी सम्बन्धी नियमों का ज्ञान आवश्यक है। इसके अतिरिक्त इनके निराकरण हेतु निम्नलिखित कार्य किये जा सकते हैं- अध्यापक द्वारा शुद्ध उच्चारण का अभ्यास कराना। अध्यापक स्वयं आदर्श उच्चारण करके उन्हें प्रेरित कर सकते हैं। मानक भाषा का अधिकाधिक प्रयोग कर सकते हैं। श्रुतलेख और सुलेख का अभ्यास करने / कराने हेतु प्रेरित कर सकते हैं। लेखन का नियमित आकलन तथा त्रुटियों की पहचान कर शुद्ध रूप का अभ्यास कर सकते हैं। समान उच्चारण वाले वर्णों, ह्रस्व दीर्घ मात्रा के अन्तर को स्पष्ट कर सकते हैं। पाठ्यपुस्तक में मुद्रण की अशुद्धियों के संशोधन का प्रयास कर सकते हैं। असावधानी, शीघ्रता के कारण लिखने से होने वाली अशुद्धियों की ओर ध्यान आकृष्ट कर इसे दूर कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची-

1. हिन्दी शिक्षण- बी० एन० शर्मा।
2. देवनागरी लिपि तथा हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण- केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा मंत्रालय)।
3. हिन्दी भाषा विकास एवं व्यावहारिक प्रयोजन- डॉ. उदयनारायण तिवारी।
4. हिन्दी की वर्तनी और देवनागरी लिपि का मानकीकरण- डॉ. सन्ध्या वात्स्यायन।
5. हिन्दी लिपि और वर्तनी का मानकीकरण- इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय मानविकी विद्यापीठ।

प्रभारी सहायक निदेशक
राज्य हिन्दी संस्थान, उ०प्र०, वाराणसी।

कंप्यूटर पर हिंदी और यूनिकोड

—श्याम बाबू शर्मा—

कंप्यूटर पर हिंदी से आप क्या समझते हैं? क्या कंप्यूटर पर हिंदी का अर्थ यह है कि आपने कंप्यूटर के माध्यम से हिंदी में पत्र टाइप किया या एक्सल पर कोई डेटाबेस बनाया, प्रिंट लिया और यथास्थान उसकी हार्डकॉपी प्रेषित कर दी। क्या कंप्यूटर पर हिंदी इसी को कहते हैं? नहीं... कंप्यूटर पर हिंदी सही मायने में यह नहीं है। कंप्यूटर पर हिंदी सही मायने में तभी कही जा सकती है जब हम अपने कंप्यूटर पर हिंदी का इस्तेमाल उसी तरह से कर सकें, जैसे कि अंग्रेजी का करते हैं। यानी जब हम अपनी फाइलों और फ़ोल्डरों का नाम हिंदी में दे सकें, जब हम सर्च के माध्यम से हिंदी में बनी फाइलों और फ़ोल्डरों को ढूंढ सकें, जब हम फाइलों में हिंदी के गलत शब्दों को फाइंड-रिप्लेस के माध्यम से ढूंढ कर बदल सकें, जब हम डेटाबेस हिंदी में बनाकर उसे वर्णानुक्रम में रख सकें, जब हम हिंदी में ऑटोनम्बरिंग कर सकें, जब हम एक्सेस में डेटाबेस तैयार कर उसकी हिंदी में क्वैरी कर सकें। यानी हम कंप्यूटर में हिंदी में वह सब कुछ कर सकें जो अंग्रेजी में करते हैं तभी सही मायने में कंप्यूटर पर हिंदी मानी जायगी।

और यह हम कब कर सकते हैं? यह हम तभी कर सकते हैं, जब हमारे कंप्यूटर में यूनिकोड सक्रिय हो। अब आप पूछेंगे कि यह यूनिकोड है क्या? आपको मालूम है कि हमारा कंप्यूटर मूल रूप से नंबरों से सम्बन्ध रखता है, यानी वह 0 और 1 की ही भाषा समझता है। किसी भी अक्षर या वर्ण के लिये एक नम्बर निर्धारित किया जाता है। उसी कोड पर हम किसी भी भाषा को लिखते हैं। यूनिकोड, जैसा नाम से ही परिभाषित होता है कि यूनिफाइड कोडिंग यानी एक समान कोडिंग। यह कोडिंग वैश्विक स्तर पर की गई है। यूनिकोड प्रत्येक अक्षर के लिये एक विशेष नम्बर प्रदान करता है- चाहे वह कोई भी प्लेटफार्म हो, चाहे कोई भी प्रोग्राम हो, चाहे कोई भी भाषा हो।

इसी यूनिफाइड कोडिंग पर हिंदी और भारत की अन्य भाषाओं के अक्षर या वर्ण के लिये नम्बर निर्धारित किये गए हैं। यूनिकोड आने से पहले स्थानीय स्तर पर हिंदी के अक्षर या वर्ण के लिए विभिन्न सॉफ्टवेयर विशेषज्ञों ने अलग-अलग कोड तैयार किये गए थे जो एक समान कोडिंग पर न होने के कारण उनके द्वारा तैयार कोडित हिंदी फॉन्ट दूसरे कंप्यूटर में नहीं खुलता है। इसका जीता-जगता उदाहरण devlys या krutidev या इसी तरह के अन्य फॉन्ट हैं, जो यूनिफाइड कोडिंग पर न होने के कारण दूसरे कंप्यूटर में नहीं खुलता, यदि उस कंप्यूटर में वह फॉन्ट नहीं हो तो।

यह आपने भी महसूस किया होगा कि आपने devlys या krutidev फॉन्ट में कोई डॉक्यूमेंट तैयार किया है और उसे कहीं दूसरे ऑफिस में सॉफ्टकॉपी भेजनी है और वहां वह फॉन्ट नहीं है तो आप क्या करते हैं? आप फॉन्ट भी संलग्न करते हैं। उस फॉन्ट को प्राप्तकर्ता व्यक्ति या विभाग सर्वप्रथम अपने कंप्यूटर में डाउनलोड करता है फिर आपका डॉक्यूमेंट देख पाता है। इसका क्या कारण है? इसका कारण है कि यह फॉन्ट यूनिफाइड कोडिंग पर नहीं बना है। एक बात और.... क्या आप इन फॉण्टों का इस्तेमाल करके अपनी फाइलों और फ़ोल्डरों का नाम हिंदी में दे सकते हैं? क्या आप सर्च के माध्यम से हिंदी में बनी फाइलों और फ़ोल्डरों को ढूंढ सकते हैं? क्या आप फाइलों में हिंदी के गलत शब्दों को फाइंड-रिप्लेस के माध्यम से ढूंढ कर बदल सकते हैं? क्या आप डेटाबेस हिंदी में बनाकर उसे वर्णानुक्रम में रख सकते हैं? क्या आप हिंदी में ऑटो नम्बरिंग कर सकते हैं? क्या आप एक्सेस में डेटाबेस तैयार कर उसकी हिंदी में क्वैरी कर सकते हैं? नहीं.... आप यह कुछ भी नहीं कर सकते।

इन सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए आपको अपने कंप्यूटर में यूनिकोड सक्रिय करना आवश्यक है। यह कोई अलग से सॉफ्टवेयर नहीं है, बल्कि आपके कंप्यूटर में इनबिल्ट है, इसे बस सक्रिय करना होता है। तो आइये जाने.... इसे कैसे सक्रिय करना है।

सबसे पहले स्टार्ट मैन्यू में क्लिक करें। इसके बाद कंट्रोल पैनल। कंट्रोल पैनल में रीजन एन्ड लैंग्वेज। रीजन एन्ड लैंग्वेज में सबसे पहले हम कंप्यूटर की लोकेशन बदलते हैं। क्योंकि कंप्यूटर में डिफाल्ट लोकेशन यूनाइटेड स्टेट अमेरिका पड़ी हुई है। हम जानते हैं कि हम जो ऑपरेटिंग सिस्टम प्रयोग में ला रहे हैं यानी माइक्रोसॉफ्ट का विंडोज एक्सपी या विंडोज 7 या विंडोज 10, यह कंपनी यूनाइटेड स्टेट अमेरिका की है। इसलिये हमारे कम्प्यूटरों में लोकेशन यूनाइटेड स्टेट अमेरिका ही है। जब हमारे कंप्यूटर की लोकेशन ही यूनाइटेड स्टेट अमेरिका है तो यह हिंदी या भारत की अन्य भाषा को कैसे जानेगा? तो हमें अपने कंप्यूटर की लोकेशन बदलनी है। हमें इसे बताना है कि महोदय आप इस समय भारत में हैं। हमें लोकेशन "इंडिया" करनी है। इसके बाद हमें अपना की-बोर्ड बदलना है। इसे हिंदी करना है। इसके बाद ओके करते ही आपका कंप्यूटर हिंदी में काम करने लगेगा। अब आप वह सब कुछ कर सकते हैं जो अभी तक आप केवल अंग्रेजी में ही कर पाते थे।

इसके बाद बात आती है, "इनपुट मैथड एडिटर" की। इसमें आपको तीन तरह के की-बोर्ड मिलते हैं-

1. ट्रांसलिटरेशन यानी लिप्यंतरण की-बोर्ड - मतलब आप रोमन लिपि में टाइप करें और आपको आउटपुट मिले देवनागरी लिपि में। यह उन प्रयोक्ताओं के लिए है। जिन प्रयोक्ता को थोड़ा बहुत हिंदी का टाइप करना होता है और वे हिंदी टाइपिंग नहीं जानते हैं।

इसके लिए गूगल हिंदी इनपुट, माइक्रोसॉफ्ट का इंडिक आईएमई, बारहा आदि कई लिप्यंतरण की-बोर्ड उपलब्ध हैं। परन्तु सबसे सरल एवं सुविधाजनक गूगल हिंदी इनपुट रहेगा। इसमें यह खासियत है कि यह आपके द्वारा दिए गए पहले अक्षर से ही आपको विकल्प की सुविधा प्रदान करता है और यह आपके शब्दों को अपनी डिक्शनरी में जोड़ता जाता है। इसलिए आप अपने मन से यह भ्रम निकाल दें कि कंप्यूटर पर हिंदी टाइप करने के लिए आपको टाइपिंग सीखनी पड़ेगी। लिप्यंतरण टूल का प्रयोग करें और जब आप रोमन में टाइप करेंगे तो वह अपने आप देवनागरी में बदल कर टाइप हो जाएगा।

2. रेमिंग्टन की-बोर्ड - यह सबसे पुराना और अब काफ़ी हद तक आउटडेटेड तरीक़ा है। यह एक टच टाइपिंग विधि है। इसके लिए पहले से टाइपराइटर पर हिंदी टाइपिंग सीखी होनी चाहिए। यह सिर्फ़ उनके लिए उपयोगी है जिन्होंने पहले से टाइपराइटर पर हिंदी टाइपिंग सीखी हो तथा इसके अभ्यस्त हों। कंप्यूटर पर नए सिरे से सीखने हेतु यह उपयुक्त नहीं।

3. इन्स्क्रिप्ट की-बोर्ड - इसका विकास भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने किया है। यह भी एक टच टाइपिंग प्रणाली है। यह विधि भारतीय भाषाओं में टाइपिंग की सर्वाधिक वैज्ञानिक विधि है। इस विधि से कंप्यूटर पर सर्वाधिक गति से हिंदी टाइप की जा सकती है। यह हिंदी टाइपिंग की सर्वश्रेष्ठ एवं सरल विधि है। इस की-बोर्ड में आप देखेंगे कि व्यंजन दायीं ओर तथा स्वर वायीं ओर दिए गए हैं। इसके लिए आपको सिर्फ हफ्ते-पंद्रह दिन अभ्यास करना पड़ता है।

इसप्रकार हम कह सकते हैं कि आजकल लगभग सभी डिजीटल उपकरणों में हिंदी में काम करना सम्भव है। भाषाई समर्थन ने तकनीकी विभाजन की दूरी को पाटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। यूनिकोड सिस्टम ने हिंदी को सभी कम्प्यूटिंग डिवाइसों तक पहुँचा दिया है। यूनिकोड सिस्टम के कारण कंप्यूटर पर हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में काम करना अंग्रेजी जैसा ही सरल हो गया है। इसी कारण अब आप देखते होंगे कि इंटरनेट पर भी हिंदी की वेबसाइटों की भरमार हो गई है। तो आइए! हम भी अपने कंप्यूटरों में हिंदी यूनिकोड सक्रिय करके उपर्युक्त में से किसी एक की-बोर्ड के माध्यम से हिंदी में काम करना प्रारंभ करें।

हाँ ! एक बात मैं और कहना चाहूंगा कि कोई हतोत्साहित करे, तो उसकी बातों में न आएँ। जरूरत पड़ने पर नया सीखने-पढ़ने से भी न झिझकें, क्योंकि जैसे सीखने की कोई उम्र नहीं होती, वैसे ही चाहने और पाने की भी नहीं होती। बस जुटे रहें।

यह बात बिल्कुल सही है कि सीखने की कोई उम्र नहीं होती है फिर भी पता नहीं कई लोग कोई भी नई चीज सीखने में क्यों हिचकिचाते हैं। कहते हैं "भला ये भी क्या उम्र है सीखने की" मैं उन लोगों की धारणा को आज एक उदहारण देकर गलत साबित करना चाहता हूँ-

एक बार स्वामी रामतीर्थ जापान गए। वहां उनकी भेंट एक वृद्ध से हुई। पता चला कि वे 75 वर्ष के हैं तथा जर्मन भाषा सीख रहे है। स्वामी जी उनके उत्साह को देखकर प्रभावित हुए और बोले-

"बाबा, इस उम्र में जर्मन भाषा सीखकर आप क्या करेंगे?"

स्वामी जी के प्रश्न को सुनकर वह मुस्कराये और गम्भीर होकर बोले- "स्वामी जी! सीखने की कोई उम्र नहीं होती। मैं प्राणिशास्त्र में परास्नातक (पीजी) हूं। जर्मन भाषा में इस विषय में कई अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुई है। मैं चाहता हूं कि उनका जापानी में अनुवाद करूं, ताकि मेरे देशवासी उससे लाभ उठा सकें।"

उस वृद्ध के उत्साह और देशवासी के प्रति लगाव को देखकर स्वामी रामतीर्थ जी उसके आगे श्रद्धा से झुक गए और पैर छूते हुए बोले, "मैं समझ गया कि अब जापान को आगे बढ़ने से कोई नहीं रोक सकता।"

तो पता चला आपको कि सीखने की कोई उम्र नहीं होती है। आप जब चाहें, जहां चाहें और जिससे भी चाहें, उससे कुछ भी सीख सकते हैं। अगर आपमें सीखने की ललक है तो न तो अपनी उम्र देखें और न ही उसकी, जो आपको कुछ सीखा रहा है। अगर उम्र पर ध्यान देंगे तो आप कुछ नहीं सीख पाएंगे।

याद रखें - "जीवन में सीखना कभी न छोड़ें"।

वरिष्ठ अनुवादक
पूर्वोत्तर रेलवे, गोरखपुर-273012
मो.नं.- 9794840674

क-ग्युर एवं तन्युर - वाचन के गुण, लाभ एवं अनुशंसा

—(स्व.) प्रो. बनारसी लाल[1]—

भगवान् बुद्ध के उपदेश आज विश्व में पालि, संस्कृत, चीनी एवं तिब्बती भाषाओं में उपलब्ध हैं। मूलतः बुद्ध वचन पालि एवं संस्कृत में संकलित किये गए थे, जिनका अविकल अनुवाद चीनी एवं तिब्बती भाषाओं में भी हुआ है। अनुवाद की दृष्टि से चीनी की अपेक्षा तिब्बती भाषा में अनूदित साहित्य अधिक सटीक एवं पूर्ण माना जाता है। पालि-भाषा में संकलित बुद्ध-वचन को त्रिपिटक कहा जाता है। त्रिपिटक में तीन पिटक(=पिटारे) हैं, यथा- विनय-पिटक, सूत्र-पिटक और अभिधर्म-पिटक। विनय-पिटक में भिक्षु-भिक्षुणियों, श्रामणेर-श्रामणेरियों से सम्बद्ध विनय अर्थात् शील सम्बन्धी नियमों का संकलन है। सूत्र-पिटक में भगवान् बुद्ध के समय-समय पर दिये गये उपदेशों का संकलन है और अभिधर्म-पिटक में दर्शन अर्थात् तत्त्व-चिन्तन सम्बन्धी विचारों का संकलन है।

भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को अपने उपदेशों का जनभाषा में धर्म प्रचार करने के लिए कहा था। तत्कालीन मगध की भाषा मागधी कहलाती है, जो सम्प्रति प्रचलित पालि भाषा का मूल रूप है। तत्कालीन समय में चार प्रकार की भाषाएं प्रचलित थीं– संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं पैशाची। बुद्ध ने अनेक भाषाओं में उपदेश दिये उन में संस्कृत भाषा भी एक थी। बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद जब बुद्ध वचनों का संगायन हुआ, तब सर्वास्तिवादी-निकाय के अनुयायियों ने बुद्ध के तीनों पिटकों का संस्कृत भाषा में संगायन किया। ईसा की प्रथम शताब्दी से ही भारतीय आचार्यों ने इन पर अपनी टीका-टिप्पणियाँ संस्कृत-भाषा में कीं और नालन्दा, विक्रमशील, ओदन्तपुरी आदि विश्वविद्यालयों में इसी भाषा में बौद्ध विद्याओं का अध्ययन, चिन्तन और मनन होने लगा था।

जब सातवीं शताब्दी में बौद्धधर्म-दर्शन की परम्परा तिब्बत पहुँची तो उसका मूल संस्कृत-भाषा ही था। सातवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक तिब्बत में सतत बौद्ध-सूत्रों और शास्त्रों का संस्कृत से तिब्बती भाषा में अनुवाद सम्पन्न हुआ। तिब्बत में समय-समय पर इन अनुवादों का संकलन किया गया। इन अनुवादों का पहला संकलन नवीं शताब्दी में हुआ। इस संकलन की सूची-पत्र *ल्दन्-द्कर-म,* म्छिमस्-फु-म एवं *ह्फङ्-थङ्-म* नाम से प्रसिद्ध हैं। चौदहवीं शताब्दी में नरथङ नामक स्थान में पहली बार बुद्ध के उपदेशों एवं आचार्यों के शास्त्रों को वर्गीकृत कर *क-ग्युर* एवं *तन्युर* नाम दिया गया।

---

1. श्री टी. आर. शासनी को यह लेख स्वर्गीय बनारसी लाल जी के अप्रकाशित लेख-संकलन में प्राप्त हुआ है, कतिपय संशोधन एवं सम्पादन के साथ इसका प्रकाशन किया जा रहा है।

क-ग्युर का अर्थ है- बुद्ध के वचनों का अनुवाद,'क' का अर्थ है वचन, वाणी या उपदेश तथा 'ग्युर' का अर्थ है अनुवाद। इसी प्रकार *तन्ग्युर* शब्द में भी 'तन्' का अर्थ है- शास्त्र और 'ग्युर' का अर्थ है- अनुवाद । इस प्रकार *क-ग्युर* भगवान् बुद्ध के उपदेशों एवं वचनों का संकलन है तथा *तन्ग्युर* इन बुद्ध वचनों के अर्थों को स्पष्ट करने के लिए भारतीय आचार्यों, विद्वानों और सिद्धों द्वारा रची गयी टीका, टिप्पणियाँ और व्याख्याओं का संकलन है।

सामान्यतया *क-ग्युर* में 108 पोथियाँ उपलब्ध होती हैं। इसके देगे, चोने, नरथंग, पेचिंग आदि अनेक संस्करण हैं। इन संस्करणों के सम्बन्ध में इस संक्षिप्त लेख में चर्चा करना संभव नहीं है। *देगे क-ग्युर* के अनुसार इसमें 1108 ग्रन्थ हैं। *क-ग्युर* का सम्पूर्ण विषय विभाजन नौ भागों में किया गया है। पहले भाग का विषय '*दुल्-वा'* अर्थात् विनय है। इसमें समय-समय पर भगवान् बुद्ध द्वारा भिक्षु-भिक्षुणियों, श्रामणेर-श्रामणेरियों के लिए दिये गए विनय सम्बन्धी नियमों के विवरण हैं। स्थविरवादी निकाय में भिक्षुओं के लिए 227 तथा भिक्षुणियों के लिए 311 नियम स्थापित हैं। इनमें थोड़ा-बहुत अन्तर भी है, यथा सर्वास्तिवादी निकाय में भिक्षुओं के लिए 262 तथा भिक्षुणियों के लिए 371 नियम हैं। ये 13 पोथियों में संकलित हैं।

दूसरा विषय 'शेर्-छिन्' अर्थात् प्रज्ञापारमिता का है। प्रज्ञापारमिता का विशाल साहित्य है, इसमें मूलतः महायानी दर्शन एवं साधना का उल्लेख है। इसके अनेक विशाल ग्रन्थ हैं; जैसे- शतसाहस्रिका-प्रज्ञापारमिता, पञ्चविंशति-साहस्रिका प्रज्ञापारमिता, अष्टादशसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, दशसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र आदि। केवल शतसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता की ही 12 पोथियाँ हैं। इस प्रकार, प्रज्ञापारमिता भाग में 21 पोथियां हैं, जिनमें 36 छोटे बड़े ग्रन्थ हैं। इसके पश्चात् तीसरा भाग *फल्-छेन्* अर्थात् अवतंसक सूत्रों का है, इसे महावैपुल्य सूत्र भी कहा जाता है। यद्यपि इसमें एक ही ग्रन्थ *बुद्धावतंसक महावैपुल्यसूत्र* नाम से है, परन्तु इसके मध्य 49 विभिन्न ग्रन्थ समाविष्ट हैं। इसकी चार पोथियाँ हैं। इसमें चित्त की प्रभास्वरता से सम्बन्धित विषय मुख्य है। चौथा विषय *कोन्-छेग्* अर्थात् *रत्नकूट-सूत्र* का है। *रत्नकूट-सूत्र* छह पोथियोँ में हैं तथा इसमें भी 49 ग्रन्थ हैं। पोथियों की संख्या संस्करणों के अनुसार भिन्न-भिन्न है। इनमें विविध प्रकार के विषयों का समावेश है। विशेष रूप से इसमें प्रश्नोत्तर शैली में निबद्ध सूत्र हैं। इनका प्रमुख विषय तथागतगर्भ से सम्बन्धित है। ऐसा माना जाता है कि *फल्-छेन्* एवं *कोन्-छेग* का उपदेश तथागत बुद्ध ने तृतीय धर्मचक्र में किया था। पाँचवां विषय *दो-दे* अर्थात् *सूत्र-वर्ग* है। भगवान् बुद्ध के द्वारा समय-समय पर अनेक स्थानों एवं परिषदों के समक्ष दिये गए लघु एवं दीर्घ अनेक सूत्रों का संकलन इस वर्ग के अन्तर्गत हुआ है। इसमें कुल 32 पोथियाँ हैं, इनमें 266 लघु एवं दीर्घ सूत्र हैं। इसके पश्चात् *ग्युद्-बुम्* अर्थात् *तन्त्र-वर्ग* है। *तन्त्र-वर्ग* में लघु एवं दीर्घ कुल 468 तन्त्र-ग्रन्थों का संकलन हुआ है। इसी तरह से *प्राचीन-तन्त्र-वर्ग* में 17 तन्त्र-ग्रन्थ हैं। इन्हें

प्राचीन-तन्त्र इसलिए कहा गया, क्योंकि ये बहुत ही प्रारम्भिक काल में तिब्बत में पहुँचे थे, विशेषकर सातवीं-आठवीं शताब्दी में । बाद में इनका अधिक प्रचार-प्रसार नहीं हुआ । अन्तिम भाग *धारणी-संग्रह* का है, जिसमें 263 धारणी ग्रन्थ समाविष्ट हैं । इस तरह बुद्ध द्वारा साक्षात् एवं परम्परया उपदेशित वचनों के संग्रह को तिब्बती भाषा में *क-ग्युर* नाम से अभिहित किया गया ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भोट देश के साथ-साथ सम्पूर्ण हिमालयी क्षेत्रों में भी संस्कृत से अनूदित इन बौद्ध-साहित्यों की परम्परा का विकास हुआ, जो आज तक निरन्तर प्रवहमान है । यद्यपि भोट-परम्परा में *क-ग्युर* एवं *तन्ग्युर* या बौद्ध-सूत्रों के वाचन की परम्परा कब से प्रारम्भ हुई इसे इदमित्थं रूप से कहना कठिन है । फिर भी, सम्पूर्ण महायानी साहित्य का अवलोकन करने पर विदित होता है कि बुद्ध-वचनों में, सूत्रों में एवं बुद्ध द्वारा प्रेरित बोधिसत्त्वों के वचनों में बौद्ध-सूत्रों के वाचन की अनन्त महिमा गायी गयी है । पढ़ना ही नहीं इन्हें पढ़वाना, लिखना, लिखवाना, दूसरों के लिये इसका अर्थ प्रकाशित करना, इनके अर्थों को धारण करना, ग्रहण करना इत्यादि के भी अनन्त गुण, अनुशंसाएं एवं लाभ बतलाये गये हैं । सभी सन्दर्भों को यहाँ उद्धृत करना सम्भव नहीं है, यहाँ कुछ ग्रन्थों के सन्दर्भ को दिया जा रहा है । जैसे कि प्रज्ञापारमिता-सूत्रों में अत्यन्त प्रसिद्ध *वज्रच्छेदिका-प्रज्ञापारमिता नामक सूत्र* के पृष्ठ 58-60 में विभिन्न सन्दर्भों में कहा गया है– ''महायान के पथिक वे हैं, जो इन धर्मपर्यायों को ग्रहण करेंगे, इसका वाचन करेंगे, और अध्ययन करेंगे तथा दूसरों के लिए भली प्रकार से प्रकाशित करेंगे, उनको तथागत बुद्ध, ज्ञान द्वारा जानते हैं । सुभूति, उन्हें तथागत ने बुद्ध-चक्षु द्वारा देख लिया है और वे तथागत को भली प्रकार विदित हैं । ये सभी प्राणी, सुभूति ! अप्रमेय पुण्यराशि से लाभान्वित होंगे । सुभूति, ये सभी प्राणी अचिन्त्य, अतुल्य, असीमित, अपरिमित पुण्यराशि से लाभान्वित होंगे । सुभूति, ये सभी प्राणी समान अंशों में बोधि धारण करेंगे ।.....और भी सुनो सुभूति ! जो कुलपुत्र एवं कुलपुत्रियाँ इन सूत्रों को मन में धारण करेंगे, इनका उच्चारण और अध्ययन करेंगे, ध्यान पूर्वक बुद्धिमानी के साथ इन पर विचार करेंगे, दूसरों के लिये इन्हें प्रकाशित करेंगे, वे परिभूत होंगे । ऐसा किस कारण ? क्योंकि जो अशुभ कर्म इन प्राणियों ने अपने पूर्व जन्मों में किये हैं, जो इनको दुःखपूर्ण गतियों में ले जाने वाले हैं, वे प्राणी इसी जीवन में, उपर्युक्त रूप से परिभूत(=पराजित, शान्त, दान्त) होने के कारण, अपने उन पूर्व-जन्मों के अशुभ कर्मों को दबा देंगे, ढ़क देंगे, प्रभावहीन कर देंगे और बोधि को प्राप्त होंगे । ऐसा किस कारण ? सुभूति, मैं जानता हूँ कि भूतकाल में, अगणित असंख्य-कल्पों में 84000 करोड़ बुद्ध हुए हैं, उन तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध दीपंकर बुद्ध को बहुत पहले जिन्हें मैंने अपनी सेवा से सन्तुष्ट किया था और सन्तुष्ट करके भी मैं उनसे विरत नहीं हुआ था । परन्तु सुभूति, यदि एक ओर, मेरे द्वारा इन बुद्धों को सन्तुष्ट करके भी उनसे विच्छिन्न नहीं होना, और अन्तिम युग में,

पश्चात् समय में, अन्तिम पाँच सौ वर्षों में सद्धर्म के प्रलोप के समय में कुछ व्यक्तियों द्वारा इस सूत्रान्त का ग्रहण किया जाना, धारण किया जाना, "*उद्वाचन*" होना, अध्ययन होना और दूसरों के लिए भली प्रकार प्रकाशित किया जाना– यदि इन दोनों कार्यों को पुण्य की दृष्टि से मापा जायं, तो सुभूति, इस पहले कार्य का पुण्य इस दूसरे कार्य के पुण्य के सामने नगण्य है। पहले कार्य का पुण्य दूसरे कार्य के पुण्य का सौवाँ भाग भी नहीं है, हज़ारवाँ भाग भी नहीं, शतसहस्र करोड़वाँ भाग भी नहीं है। उसकी कोई संख्या नहीं है, किसी से भी इसकी अंशतः गणना, उपमा, समानता अथवा तुलना नहीं हो सकती।

इसी प्रकार अनेक प्रकार के उदाहरण देकर इस सूत्र के पाठ करने से, इसके अर्थों को दूसरों के लिए प्रकाशित करने से, वाचन करने से, अध्ययन करने से मिलने वाले पुण्यों एवं लाभ का उल्लेख है। एक सूत्र ग्रन्थ ही नहीं अपितु इस ग्रन्थ के चतुष्पद गाथा को भी यदि दूसरे के हित के लिए प्रकाशित करे तो उसे इस कार्य के परिणाम स्वरूप महत्तर असंख्य और अप्रमेय पुण्यराशि प्राप्त होगी। कहा है–''जिस भू-भाग पर किसी भी व्यक्ति ने इस सूत्र की चार पंक्तियों की एक गाथा प्रकाशित की हो, तो वह भू-भाग भी देवताओं, मनुष्यों एवं असुरों सहित सम्पूर्ण लोक के लिए चैत्य की तरह पवित्र हो जाता है। तब उन व्यक्तियों के बारे में हम क्या कहें जो इस सम्पूर्ण धर्मोपदेश को मन में धारण करेंगे, जो इसको कहेंगे, पढ़ेंगे, और दूसरों के लिए इसे प्रकाशित करेंगे? सुभूति, ऐसे लोग परम आश्चर्यमय शुभगति, सौभाग्य को प्राप्त होंगे, और उस पवित्र भू-भाग पर शास्ता बुद्ध स्वयं निवास करते हैं अथवा उसके प्रतिनिधि स्वरूप अन्य विज्ञ गुरु निवास करते हैं'।

सुभूति पुनः कहते हैं– "परन्तु ऐसे प्राणी जो भविष्यत् काल में, अन्तिम युग में, अन्तिम पाँच सौ वर्षों में, सद्धर्म के लोप होने के समय में विद्यमान होंगे, और जो उस काल में इस धर्मपर्याय को ग्रहण करेंगे, धारण करेंगे, इसका वाचन करेंगे, निश्चय ही वे परम आश्चर्यमय सुगति को प्राप्त होंगे"। भगवान् बुद्ध इसका अनुमोदन करते हुए कहते हैं, "सुभूति, ऐसा ही है। वे प्राणी परम आश्चर्यमय सुगति को प्राप्त होंगे, जो इस सूत्र के कहे जाने पर न त्रसित होंगे, न भयभीत होंगे और न संत्रस्त होंगे।...." आगे वज्रच्छेदिका के पृष्ठ 52-60 (हिन्दी-अनुवाद) में कहते हैं– "सुभूति, जो कुलपुत्र और कुलपुत्रियाँ इस धर्म-पर्याय को ग्रहण करेंगी, इसे धारण करेंगी, वाचन और अध्ययन करेंगी, और इसे दूसरों के लिए पूर्ण रूप से प्रकाशित करेंगी, उन्हें तथागत बुद्ध ज्ञान द्वारा जानते हैं। ये सभी प्राणी अप्रमेय और असंख्य पुण्यस्कन्ध को उत्पन्न और प्राप्त करेंगे। पुनः सुभूति, यदि कोई स्त्री अथवा पुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल के समय गंगा नदी के बालु-कणों की संख्या के समान अपना और अपने सर्वस्व का परित्याग करते रहें, इसी प्रकार मध्याह्न में, सायंकाल के समय भी परित्याग करते रहें, और शतसहस्र-कल्पों तक परित्याग करते रहें, कोई एक दूसरा व्यक्ति इस धर्म-पर्याय को सुनता है, सुन कर इसे तिरस्कृत

नहीं करता है तो यह व्यक्ति अपने इस कार्य के बल से बहुतर, अप्रमेय और असंख्य पुण्यराशि का लाभ करता है। जब सुनने से ही महत्फल होता है, तो उस व्यक्ति के बारे में क्या कहना जो इस धर्म-पर्याय को लिखकर ग्रहण करता है, हृदयंगम करता है, वाचित करता है, पढ़ता है और दूसरों के हित के लिए अर्थ प्रकाशित करता है"।

प्रज्ञापारमिता सूत्रों में ही दूसरा महत्त्वपूर्ण सूत्र *ग्यद्-तोङ्-वा* अर्थात् *अष्टसाहस्रिका-प्रज्ञापारमिता-सूत्र* है। इसके तृतीय *अप्रमेयगुणधारणपारमितास्तूप-सत्कार परिवर्त* में अत्यन्त विस्तार से प्रज्ञापारमिता सूत्रों के धारण करने, वाचन करने, श्रवण करने, सुन कर ग्रहण करने, पाठ करने एवं अर्थों को प्रकाशित करने वाले जो कुलपुत्र एवं कुलपुत्रियाँ हैं उनको मार एवं मार कायिक देव, मनुष्य या अमनुष्य हानि नहीं पहुंचा सकते आदि कहकर गुणगान किया है। विरूपाक्ष आदि चार महाराज, देवराज शक्र, सहांपति ब्रह्मा और उनके अनुचर बुद्ध के समक्ष सतत इनकी रक्षा करने की प्रतिज्ञा लेते हैं। पुनः बुद्ध कहते हैं कि जो विग्रह करने, विवाद करने और विरोध करने की सोचेंगे, उनका अभिप्राय पूर्ण नहीं होगा। क्योंकि कुलपुत्र एवं कुलपुत्रियों द्वारा इस सूत्र के धारण, वाचन, ग्रहण, उपदेश एवं अध्ययन करने से विग्रह, विवाद और विरोध करने वालों के मन में ये भावनाएं उत्पन्न नहीं होंगी और उनकी अभिलाषाएं पूर्ण नहीं होंगी।

आगे पुनः कहा है कि इसके धारण करने, वाचन करने आदि से वे मृदुभाषी, मितभाषी होंगे, क्रोध से अभिभूत नहीं होंगे, अहंकार से अभिभूत नहीं होंगे। यदि वे संग्राम में जाएंगे तो पराभव होने का कोई अवसर नहीं होगा। उनकी अकाल मृत्यु नहीं होगी, उनके शरीर पर शस्त्र, दण्ड, ढेले आदि फैंके तो उनके शरीर में लगेगा ही नहीं। इस प्रकार पूरे परिच्छेद में इस सूत्र को धारण, ग्रहण, वाचन, लिखने, लिखवाने, पाठ करने, दूसरों को अर्थों को प्रकाशित करने, स्वाध्याय करने इत्यादि के अनन्त गुणों एवं अनुशंसाओं का निर्देश है। इतना ही नहीं इन प्रज्ञापारमितासूत्रों या *क-ग्युर* आदि को दिव्य पुष्पों, दिव्य गन्धों, दिव्य धूपों, दिव्य मालाओं, दिव्य विलेपनों, दिव्य चूर्णों, दिव्य वस्त्रों, दिव्य छत्रों, दिव्य ध्वजों, दिव्य घण्टाओं, दिव्य पताकाओं, चारों ओर दिव्य दीप-मालाओं, अनेक प्रकार की विविध पूजाओं से सत्कार करने, आदर करने, सम्मानित करने, पूजा करने, अर्चना करने से भी बहुतर पुण्यों की प्राप्ति का निर्देश उपलब्ध है। इन सभी विषयों पर यहां विस्तार से उल्लेख करना सम्भव नहीं है।

यहाँ उदाहरण स्वरूप केवल *वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमितासूत्र* एवं *अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितासूत्र* का उद्धरण दिया गया है। इसी प्रकार अन्यान्य महायान-सूत्रों में भी पढ़ने, पढ़वाने, लिखने, लिखवाने, सुनने, सुनवाने, मन में धारण करने, अर्थ प्रकाशित करने इत्यादि के विस्तृत लाभों का उल्लेख मिलता है। यद्यपि *क-ग्युर* में स्तोत्र कम ही हैं, परन्तु जो उपलब्ध हैं उन में भी इनके पाठ एवं वाचन के लाभ एवं अनुशंसाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। वहाँ उन स्तोत्रों के पढ़ने, पढ़वाने इत्यादि से अपरिमित पुण्यों की प्राप्ति का उल्लेख मिलता है।

उदाहरण स्वरूप *जम्-पल् .छन्-जोद्* अर्थात् *नामसंगीति* को ले सकते हैं । इस ग्रन्थ की अनुशंसा के चतुर्थ चक्र में कहा गया है- "जो कोई भी कुलपुत्र या कुलदुहिता या साधक इस *परमार्थ नामसंगीति* को सम्पूर्ण अखण्ड रूप से प्रतिदिन तीनों कालों में धारण करेगा, वाचन करेगा, या दूसरों को विस्तार से प्रकाशित करेगा, उसे बोधिसत्त्व सर्वधर्मों का दर्शन करायेगा। उसके चित्त में सभी बुद्ध एवं बोधिसत्त्वों का अधिष्ठान होगा और सभी बुद्ध एवं बोधिसत्त्व उसे अनुगृहीत करेंगे। सभी महाराज्ञी, सभी विघ्न-विनायक, मार, प्रत्यंगिरा और महा-अपराजिता, दिन-रात प्रतिक्षण उसकी रक्षा करेंगे। ब्रह्मा, रुद्र, महेन्द्र आदि देव और दिक्पाल सभी दिन रात सतत सोते-जागते, ग्राम में, नगर में, वन में सर्वत्र रक्षा करेंगे और जो दूसरे देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, ग्रह-नक्षत्र, सप्त मातृकाएँ, यक्षिणी, राक्षसी हैं, उनके परिवार एवं सैनिक हैं, वे सभी भी उसकी रक्षा करेंगे, उसे आयु तथा आरोग्य प्रदान करेंगे"।

इसी स्तोत्र की अनुशंसा अर्थात् नामसंगीति अनुशंसा परिवर्त के पञ्चम चक्र में कहा गया है– "जो इस चूड़ामणि रूप *नामसंगीति* का *मञ्जुश्रीज्ञानसत्त्व* के रूप का आलम्बन कर अखण्ड रूप से तीन बार कण्ठ में आवृत्ति करेंगे, या पुस्तक से पाठ करेंगे, उसकी निर्माणकाय बुद्ध शीघ्र रक्षा करेंगे। आकाश में जितने भी बुद्ध एवं बोधिसत्त्व हैं, वे उसकी रक्षा करेंगे, उसका कभी दुर्गति में पतन नहीं होगा, वह नीच कुलों में पैदा नहीं होगा, प्रत्यन्त जनपदों में पैदा नहीं होगा, हीन इन्द्रिय नहीं होगा, मिथ्या दृष्टि वाले कुल में पैदा नहीं होगा। जहाँ बुद्ध नहीं है, ऐसे क्षेत्रों में पैदा नहीं होगा, बुद्ध से और न ही उनके द्वारा देशित धर्म से कभी विमुख होगा। न ही दीर्घायु देवों में पैदा होगा और न दुर्भिक्ष, रोग आदि के समय और न ही पञ्चकषाय काल में पैदा होगा। उसे राजकोप, शत्रु और चोरी इत्यादि का भय नहीं होगा और न ही सभी उपकरणों से विकल होकर दरिद्र होने का भय होगा। न निन्दा, अपयश, अकीर्ति आदि का भय होगा। अच्छे कुल में पैदा होगा, सुरूप एवं प्रियदर्शी होगा, जब भी जहाँ भी उत्पन्न होगा, उसे पूर्वजन्मों का स्मरण होगा, महान् भोग वाला होगा, अक्षय परिवार वाला होगा। सभी अग्रणी सत्त्वों में अग्र गुणों से समन्वागत होगा। वह स्वभावतः छह पारमिता गुणों से सम्पन्न होगा, चतुर्ब्रह्मविहारी होगा, स्मृति, सम्प्रजन्य, उपाय, बल और प्रणिधि ज्ञान से युक्त होगा। सभी शास्त्रों में प्रवीण एवं वाग्मी होगा। स्पष्ट बोलने वाला, अजड़ और पटु होगा। आलस्य से रहित दक्ष और सन्तुष्ट रहने वाला होगा। सभी का परम विश्वासी, आचार्य एवं गुरु जनों से सम्मत होगा। सभी शिल्प कलाओं का जिनका उन्हें पूर्व में ज्ञान नहीं था, उनमें प्रतिभा सम्पन्न होगा। सुपरिशुद्ध शील और आचरण वाला होगा"।

इसी प्रकार *आर्यतारा*, *आर्यावलोकितेश्वर*, *आर्यमञ्जुश्री*, *आर्यमैत्रेय* आदि की स्तुतियों में भी इनके पाठ एवं वाचन के अनन्त गुणों का निर्देश मिलता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि *क-ग्युर* के सूत्रों के वाचन, पाठ करने एवं करवाने से, लिखने एवं लिखवाने से, अध्ययन-

मनन कर मन में धारण करने से, दूसरों को इसके अर्थों को प्रकाशित करने से उपर्युक्त अकल्पनीय गुणों का लाभ होता है। इसी महत्त्व के चलते आज भी भारतीय हिमालयी भोट-बौद्ध-परम्परा के परिवारों में सम्पूर्ण *क-ग्युर* का पाठ न भी करवा पाये, तो भी प्रतिवर्ष *क-ग्युर* के कुछ बौद्ध-सूत्रों के पाठ करने का प्रचलन आज भी जीवन्त है। यदि गृहपति आर्थिक रूप से सम्पन्न एवं धार्मिक प्रवृत्ति के हों तो सम्पूर्ण *क-ग्युर एवं तन्ग्युर* का भी पाठ करवाते हैं, और अन्तिम दिन गाँव वालों तथा सम्बन्धियों को भोज देकर पुण्य के भागी बनते हैं।

क-ग्युर-तन्ग्युर के पाठ का उद्देश्य उपर्युक्त पुण्यों की प्राप्ति के अतिरिक्त, विश्व में शान्ति स्थापित करना, मानव-मानव के बीच सद्भाव पैदा करना, प्रेम, मैत्री, करुणा, मुदिता आदि सद्गुणों के माध्यम से मानवीय मूल्यों को स्थापित करना, सभी सत्त्वों के राग, द्वेष, मोह आदि क्लेशों का नाश करना तथा सभी सत्त्वों का सदा कल्याण करना- जैसे उदात्त गुणों को उत्पन्न करना है।

अन्ततः सभी प्राणी पुण्य-संभार एवं ज्ञान-संभार का संचय कर प्राणिमात्र के हित के लिए बुद्धत्व-पद को प्राप्त हों, इसी परिणामना के साथ सभी का मंगल हों।

सभी सत्त्व सुख एवं सुख के कारणों से अन्वित हों।
सभी सत्त्व दुःख एवं दुःख के कारणों से विरहित हों।
सभी सत्त्व दुःख-रहित हों और सुख से विरहित न हों।
समीप एवं दूरस्थ सभी सत्त्व राग-द्वेष दोनों से विरहित होकर,
उपेक्षा में स्थित हों।
उत्तम बोधिचित्त-रत्न, अनुत्पन्नों में उत्पन्न हों।
उत्पन्न का नाश न हो और उत्तरोत्तर विकसित हो।

॥ भवतु सर्वमङ्गलम् ॥

पूर्व दिवंगत आचार्य
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी

बुद्ध एवं प्रकृति

—प्रो. उमेश चन्द्र सिंह—

बुद्ध का जन्म एवं सम्पूर्ण जीवन के क्रिया-कलापों का सम्बन्ध मज्झिम देश (भारत का मध्य देश) रहा है। यहाँ की प्रकृति का वर्णन करते हुए बुद्ध कहते हैं कि- यहाँ कुछ सुहावने उद्यान हैं, अनेक वन हैं, तरणियों एवं उसकी भूमि के अनेक विस्तार हैं, अनेक बीहड़ क्षेत्र हैं, न पार कर सकने योग्य अनेक नदियाँ हैं, घनी विस्तृत झाड़ियाँ हैं और कंटीली वनस्पतियाँ हैं तथा दुर्गम पर्वत हैं। (अंगुत्तर निकाय 1/35)।

बुद्ध को प्रकृति के अन्तर्गत ऋतुओं एवं जलवायु का सम्यक् ज्ञान था, इसीलिए बौद्ध भिक्षुओं को वर्षाकाल में एक स्थान पर स्थिर रहने का निर्देश दिया था, ताकि जीवों व वनस्पतियों की रक्षा हो सके। बुद्ध को वर्षा के कारणों, प्रक्रिया, विविध मेघों, ऋतुचक्र, ऊष्मा, शीत, ताप इत्यादि की विधिवत जानकारी थी। बौद्ध परम्परा में यह धारणा थी कि अन्यायपूर्ण शासन से वर्षा प्रभावित होती है। इसलिए वर्षा की अनुकूलता हेतु सत्कर्म पर जोर दिया गया है। (अंगुत्तर निकाय 2/74-75)

कालान्तर में उद्योगों पर आधारित उपभोगवादी विचारधारा ने प्राकृतिक उत्पादों का अनुचित उपभोग प्रारंभ किया, जिससे वातावरण में विषैली गैसें और रसायन व्याप्त हो गये। इन हानिकारक गैसों एवं रसायनों को बौद्ध परम्परा में वर्णित अन्यायपूर्ण शासन के पर्याय के रूप में देखना उचित प्रतीत होता है।

वर्षा एवं ऋतुओं के साथ बौद्ध ग्रन्थों में मिट्टी की विविध किस्मों का भी सांगोपांग वर्णन हुआ है। गुणवत्ता के विषय में बताया गया है कि वनों को साफ कर प्राप्त किये गये नये क्षेत्र की मृदा भी गुणवत्ता में खराब हो सकती है। (दीघ निकाय, 2/353)। प्रकृति को प्रभावित करने वाली नदियों में गंगा, यमुना, अचिरावती, सरभू तथा माही आदि का विशेष उल्लेख हुआ है (अंगुत्तर निकाय 5/22)। इनमें सरभू एवं माही की पहचान नहीं हो पायी है, जबकि अचिरावती अब राप्ती के रूप में जानी जाती है। बुद्ध के द्वारा नदियों से जुड़े तथ्यों को उपदेश देते समय उपमा के रूप में प्रयोग करना, उनके इस ज्ञान और प्रबन्ध का स्वतः प्रमाण है। जैसे- वे संसार को इस किनारे और निर्वाण को आगे का वह किनारा कहकर संबोधित करते हैं। प्रबोधन के पहले चरण का नाम ही रखा- धारा में प्रवेश। नदी पार करने का यह प्रथम चरण होता है। धर्म का अनुशीलन करने वाले बौद्ध भिक्षुओं के लिए बुद्ध का कथन था कि वह तैरकर पार करना जानता है (मज्झिम निकाय, 1/221)। इसी में आगे नन्द और बुद्ध के वार्तालाप में नदी (प्रकृति) विषयक बहुत ही सुन्दर अभिव्यक्ति मिलती है- नन्द कहते

हैं कि वह नदी के इस किनारे पर नहीं फंसेगा, न ही मझधार में डूबेगा, न ही मुहाने की रेत पर फंसा रहेगा अर्थात् संसार के समस्त मोहों, वासनाओं, तृष्णाओं को पार करता हुआ निर्वाण तक अवश्य पहुँचेगा। इसलिए क्या तथागत, भिक्षु के रूप में उसे स्वीकार करेंगे (संयुक्त निकाय, 5/181) ? बुद्ध ने भी अपनी शिक्षाओं में धम्म की उपमा नदी पार करने वाले बेड़े से करते हुए बताया कि जिस प्रकार नदी पार करने पर बेड़े को छोड़ देते हैं, उसी प्रकार धम्म भी काम चलाऊ है, इससे लिपटना नहीं चाहिए (मज्झिम निकाय, 1/136)।

पहाड़ों के विषय में भी बुद्ध को सम्यक् ज्ञान था। (अंगुत्तर निकाय, 2/140)। हिमालय में कोशल प्रशासन के समय बुद्ध को यहाँ पर एक कुटी में निवास करने का उल्लेख मिलता है (संयुक्त निकाय, 1/116)। जातकों में तो यहाँ तक वर्णित किया गया है कि जो तपस्वी हिमालय रहते थे, वे वर्षा ऋतु में इस क्षेत्र को छोड़ देते थे क्योंकि उस समय वहाँ जीवन निर्वाह दुष्कर हो जाता था (जातक, 3/37)।

बुद्ध ने प्रकृति में व्याप्त वनस्पतियों को भी एकेन्द्रिय जीव स्वरूप स्वीकार किया है। कर्मसिद्धान्त के अन्तर्गत उपमा रूप में वर्णित है कि जिस प्रकार का बीज होगा, उसी प्रकार का फल होगा (संयुक्त निकाय, 1/227)। इसी प्रकार अनेक स्थलों पर बुद्ध ने कृषि, बीज इत्यादि को अपनी शिक्षाओं में उपमा रूप में प्रयोग किया है (संयुक्त निकाय, 1/134)।

पशु जगत के विषय में बुद्ध कहते हैं कि ऐसी विविधता किसी अन्य सजीव में नहीं मिलती (संयुक्त निकाय, 3/152)। बुद्ध का विचार था कि मनुष्यों का पुनर्जन्म मनुष्य की तुलना में पशु रूप में अधिक होता है (अंगुत्तर निकाय, 1/35)। कई स्थलों पर बुद्ध पशुओं को मनुष्यों से श्रेष्ठ घोषित करते हैं (मज्झिम निकाय, 1/341)। बुद्ध वैदिक यज्ञों में हिंसा को क्रूर एवं व्यर्थ ठहराते हुए गाय को अनदां, वरदां, सुखदां कहा है (अंगुत्तर निकाय, 4/41 एवं दीघ निकाय 1/141)। अहिंसा को सर्वोपरि मानते हुए बुद्ध ने कहा कि छड़ी एवं तलवारों को एक तरफ रखकर सभी को दया, करुणा एवं दायित्व के साथ रहना चाहिए (दीघ निकाय, 1/4)। प्रकृति में उपस्थित सूक्ष्म जीवों तक की रक्षा के प्रति बुद्ध अत्यन्त सचेत थे। इसलिए भिक्षु एवं भिक्षुणियों को जिन आठ निजी वस्तुएं रखने का निर्देश था, उनमें पानी में स्थित सूक्ष्म जीवों को छानने वाली छननी भी थी (विनय पिटक, 2/118)। इन सब अहिंसापरक भावनाओं का परिणाम था कि कालान्तर में ग्रीष्म ऋतु में पशु-पक्षियों के पीने के लिए जल की व्यवस्था की जाने लगी। (जातक, 2/70, 2/361)।

पाँचवी शताब्दी ईसापूर्व तक गंगाघाटी के वनक्षेत्र को कृषि के लिए साफ कर लिया गया था। इस कार्य में वनों को जलाया भी जा रहा था, बुद्ध इसके विरुद्ध थे। वे वन और मनुष्यों के बीच सौहार्द के हिमायती थे (विनय पिटक, 2/138)।

बुद्ध का सम्पूर्ण जीवन ही प्राकृतिक वातावरण में सम्पन्न हुआ था। बुद्ध ने भ्रूणरूप में ही प्रकृति से रिश्ता बना लिया था। बताया गया है कि महामाया को गर्भधारण से पूर्व एक स्वप्न आया था। इसमें एक हाथी उनके गर्भ में प्रवेश कर गया था। लुम्बिनी वन में शालवृक्ष के नीचे गौतम ने जन्म लिया न कि पलंग पर। दुःख के कारणों के शमनार्थ गृहत्याग करते हुए भी प्रकृति के साथ बुद्ध प्रकट होते हैं। यहाँ वे अपने अश्व कंथक एवं सारथी छन्दक के साथ आये और आगे ज्ञान की खोज में प्रकृति के पथ पर बढ़ चले। ध्यान साधना हेतु भी प्रकृति प्रेमी बुद्ध ने पीपल के नीचे ध्यानावस्थित होकर मार की बाधाओं को पार किया। इस विजय के पश्चात् भूमिस्पर्श कर सम्बोधि की प्राप्ति की। ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त सर्वकल्याणार्थ सारनाथ (वाराणसी) के मृगदाव में धर्मचक्रप्रवर्तन किया। मृगों से घिरे वन का चयन भी उनके प्रकृति प्रेम का परिचायक है। अन्त में बुद्ध ने परिनिर्वाण के लिए कुशीनगर के शालवन में दो शालवृक्षों के बीच के स्थान का चयन किया। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि प्रकृति से मिली काया और वृक्षों से प्राप्त प्राणवायु को उन्हें वापस लौटाकर गौतम बुद्ध ने इस संसार से विदा लिया।

बुद्ध की मूर्तियों एवं चित्रों में अनेक हस्तमुद्रायें प्रदर्शित हैं। अगर सूक्ष्मता से इनका विश्लेषण किया जाय तो प्रत्येक हस्तमुद्रा में दार्शनिक, आध्यात्मिक विषय के साथ प्रकृति के साथ साहचर्य भी दृष्टिगोचर है। इसलिए कुछ प्रमुख हस्तमुद्राओं की इस दृष्टि से समीक्षा प्रासंगिक है।

नमस्कार मुद्रा (स्वागत मुद्रा) में वक्ष के पास दोनों हाथ जुड़े होते हैं। यह मुद्रा संपूर्ण जीव-जगत और प्रकृति में व्याप्त समस्त तत्वों के प्रति शुभता का भाव प्रदर्शित करती है। तर्जनी मुद्रा (उपदेश मुद्रा) में बंधी मुट्ठी से आकाश की ओर उठी तर्जनी उंगली से मानो बुद्ध भौतिकता, अनाचार और प्रकृति के अंधाधुंध दोहन के प्रति सावधान करते प्रतीत होते हैं। भूमिस्पर्श मुद्रा में बुद्ध ने प्रकृति के सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व पृथ्वी को स्पर्श करते हुए मार-विजय का साक्षी भी बनाया है और प्रकृति की महानता को भी व्यक्त किया है। धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा तो साक्षात् प्राणिमात्र के प्रति महाकरुणा की भावना से ओत-प्रोत है। ध्यानमुद्रा जो एक त्रिकोण बनाती हुई प्रदर्शित है, इसमें दान, अपरिग्रह, दया, त्याग, क्षमा, करुणा, सारे ही भाव प्रकट होते हैं। अभय मुद्रा के विषय में कहा गया है कि बुद्ध ने एक मतवाले हाथी द्वारा उन पर भावी आक्रमण को रोकने के लिए इसका प्रयोग किया था। इसका परिणाम यह रहा कि उन्मत्त गज की न केवल आक्रमकता दूर हुई अपितु शान्ति का अनुभव करने पर वह गज बुद्ध के कदमों में नतमस्तक हो गया।

वरद मुद्रा क्रोध, लोभ आदि से मनुष्य को बचाने या देने के भाव को अभिव्यक्त करती है। मनुष्य की यह वासना उसे प्रकृति को मात्र एक उपयोग हेतु संसाधन मानने की भावना की ओर प्रेरित करती है। भू-धामर मुद्रा जिसे तिब्बत में बौद्ध धर्म के आचार्य पद्मसम्भव द्वारा अपनाया गया है। इसमें बौद्ध धर्म की स्थापना हेतु ऊर्जा प्राप्त कर अशुभ शक्तियों को परास्त करने में सफलता पायी गयी है। वर्तमान समय में मनुष्य अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु जिस तरह प्राकृतिक संसाधनों को दोहन और दुरुप्रयोग कर रहा है। निश्चित ही यह मुद्रा इन बाधाओं को रोकने का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

उत्तरबोधि मुद्रा में दोनों हाथों को जोड़कर दृश्य के पास रखा जाता है और तर्जनी उँगलियाँ एक दूसरे को छूते हुए ऊपर की ओर तथा बाकी उँगलियाँ अन्दर की ओर मुड़ी हुई होती हैं। इस मुद्रा में सर्वोच्च आत्मरगन की प्राप्ति में प्रकृति में व्याप्त सार्वभौमिक ऊर्जा के साथ के महत्व का बोध कराती है।

वज्रप्रमदा मुद्रा, मनुष्य का सत्य से परिचय करवाकर उसके अन्दर असीम शान्ति व ऊर्जा का संचार करती है। प्रकृति के सन्दर्भ में यदि इसका प्रयोग किया जाय तो इस आत्मविश्वास से बड़ी से बड़ी प्राकृतिक विपदाओं यथा- बाढ़, सुनामी, बादल फटना एवं भूकम्प इत्यादि का सहजता से सामना किया जा सकता है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि बुद्ध को प्रकृति एवं उसके समस्त तत्वों का सम्यक् ज्ञान था। वे सम्पूर्ण जीव-जगत और प्रकृति के मध्य सन्तुलन के हिमायती थे। उनके द्वारा प्रवर्त्तित मध्यम मार्ग की देशना इसका स्वतः प्रमाण है। यह कहना प्रासंगिक होगा कि बुद्ध ने जन्म से लेकर निर्वाण तक सम्पूर्ण जीवन, प्रकृति के साहचर्य में बिताया और अन्तिम प्रस्थान भी महलों में नहीं अपितु प्रकृति की गोद में लिया।

निकायों में वर्णित है कि बुद्ध ने अपनी महाकरुणा के वशीभूत एक ऐसे भारत की परिकल्पना की थी जो एक ऐसे सुयोग्य शासक के अधीन होगा जहाँ केवल मानवमात्र के लिए ही कल्याणकारी कार्यक्रमों का सृजन नहीं होगा अपितु वहाँ पालतू एवं वन्य जीवों तथा संपूर्ण प्रकृति के कल्याण को प्रमुखता दी जायेगी। (अंगुत्तर निकाय, 3/149, दीघ निकाय, 3/61)।

प्रोफेसर
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8707381552

बोधिसत्त्व नेगी रिन्पोछे तन्ज़िन ग्यल्-छ़न
(1895-1977)

—डॉ. रमेश चन्द्र नेगी (माथस)—

बुद्धं च धर्मञ्च गणोत्तमं च
यावद्धि बोधिं शरणं गतोऽस्मि।
दानादिकृत्यैश्च कृतैर्मयैभिः
बुद्धो भवेयं जगतो हिताय ॥[1]

आर्यदेश **भारत** में **बौद्धधर्म** को लेकर 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कई नयी सम्भावनायें उदित हुईं। इसी कड़ी में **नेगी रिन्पोछे तन्ज़िन ग्यल्-छ़न** का जन्म भी एक है, जिसके कारण आज **हिमाचल प्रदेश** के **किन्नौर** जिले का यह सपूत **भोटबौद्धधर्म** के क्षेत्र में एक देदीप्यमान **सूर्य** के समान सारे **विश्व** में चमक रहा है और सम्पूर्ण विश्व का बौद्ध समाज उनके प्रति श्रद्धान्वित एवं गौरवान्वित है। उस महान् व्यक्तित्व के प्रति कुछ बातें जो मैंने कुछ उनके शिष्यों से सुनीं, कुछ उनके बारे में पढ़ा तथा कुछ उनके साक्षात् वाक् जिसे मैंने **ओडियो** के माध्यम से श्रवण किया, का सार यहाँ इस प्रसंग में विश्व की शान्तिप्रिय जनता के साथ साझा करना चाह रहा हूँ।

तथागत बुद्ध के **सद्धर्म** का सार–सारे विश्व के प्रति कल्याण की इच्छा करने वाले **बोधिसत्त्व** में निहित होता है। यह एक ऐसा व्यक्तित्व है, जो तीनों कालों के **बुद्धों** के द्वारा विशेष रूप से **प्रणिहित** है और **बोधिसत्त्व** ही वास्तविक **बोधि** (**बुद्धत्व**) को प्राप्त करता है। इसी आशय के जीते-जागते उदाहरण के रूप में हम **नेगी रिन्पोछे तन्ज़िन ग्यल्-छ़न** को पाते हैं।

यही कारण है कि वर्तमान में परमपावन **दलाई लामा** सहित **भोटबौद्धधर्म** के समस्त उच्चस्थ **गुरु** लोग उनकी **जीवनचर्या** सहित **ज्ञान** के कायल रहे हैं। **परमपावन** जी तो सदा उनको एक **बोधिसत्त्व** के रूप में याद करते हैं और साथ ही **भोटदेश** में **बोधिसत्त्व** की **चर्या** के लिये जो शास्त्र सर्वप्रसिद्ध है, वह आचार्य **शान्ति-देव**कृत **बोधिसत्त्वचर्यावतार** ही है। इस ग्रन्थ का **परमपावन** दलाई लामा जी ने सन् 1967 ई. में **बोधगया** में **नेगी रिन्पोछे तन्ज़िन ग्यल्-छ़न** के सान्निध्य में बैठकर अध्ययन किया था।

आज **परमपावन** जी के द्वारा दिये गये उपदेशों में सबसे अधिक उपदेश इसी ग्रन्थ का है। साथ ही **परमपावन** जी के द्वारा विश्व-पटल पर **विश्वशान्ति** के लिये जो भी महत्त्वपूर्ण कार्य किये जा रहे हैं, उनमें इसी ग्रन्थ की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यह विश्वशान्ति

---

1. **अतीशविरचिता एकादशग्रन्थाः**, पृ.-82, प्रकाशक : **केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ, वाराणसी** (1992 ई.)

के लिये बहुत ही शुभ लक्षण है। दूसरे शब्दों में कहें तो **परमपावन** जी द्वारा किये जा रहे सारे कार्यों में एक **बोधिसत्त्व** की झलक दिखाई देती है, जो वास्तव में तीनों कालों के समस्त बुद्धों का सार है।

किन्नौर में बाल्यकाल में रहते हुए **नेगी रिन्पोछे** जी ने सर्वज्ञ **कुन्-खेन् पद्माकरपो** (चतुर्थ ग्यल्-वङ् डुग्पा) द्वारा रचित **पूर्वयोग-टिप्पणी** एवं **महामुद्रा-टिप्पणी** इन दो मुख्य ग्रन्थों का श्रवण, चिन्तन एवं भावना किया था और आगे के गम्भीर अध्ययन के लिये वे **भोट**देश चले गये। मार्ग में **सिक्किम** में रहते हुये उन्होंने **भोट**-भाषा-शास्त्र सहित आचार्य **शान्तिदेव** के **बोधिचर्यावतार** का अध्ययन किया तथा उसके बाद वे वहाँ से **तिब्बत** के लिये रवाना हुये।

क्योंकि **वैराग्य** ही सम्यक् ज्ञान का आधार है–अतः ऐसा लगता है कि **नेगी रिन्पोछे** में **किन्नौर** से **भोट**देश को लक्ष्य कर निकलते समय ही वह उत्पन्न हो गया था। यदि किसी व्यक्ति में सही **वैराग्य** की उत्पत्ति होती है तो उसे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये संसार की कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती। यही **रिन्पोछे** के साथ घटित हुआ। यही कारण है कि तत्कालीन जो लोग **भोटदेश** के बड़े-बड़े विद्यापीठों में अध्ययन कर रहे थे, उनमें उन्होंने सर्वाधिक ज्ञान अर्जित किया। वे पाँचों महाविद्याओं में पारंगत हुये, जिसका प्रमाण उनके द्वारा रचित **गुरु-अध्येषणा** नामक तीन श्लोकों का निम्नलिखित विशिष्ट ग्रन्थ हैं, यथा–

निर्मल **मुनि**-शासन की **अमृत-श्री** से सम्पन्न
अनेक सन्तों के चरणों को सादर त्रिद्वारों से
शिरोभूषण-सा सेवन करने वाले
तन्-ज़िन् ज़ल्-छ़न् के चरणों की प्रार्थना करता हूँ॥1॥

शब्द, **प्रमाण**-आदि विद्याओं के स्थान
शिक्षात्रय दिखाने वाले परम शास्त्र
विद्याधर पिटकों में विश्रुत-श्री
तन्-ज़िन् ज़ल्-छ़न् के चरणों की प्रार्थना करता हूँ॥2॥

अद्भुत मुद्रा, **सम्पन्नता**, **मध्यमक**, **मार्गफल**,
शमकारी, **कालचक्र**-आदि के उपदेश सार,
सतत प्रयोग एवं भक्तियोग से चित्त तल भरे हुए
तन्-ज़िन् ज़ल्-छ़न् के चरणों की प्रार्थना करता हूँ॥3॥[1]

---

1. **नेगी रिन्पोछे** के **गुर्-मा एवं सोल्-देब्स** का हिन्दी अनुवाद, अनुवादक : **रमेश चन्द्र नेगी** एवं **गुरुचरण सिंह नेगी**।

भोटदेश के चारों बौद्ध-सम्प्रदायों के शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन सारे लोग नहीं कर पाते। लेकिन **नेगी रिन्पोछे** इसके जीते-जागते उदाहरण हैं। इसे उनके स्वरचित उपर्युक्त श्लोक प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत भी करते हैं। इस श्लोक में **भोटदेश** में फैले कोई भी विशेष दर्शन एवं साधना छूट गयी हो—ऐसा नहीं लगता।

स्वयं के ज्ञान का प्रतिभापूर्वक वास्तविक बखान वही कर सकते हैं, जिन्होंने परम्पराओं को सम्यक् गुरुओं से साक्षात् ग्रहण किया हो। अतः **नेगी रिन्पोछे** के ज्ञान पर सन्देह नहीं किया जा सकता और सारे **भोट**देशीय गुरुओं के गुरु (**गुरूणां गुरुः**) बनकर उन्होंने इसे सिद्ध भी कर दिया है।

इसीलिये सन् 1959 ई. में **तिब्बत** से निर्वासित होने वाले **गुरु**ओं में आपकी ख्याति सर्वाधिक फैली है और आप सम्प्रदाय निरपेक्ष सही **गुरु** के रूप में माने जाने लगे, जो उनकी जीवनी को पढ़ने पर स्पष्ट हो जाता है। इसके लिये डॉ. **प्रभु लाल नेगी** द्वारा लिखे गये **नेगी रिन्पोछे जी का जीवन-वृत्तान्त**[1] से सम्बद्ध शोध-पूर्ण लेखन का अवलोकन करना चाहिये। यह ग्रन्थ वर्तमान में सम्पादन के अन्तिम चरण में है और निकट भविष्य में हिन्दी-भाषी श्रद्धालुजनों के सम्मुख प्राप्त हो जायेगा।

नेगी रिन्पोछे की अध्यापन शैली व्यावहारिक होती थी और इसके लिए वे यथा वाञ्छित धर्म का उपदेश **विनेयजनों** को किया करते थे। पात्रता के अनुसार धर्म का उपदेश करना उनकी चर्या में सम्मिलित था। ऐसा कार्य एक मार्ग-प्राप्त तथा करुणापूर्ण व्यक्ति ही कर सकता है, जिसका **नेगी रिन्पोछे** एक वास्तविक आदर्श हैं।

उनके पास जो गये वे खाली हाथ कदापि नहीं लौटे। लोग अपनी परेशानियों से भी उन्हें अवगत किया करते थे और समाधान के लिये उनसे प्रार्थना भी करते थे। ऐसा प्रसंग आने पर वे यथा-सम्भव समस्या के समादान में सहायक भी होते थे। यहाँ एक घटना का जिक्र कर रहा हूँ, जिसे मैंने अपनी बड़ी दीदी **यङचन मनी** से सुना था।

एक बार हमारे **गाँव** के कुछ लोग आचार्य **पद्मसम्भव** के पवित्र तीर्थस्थल **रिवालसर** (**मण्डी**, **हि.प्र.**) के दर्शन हेतु गये थे। उनमें एक मेरी **मौसी** भी थी, जो दूसरे गाँव से हमारे चाचा के साथ ब्याही गयी थीं। उनके ही सगे भाई की एक पुत्री हमारे गाँव में **बहु** के रूप में आई थी। लगभग शादी के बीस वर्ष हो गये थे लेकिन उन्हें कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुई थी। इसका हमारी मौसी को बड़ा खेद था।

---

1. **नेगी रिन्पोछे तन्ज़िन ग्यल्छन का व्यक्तित्व एवं कृतित्व** नामक ग्रन्थ को डॉ. **प्रभु लाल नेगी** ने अपने संस्कृत शोध-प्रबन्ध के आधार पर तैयार किया है और इसका सम्पादन डॉ. **रमेश चन्द्र नेगी** ने किया है। यह फरवरी 2022 ई. तक प्रेस में चला जायेगा।

उस समय **नेगी रिन्पोछे** जी **रिवालसर** में ही निवास कर रहे थे तब उक्त मण्डली **नेगी रिन्पोछे** के दर्शन के लिए गयी। **नेगी रिन्पोछे** ने उन लोगों को प्रवचन दिया तथा धार्मिक चर्चा-आदि की। जब **नेगी रिन्पोछे** के द्वारा उक्त लोगों के लिये प्रवचन एवं चर्चा आदि समाप्त हुआ तो उपस्थित सभी लोग वहाँ से प्रस्थान करने लगे।

तब **मौसी** ने **दीदी** को साथ रुकने के लिये कहा और सारे लोगों के जाने के बाद **नेगी रिन्पोछे** के सामने अपनी समस्या रखी। तभी **नेगी रिन्पोछे** कुछ क्षण के लिये मौन हुये तथा तत्पश्चात् वह कहने लगे–'सन्तान तो होगी लेकिन उक्त महिला का जीवन खतरे में पड़ सकता है।' **मौसी** ने जो भी हो **रिन्पोछे** जी से सन्तान प्राप्ति की प्रार्थना की।

बाद में मुझे याद है उक्त महिला से दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं, लेकिन तीसरी सन्तान के रूप में गर्भधारण होने पर भी उक्त महिला की गर्भावस्था के साथ ही मृत्यु हो गई थी और उनकी मृत्यु के कुछ घण्टे पहले की अवस्था तथा मृत्यु के तुरन्त बाद की विशेष प्रार्थना सभा में मुझे भी सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ, क्योंकि उस समय मैं **ग्रीष्मावकाश** होने से गाँव लौटा था तथा उक्त महिला हमारी पड़ोसी थीं।

नेगी रिन्पोछे जी जानते थे कि यदि व्यक्ति में **मरण-अनित्यता** का भाव नहीं जागा तो वह व्यक्ति वास्तविक रूप से धार्मिक नहीं बन सकता। अतः इसके लिए वे लोगों से समाचारों पर विशेष ध्यान देने के लिये कहा करते थे तथा समाचार पत्र पढ़ने के लिए भी बोलते थे।

मरण-अनित्यता का भाव ही वास्तविक वैराग्य का स्वरूप है और इसी के उदित होने पर ही धार्मिकता की नींव दृढ़ होती है। या उसे यूँ भी कह सकते हैं कि सम्पूर्ण **मार्गक्रम** का मूल **अनित्यता** ही है। यही अनित्यता **सम्भार-मार्ग** आदि **पाँच मार्ग** अथवा **प्रमुदिता** आदि **दस भूमियों** की **अभिसमयों** से होते हुये **बोधि** में परिवर्तित हो जाती है, जो समस्त विश्व की परम अवस्था है और जिसे सारे प्राणी प्राप्त करना चाहते हैं। यही वास्तविक **गति** है, यही **तथागत** है, यही **परिनिर्वाण** है, यही **महासुख** है और यही **शून्यता** अथवा **प्रतीत्यसमुत्पाद** की अन्तिम अवस्था है। एक **बोधिसत्त्व** वास्तविक रूप से सम्पूर्ण प्राणियों को इसी अवस्था तक पहुँचाने में सहायता करता है, जिसकी वास्तविक झलक **नेगी रिन्पोछे** की प्रत्येक चर्या में दृष्टिगत होती है।

।। भवतु सर्वमङ्गलम् ।।

सह आचार्य
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9415698420

कौशाम्बी में बौद्ध-धर्म का विकास एवं योगदान

—डॉ. गेशे एल. डी. रबलिङः—

आज से लगभग 2566 ई. पूर्व भगवान तथागत बुद्ध ने तीन असंख्य कल्पों तक सत्त्वों का कल्याण किया। अन्ततः शाक्य कुल के राजा शुद्धोदन एवं माया देवी के पुत्र के रूप में जन्म लिया। बाल्य अवस्था से 29 वर्षों तक सामान्य विद्या की शिक्षा प्राप्त कर कोहली की यशोधरा नामक कन्या से उनका विवाह हुआ। उन दोनों को राहुल नामक पुत्र का जन्म हुआ। उन्होंने अपने पुत्र और पत्नी का त्याग कर मनुष्य के जन्म, व्याधि, जरा, मरण के दुःखों तथा अनेक प्राणियों को दुःखों से मुक्त कराने के उपाय हेतु महाभिनिष्क्रमण की प्रतिज्ञा ली। तत्कालीन प्रसिद्ध ऋषि आचार्य आराड कलाम और उद्रक रामपुत्र से ध्यान की विधि प्राप्त की ।तत्पश्चात् छह वर्षों तक निरन्तर कठोर तपस्या किया। किन्तु उनकी शिक्षाओं से कोई सम्यक् मार्ग प्राप्त नहीं हुआ। तत्पश्चात् मध्यम मार्ग को अपनाते हुए बौद्ध गया के समीप बोधिवृक्ष के नीचे कठोर तपस्या के पश्चात् वैशाख पूर्णिमा की रात्रि में अभिसम्बोधि प्राप्त किया। तत्पश्चात् वाराणसी के समीप ऋषिपत्तन मृगदाव में पञ्चवर्गीय भिक्षुसंघ को प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन में चार आर्य सत्य का उपदेश दिया। साथ ही, यश आदि अन्य 55 कुलीन पुत्रों ने भी बुद्ध के उपदेश प्राप्त कर कुल 60 भिक्षुसमूह की स्थापना की गई। तत्पश्चात् उन भिक्षुगणों के माध्यम से हज़ारो लाखों पुरुष एवं स्त्रियों ने बुद्ध का उपदेश सुनने का अवसर प्राप्त कर स्रोतापन्न से अर्हत् तक का पद प्राप्त करके इस संसार से हमेशा के लिय मुक्ति प्राप्त की।

थेरवादी मानते हैं कि भगवान बुद्ध ने प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन में दुःख सत्य, समुदय सत्य, निरोध सत्य और मार्ग सत्य की देशना की। किस प्रकार दो अन्तों से मुक्त होकर मध्यमा प्रतिपदा (मध्यम मार्ग) अर्थात् आर्य आष्टांगिक मार्ग जिस में 1. सम्यक् वाक् 2. सम्यक् आजीव 3. सम्यक् कर्मान्त का अनुपालन करने की काय और वाक् की शुद्धि करने को शील शिक्षा कहा जाता है। 1. सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि और सम्यक् व्यायाम के अन्तर्गत शमथ और विपश्यना का अनुपालन करने को समाधि शिक्षा कहा गया है। 1. सम्यक् संकल्प और सम्यक् दृष्टि के माध्यम से सत्त्वों के हित एवं धर्म की स्थिति के प्रति किस प्रकार विचार किया जाना चाहिए, उसे तीन शिक्षाओं के अन्तर्गत प्रज्ञा शिक्षा में सम्मिलित किया गया। चार आर्य सत्य एवं आष्टांगिक मार्ग आदि विषयों में बुद्ध ने 35 (पैंतीस) वर्ष की आयु से 80 वर्षों तक विभिन्न स्थानों में उपदेश देकर अन्ततः कुशीनारा में महापरिनिर्वाण प्राप्त किया। ऐसा थेरवादी मानते हैं।

महायानियों का कहना है कि बुद्ध ने 35 से लेकर 54 वर्ष की आयु तक साधारण विनेयजनों को क्रमशः चार आर्य सत्य और आष्टांगिक मार्गों का उपदेश देकर किस प्रकार अर्हत् पद प्राप्ति तक का उपदेश प्रदान किया। भगवान तथागत बुद्ध गृध्रकूट में 55 से लेकर 64 वर्ष की आयु के बीच तीक्ष्ण बुद्धि वालों को चार आर्य सत्यों में मार्ग सत्य के अन्तर्गत आष्टांगिक मार्ग का विस्तार करते हुए एक पृथक्जन को सर्वज्ञ पद की प्राप्ति हेतु प्रयोग मार्ग से अशैक्षिक मार्ग अथवा बुद्धत्व प्राप्ति की उपाय बताने हेतु प्रज्ञापारमिता की देशना दी। जो आर्य शारिपुत्र, आर्य सुभूति, बोधिसत्व अवलोकितेश्वर और बोधिसत्व मैत्रेयनाथ आदि बोधिसत्वों को शतसाहस्रिकाप्रज्ञापारमितासूत्र, पञ्चविंशतिसाहस्रिका-प्रज्ञापारमितासूत्र, अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञामितासूत्र, प्रज्ञापारमितावज्रच्छेदिकासूत्र, प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र आदि राजगिरि के गृध्रकूट में लगभग 17 विभिन्न प्रकार की प्रज्ञापारमिताओं का उपदेश देकर हज़ारों लाखों बोधिसत्वों ने बुद्धत्व प्राप्त किया।

भगवान तथागत बुद्ध ने 65 से 80 वर्ष की आयु तक निरन्तर 15 वर्षों तक प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन चार आर्य सत्य के अन्तर्गत निरोध सत्य का अर्थ विस्तार करते हुए निरोध का स्वरूप, भेद और आकार आदि का सूक्ष्म रूप से प्रतिपादन करने के लिए तृतीय धर्मचक्र का उपदेश दिया। जिसमें प्रमुख रूप से चित्तप्रभास्वर और तथागतगर्भ आदि को व्यक्त करने के लिए आर्यसन्धिनिर्मोचनसूत्र, आर्यलङ्कावतारसूत्र, सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, सद्धर्मकरुणापुण्डरीक-सूत्र, गण्डव्यूहसूत्र, तथागतगर्भसूत्र, दशभूमिसूत्र, आर्यज्ञानालोकसूत्र, रत्नकूट एवं अवतंसक आदि अनेक सूत्रों पर प्रवचन दिया। इसी चित्त प्रभास्वर के विचार को आगे विकसित करते हुए वज्रयान की स्थापना हुई।

बुद्धकालीन कौशाम्बी की स्थिति

भगवान बुद्ध के जीवन काल में भारतवर्ष में 16 (सोलह) जनपद माना जाते हैं। जिनमें वत्स नामक एक राज्य था। जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी। यह तत्कालीन एक शक्तिशाली एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण नगरों में होती थी। उस समय भारतवर्ष में छह प्रमुख नगरों अथवा मेट्रोसिटी की गणना की जाती रही है। जिसमें कौशाम्बी एक है। महापरिनिर्वाण सूत्र में आर्य आनन्द ने बुद्ध को कुशीनारा में महापरिनिर्वाण प्राप्त न करके श्रावस्ती, राजगृह, चम्पा, साकेत, वाराणसी और कौशाम्बी में प्राप्त करने का निवेदन किया। जिसे बुद्ध ने अस्वीकार किया।

कौशाम्बी नगर का नामकरण

कौशाम्बी नगर का नाम किस प्रकार स्थापित हुआ इस पर विभिन्न ऐतिहासिक एवं साहित्यिक स्रोत प्राप्त होते हैं। जो इस प्रकार है -

महाभारत से प्राप्त सन्दर्भों के अनुसार इस नगर की स्थापना चेदि–राज के राजकुमार उपरिचर वसु ने की थी। तत्पश्चात कुरु वंश के एक राजा ने चेदि राज्य को जीत लिया। उनके पांच शक्तिशली पुत्र थे, जिनमें से एक का नाम कुसम्ब था। कौशाम्बी नगर उसके नाम पर ही प्रसिद्ध हुआ। रामायण में भी कौशाम्बी नगर की स्थापना का स्पष्ट वर्णन है। उसके अनुसार भगवान राम के पुत्र कुश थे, जिनकी पत्नी का नाम वैदर्भी था। उनके चार पुत्र थे–कुशाम्ब, कुशनाम, असुत–राज व वसु। एक दिन कुश ने अपने पुत्रों को नये राज्य स्थापित करने को कहा। इस प्रकार कुशाम्ब ने कौशाम्बी नगर बसाया।

इसी प्रकार पुराणों में भी कौशाम्बी का वर्णन मिलता है। उनका वर्णन एक दूसरे के समान है। मत्स्यपुराण के अनुसार जब हस्तिनापुर नगर गंगा नदी के बाढ़ से बह गया, तो तत्कालीन कुरु या भरतवंशी राजा निचक्षु ने राजधानी हस्तिनापुर छोड़ कौशाम्बी बसाई थी। निचक्षु अर्जुन के पौत्र परीक्षित के पांचवे वंशज थे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि निचक्षु के समय भी कौशाम्बी नगर का अस्तित्व था। इसके अतिरिक्त कौशाम्बी का वर्णन पालि त्रिपिटक, जातक (अट्ठकथा), ललितविस्तर, मेघदूत, कथासरित्सागर, रत्नावली आदि ग्रंन्थों और चीनी तीर्थ–यात्रियों के यात्रा वृत्तांतों में भी प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त शतपथ और गोपथ ब्राह्मणों में इसका उल्लेख अप्रत्यक्ष रूप से आया है। इन दोनों ग्रन्थों से पता चलता है कि उददालक आरूणि का एक शिष्य कौशाम्बेय अर्थात् कौशाम्बी का रहने वाला भी कहलाता था। उसके पश्चात् इस स्थान का उल्लेख हमें महाभारत, रामायण तथा हरिवंश पुराण में भी प्राप्त होता है। महाभारत के अनुसार कौशाम्बी की स्थापना चेदिराज के पुत्र उपरिचर वसु ने की थी, परन्तु रामायण में इस नगरी को कुश के पुत्र कुशाम्ब द्वारा स्थापित बताया गया है।

अर्जुन के पौत्र राजा परीक्षित से पाँचवीं पीढ़ी में राजा निचक्षु ने अपनी राजधानी हस्तिनापुर से हटा कर कौशाम्बी को बनाया था। निचक्षु और उदय के बीच 16 राजाओं ने कौशाम्बी पर शासन किया। इस प्रकार से उदयन हस्तिनापुर के कुरुवंश की शाखा के शासक थे।

किन्तु आचार्य बुद्धघोष के दीघनिकाय अट्ठकथा में कहा है कि जब यह नगर स्थापित किया गया तब यहाँ पर कोसम नामक अनेक वृक्ष खडे थे, जिन्हें काट कर यह नगर बसाया गया। ऐसा कहा है। एक दूसरी उनकी अनुश्रुति यह है कि जब यह नगर बसाया गया इसके समीप कुसुम्बक नामक ऋषि का आश्रम था। इससे इस नगर का नाम कुसुम्बक से कौशाम्बी हो गया।

कौशाम्बी नगर का प्राचीन नागरिकों का स्वभाव

प्राचीन बौद्ध एवं बौद्धेतर साहित्य में उल्लेख मिलता है कि कौशाम्बी वासी बडे ही मितभाषी तथा विद्याव्यसनी होते थे और परस्पर स्नेह एवं विश्वास करने योग्य व्यक्ति माने जाते थे। विद्वानों, संन्यासी, भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिकाओं के प्रति अत्यन्त आदर भाव रखते थे। माता-पिता के प्रति आदर पूर्वक विनम्रता भाव रखते थे। यहाँ के निवासी धर्मिक एवं सुभाषी थे। इन लोगों का वर्ण गौर, सुन्दर स्निग्ध तथा तेजस्वी होता था। यहाँ की स्त्रियाँ भी सुन्दर, सुशील एवं अत्यन्त विनम्र स्वभाव से सम्पन्न मानी गयी हैं। सम्भवतः यह यहाँ के राजा उदयन और उनकी रानी सामावती के संस्कारों एवं तथागत बुद्ध के द्वारा दिये गये उपदेश का अनुपालन करने से ऐसा प्रशंसनीय गुण प्राप्त हुआ है। ऐसा मैं समझता हूँ।

राजा उदयन का जन्म एवं नामकरण

राजा उदयन के नामकरण के विषय में भी एक रूपता नहीं है। पालि साहित्य के अनुसार ऐसा कहना है कि कौशाम्बी पर परन्तप नामक राजा राज करता था। वह और उनकी रानी महल के सबसे ऊँची छत पर धूप का आनन्द ले रहा था। रानी गर्भवती थी और वह एक लाल कम्बल ओढ़े हुए थी। अचानक एक विशाल गिद्ध आकाश से रानी को मांसपिण्ड समझकर उसे अपने पंजों में दबाकर उड़ गया। रानी डर से चुप रही कि बोलने पर कहीं पक्षी उसे छोड़ न दें। महागिद्ध ने दूर जाकर पर्वत की जड़ में एक विशाल वृक्ष पर रानी को रख दिया। रानी ने चिल्लाकर ताली बजानी शुरू की और पक्षी भाग गया। रानी को प्रसव वेदना होने लगी और उसी समय वर्षा भी होने लगी। रानी रात भर पीड़ा से चिल्लाती रही। उसके कराहने की आवाज सुबह भोर में एक तपस्वी ने सुनी और उन्हें पेड़ से उतार कर अपने आश्रम में ले गया। जंहा उसे एक बालक पैदा हुआ। उस बालक के सूर्योदय काल में पैदा होने के कारण इसका नाम उदयन रखा गया। तपस्वी ने दोनों का पालन-पोषण अपने आश्रम में किया।

किन्तु तिब्बती भाषा में अनूदित मूलसर्वास्तिवाद के विनय विभंग में इस प्रकार की कोई भी तो कहानियाँ प्राप्त नहीं होती हैं। उसे विनय विभंग में कौशाम्बी के महाराजा शतानी का पुत्र कहा गया और जब उस पुत्र का जन्म हुआ था, उस समय लोक में सूर्योदय के समान आभास होने से उन्हें उदयन नाम दिया गया।

राजा उदयन के बौद्ध-धर्म में प्रवेश होने का मूल कारण

राजा उदयन के बौद्ध होने के विषय में कुछ मतभेद है। कुछ स्नातन धर्म के साहित्य एवं इतिहास में कहा गया है कि – प्रथम बार जब महात्मा बुद्ध अपने धर्म प्रचार हेतु कपिलवस्तु,

वैशाली एवं राजगृह होते हुए कौशाम्बी पधारे तब उदयन अपनी सेनाओं के साथ ककावती नगरी पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान कर रहा था अतः शांति के इस दूत को देखकर वे अत्यन्त क्रोधित हुए और भगवान बुद्ध पर एक बाण भी छोड़ा । परन्तु भगवान बुद्ध के चमत्कार से उस बाण से यह वाणी निकली, "क्रोध और क्षोभ से दुःख उत्पन्न होता है । इस लोक में बिना परित्याग के युद्ध करता है उसको मृत्यु के पश्चात् नरक की यंत्रणाओं में पड़ना पड़ता है । वैसे- दुःख एवं युद्धों को दूर रखो ।" इस उपदेश से महाराज उदयन पर बहुत प्रभाव पड़ा । भगवान बुद्ध के उपदेश सुनकर वे बौद्ध धर्म के अनुयायी बन गये । इन कथाओं से यह सिद्ध होता है कि उदयन पहले बौद्ध धर्म के प्रति शत्रुता की भावना रखता था । परन्तु बाद में उस धर्म का अनुयायी हा गया ।

राजा उदयन के बौद्ध-धर्म में प्रवेश का मूल कारण उनकी रानी सामावती और भिक्षु पिण्डोल है । बौद्धों के सर्वश्रेष्ठ एवं उत्तम ग्रन्थ धम्मपद अट्ठकथा के अनुसार रानी सामावती को राज उदयन ने पटरानी पद पर नियुक्त किया । रानी मागंदिय भी राजा उदयन की पटरानी थी । किन्तु मागंदिय रानी सामावती से ईर्ष्या करती थी । जिससे रानी मागंदिय ने रानी सामावती को अनेक बार अपमानित करने की चेष्टा की, परन्तु असफल रही । एक दिन रानी मागंदिय अपनी कूटनीति के कारण रानी सामावती को दोषी ठहराने में सफल रही । राजा ने रानी मागंदिय के प्रभाव में आकर रानी सामावती को सजा के रूप में धुनष-बाण से मारना चाहा । किन्तु रानी सामावती के मैत्री भाव के प्रभाव से उन्हें हानि नहीं पहुँचा सका बाण । तब राजा उदयन ने धनुष-बाण फेंक कर अपनी भ्रान्ति की क्षमा याचना करके अपना मार्ग दर्शक बनाने का आग्रह किया । रानी ने राजा से कहा - आप मुझे मार्गदर्शक न बनाकर बुद्ध की शरण में जाइये । बुद्ध लोक में अद्वितीय है । आप बुद्ध की शरण में जाइए । मेरा मार्ग दर्शन तो आप को वैसे ही मिल जायेगा । जब रानी सामावती ने राजा के स्वयं मार्ग दर्शक बनाने की बजाय बुद्ध के शरण में जाने का सुझाव दिया । तब राजा बुद्ध का दर्शन प्राप्त करने हेतु दूसरे दिन भगवान बुद्ध के पास पहुंचे और वन्दना करके अपने को शिष्य के रूप में स्वीकार करने हेतु निवेदन किया और बुद्ध ने मौन रहकर स्वीकार किया ।

राजा उदयन के बौद्ध बनने का दूसरा कारण बौद्ध त्रि-पिटक के अन्तर्गत संयुक्त निकाय के अट्ठकथा में कहा गया है कि –

राजा उदयन गर्मी के दिनों में एक बार क्रीड़ा के लिए यमुना के किनारे राज उद्यान में गया । वहां अनेक नारियल के पेड़ थे और शीतल पवन निरन्तर बह रहा थी । राजा उदयन सुख की अनुभूति करते हुए एक वृक्ष की छाया में सो गया । राज उद्यान में उन्हीं दिनों भिक्षु पिण्डोल एक वृक्ष की शीतल छाया में ध्यानस्थ बैठे थे ।

राजा को सोया हुआ देखकर उसके साथ की स्त्रियाँ उसे वहीं छोड़कर घूमने निकल गई और अचानक उन्होंने ध्यान में बैठे हुए भिक्षु पिण्डोल को देखा। ये लोगों ने उस भिक्षु पिण्डोल से उपदेश देने के लिए प्रार्थना की और वे उसके प्रवचन को सुनने लगीं। राजा की नींद खुली, तब वह अपने साथ आई स्त्रियों की खोज में निकला और देखा कि वे तो एक परिव्राजक को घेरे बैठी हैं और उसका उपदेश सुन रही हैं। ईर्ष्यालु और कामी-राजा के क्रोध का कोई ठिकाना न रहा। उसने गालियां देते हुए पिण्डोल से कहा "श्रमण होते हुए तुम स्त्रियों के बीच बैठे और उनसे सस्वर वार्तालाप का आनन्द लेते हो। यह तुम्हें शोभा नहीं देता" भिक्षु पिण्डोल शान्ति से आँखें मूंद कर बैठा रहा और उसने एक शब्द भी नहीं कहा। गुस्से में आकर राजा ने तलवार निकाली और पिंडोल को धमकाया, किन्तु वह मौन और शिला के समान अडिग रहा। इस पर राजा को और भी गुस्सा आया। उसने एक बांबी तोड़कर लाल चीटियों से भरी धूल उस पर फेंकी, फिर भी पिंडोल शान्ति पूर्वक अपमान और पीड़ा सहन करता हुआ ध्यान में बैठे रहे। वैसे भी पिंडोल भिक्षु ऋद्धि-प्रातिहार्य में पारंगत थे। यह प्रतिदिन ऋद्धि प्रातिहार्य के बल से भगवान के दर्शन करने श्रावस्ती आते जाते रहते थे। यह देखकर राजा को अपने क्रूर व्यवहार पर लज्जा आई और उसने पिंडोल से क्षमा याचना की। इस घटना के कारण राजा ने बौद्ध धर्म में प्रवेश किया।

राजा उदयन का राजगद्दी-अभिषेक

पालि साहित्य के अनुसार राजा परन्तप की रानी को विशाल गिद्ध ने दूर पर्वत के समीप एक महावृक्ष पर छोड दिया। तब एक तपस्वी ऋषि अपने आश्रम में ले गया। वहीं पर उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया। सूर्योदय के समय जन्म लेने के कारण उनका नाम उदयन रखा गया। तत्पश्चात् ऋषि ने रानी को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया।

तपस्वी ने बालक को हस्तिग्रन्थ विद्या सिखायी जिससे हाथी उनके वशीभूत हो जाते हैं। कालान्तर में वत्स के राजा परन्तप की मृत्यु हो गयी। रानी को उसके पूर्व पति के विषय में सूचना प्राप्त हुई। तब रानी ने अपने पुत्र उदयन को राज गद्दी प्राप्त करने हेतु अपना लाल कम्बल और राजा की अंगूठी देकर कौशाम्बी भेजा। कौशाम्बी पहुँच कर हस्तिशाला के निकट बरगद के पेड़ पर चढ़कर बैठ गया। उदयन ने हस्ति-विद्या के द्वारा सभी हाथियों को राजा की हस्तिशाला से भगा दिया। फिर उसकी विद्या के प्रभाव से सभी हाथी उनके निकट आकर उसके आगे नतमस्तक हो गए। राजपुत्र उदयन एक सुन्दर हाथी पर सवार होकर शेष हाथियों को सेना के रूप में लेकर राजमहल पहुँचा। वहां पर उसने अपनी माँ का लाल कम्बल और उसकी अंगूठी मन्त्रियों को दिखाई। मन्त्रियों ने कम्बल और अंगूठी को पहचान कर उसे राजा का उत्तराधिकारी निश्चित करके कौशाम्बी का राजा बनाया।

राजा उदयन का तीन रानियों का विवरण

राजा उदयन की तीन रानियाँ थीं। क्रमशः सामावती, वासवदत्ता और मागंदिय है। रानी सामावती भगवान बुद्ध की प्रारम्भ से भक्त थी। वह भद्यवतिय नामक सुप्रसिद्ध सेठ की पुत्री है। उनकी माता-पिता के मृत्यु के पश्चात् कौशाम्बी के घोषक श्रेष्ठी ने उसे पुत्री के रूप में माना और जो राजा उदयन की पटरानी बन गयी।

रानी वासवदत्ता उज्जैन के राजा प्रद्योत का पुत्री थी। राज प्रद्योत वत्स राजा को उदयन षड्यन्त्र में फँसा कर पकड़ने में सफल हुआ और उनसे हाथी पकड़ने का मंत्र जानना चाहा। किन्तु उनकी पुत्री राजा उदयन के साथ भद्यवती हथिनी पर सवार होकर भाग गई और राजा उदयन की पटरानी बन गयी ऐसा पालि साहित्य इतिहास में प्राप्त होता है। किन्तु तिब्बती में अनूदित मूल सर्वास्तिवाद के विनय विभंग में उसी वासवदत्ता रानी ने ही राजा उदयन को षड्यन्त्र में फँसा कर उसका वध कर दिया। ऐसा उल्लेख मिलता है।

रानी मागंदिय ने कुरु प्रदेश के एक ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया। वह एक अत्यन्त सुन्दर कन्या थी और वह बौद्ध विरोधी थी। वह सामावती से ईर्ष्या करती थी। क्योंकि रानी सामावती बुद्ध की अनुयायी थी। रानी मागंदिय ने बुद्ध की पत्नी बनने का अत्यन्त प्रयास किया लेकिन असफल रही। इन्होंने रानी सामावती एवं उनकी सहलियों सहित सभी को महल का मुख्य द्वार बन्द करवाकर चारों ओर आग लगवाकर जला कर मार दिया। बाद में राजा उदयन ने उन्हें अनेक यातना के साथ मृत्यु दण्ड दिया।

बुद्ध का कौशाम्बी में आगमन

पालि साहित्य इतिहास के अनुसार भगवान बुद्ध कौशाम्बी में दो बार पधारे। उन्होंने अपने नौवें और दसवें वर्षावास कौशाम्बी और इसके निकट पारिलेय्यक में किया।

कौशाम्बी में भगवान बुद्ध ने अनेक उपदेश दिये। जिसमें प्रमुख रूप से कोसम्बियसूत्र, ब्रह्मनिमन्तनिकसूत्र, सन्दकसूत्र, उपविकलेससूत्र, जलियसूत्र और बोधिराजकुमारसूत्र का विवरण मज्झिमनिकाय में प्राप्त होता है।

कौशाम्बी के तीन बड़े सेठों का योगदान

कौशाम्बी में 1. घोषित श्रेष्ठी 2. कुक्कुट श्रेष्ठी 3. प्रवारिक श्रेष्ठी तीन धनी व्यक्ति रहते थे। श्रावस्ती अनाथपिण्डक ने घोषित को उसके मित्रों सहित श्रावस्ती पधारने की निमन्त्रण दिया और बताया गया कि भगवान बुद्ध के आगमन पर उनके सम्मान में एक विशेष उत्सव का आयोजन किया गया। उस समय धर्म-जिज्ञासु घोषित एवं उनके मित्रों को भगवान का दर्शन हुआ और धर्म का श्रवण भी प्राप्त हुआ। वे सभी भगवान के उपदेश से इतने प्रभावित हुए कि

उन्होंने भगवान बुद्ध को अपने भिक्षुसंघ सहित कौशाम्बी पधारने हेतु निमन्त्रण दिया। भगवान ने मौन रहकर स्वीकृति प्रदान दी। घोषित श्रेष्ठी अपने अमात्यों एवं मित्रों सहित वापस लौट आए। भगवान बुद्ध एवं विशाल भिक्षुसंघ के लिए उन्होंने घोषिताराम विहार का निर्माण कराया। कालान्तर में भगवान बुद्ध पधारे और उसमें अनेक धर्म-देशना दिया।

घोषिताराम विहार के मध्य में भगवान बुद्ध के बालों एवं नाखूनों के अवशेषों पर एक चैत्य का निर्माण किया गया है। यथा-

वन्दामि चेतियं सब्बं सुब्बठानेसु पतिट्ठतं।
धातु महाबोधि बुद्धरूपं सकलं सदा॥

(अर्थात् सब स्थानों में प्रतिष्ठित शारीरिक धातु (अस्थि) बोधिवृक्ष और बुद्ध प्रतिमा इन सब चैत्यों की मैं वन्दना करता हूँ।)

उपर्युक्त गाथा के द्वारा सभी चैत्यों के सम्मुख पूजा-वन्दना की जाती है। यह चैत्य घोषिताराम विहार के मध्य में स्थित है। वर्तमान में केवल एक अवशेष के रूप में उसकी नींव दिखलाई पड़ती है।

घोषिताराम विहार में एक डायन कक्ष अवशेष सुरक्षित है। जिसे डायने कक्ष कहते हैं। इस डायन का नाम आहारती था। इसका दूसरा नाम पिशाचिनी या हत्यारन भी हैं। यह औरत कौशाम्बी में रहती थी। उसके कई बच्चे थे। परन्तु वह दूसरों के बच्चों को उठाकर मार देती थी। इस कारण उसे डायन कहते थे। उसके इस कुकृत्य के कारण कौशाम्बी में हाहाकर मच गया था। उसके प्रकोप के कारण कौशाम्बी का एक भी बच्चा अकेला घर से बाहर नहीं निकलता था। वह अपने माता-पिता के साथ जाता था। इसके समाधान के लिए भगवान बुद्ध ने उनके एक बच्चे को छिपा दिया। डायन अपने बच्चे के खो जाने का एहसास होने पर विभिन्न ठिकानों पर खोजने गयी। परन्तु उन्हें प्राप्त न कर परेशान रही। अन्त में भगवान बुद्ध के सामने आकर याचना करने लगी। तब बुद्ध ने कहा। आपके पास तो अन्य बच्चे भी हैं। तुम एक बच्चे के लिए परेशान क्यों होती हो। आप सोच कर बताओ कि जिन माता-पिता के पास एक ही बच्चा है तो उसका क्या हाल होता होगा ? तब डायन इस बुरे कर्म का प्रायश्चित करने लगी और भगवान बुद्ध को आश्वासन दिया कि मैं आज से यह दुष्टकर्म कभी नहीं करूँगी। तब भगवान बुद्ध ने लोगों से उसका छिपाया गया बच्चा देने का आदेश दिया। जिसे पाकर डायन काफी खुश हुई। इस घटना से डायन बौद्ध-धर्म में भिक्षुणी बनी।

कुक्कुट सेठ ने घोषिताराम से लगभग पांच सौ मीटर की दूरी पर उत्तर दिशा में कुक्कुटाराम का निर्माण कराया। पुरातत्व विभाग ने उसको विशाल आसिया परिसर का नाम

दिया। किन्तु यहाँ के स्थानीय भिक्षु एवं ग्रामीण लोगों ने इसको कुक्कुटाराम विहार घोषित किया।

पावारिक सेठ ने भगवान बुद्ध एवं उसके संघ के लिए पावारिकाराम बनवाया। इस स्थान पर एक आम का बाग था। जहाँ पर सेठ समय मिलने पर वहां घूमने जाया करता था। वह विहार राजधानी के अन्दर था। वह स्थान आज तक सुनिश्चित नहीं कर पाया।

इन तीन आरामों के अतिरिक्त कौशाम्बी में बन्दिकाराम विहार भी था। वह घोषिताराम के पूर्व दिशा में लगभग 1 कि.मी. दूरी पर था। वर्तमान में यह विहार जोगापुर रूप में विद्यमान है। भगवान बुद्ध के समय इस विहार के विहाराधिपति के बीमार होने पर कुछ भिक्षु घोषिताराम विहार से उसकी सेवा के लिए वहीं आते जाते थे।

उदयन के पश्चात् उसका पुत्र बोधिकुमार अथवा नरवाहन कौशाम्बी का राजा हुआ। वह भी बौद्धधर्म का अनुयायी था। उसने यहाँ एक भव्य प्रसाद का निर्माण करवाया था। जब प्रासाद बनकर तैयार हो गया तो भगवान् बुद्ध की चरण–धूलि से उसे पवित्र करने के लिए उसने उन्हें शिष्यों सहित आमंत्रित किया एवं भिक्षा दी।

कौशाम्बी का वास्तविक इतिहास हमें अशोक के समय से मिलता है और यह विस्तृत साम्राज्य का एक प्रदेश था और एक महामात्यों द्वारा शासित होता था। उस समय यहाँ के बौद्ध संघ की दशा ठीक नहीं थी, जैसे कि कौशाम्बी के महामात्यों को दी गई राजाज्ञा से प्रतीत होता है। यह राजाज्ञा इलाहाबाद के किले में स्थित अशोक की लाट पर उत्कीर्ण है। तदनन्तर यह प्रदेश शुंगों की राज्यसत्ता में आया जैसा कि यहां से प्राप्त लेखों एवं मुद्राओं से ज्ञात होता है।

सन् 1934 ई में यहां से प्राप्त एक बुद्ध मूर्ति पर उत्कीर्ण लेख से यह ज्ञात होता है कि कनिष्क ने कौशाम्बी को अपने शासनकाल के दूसरे वर्ष में ही अपने राज्य में मिला लिया था। कुषाणों की सत्ता समाप्त होने के पश्चात् कुछ दिन कौशाम्बी का भार शिवों के राज्य का अंग रहा। किन्तु यह दशा अधिक दिनों तक न रही और केन्द्रीय सत्ता के कमजोर होने के साथ-साथ कौशाम्बी स्वतन्त्र हो गया। इस बीच अनेक राजाओं ने यहाँ राज्य किया। जिसका नाम हमें यहां से प्राप्त लेखों एवं सिक्कों से ज्ञात हुआ है। 320 ई. में गुप्तों का जब उत्कर्ष हुआ तो कौशाम्बी उसके राज्य में सम्मिलित हो गया।

पाँचवीं एवं सातवीं शताब्दी के कौशाम्बी-दृश्य

5वीं शताब्दी में जब फाहियान नामक प्रसिद्ध चीनी यात्री ने भारत की यात्रा की तो उसने कौशाम्बी का वर्णन करते हुए लिखा है–"मृगदाव (सारनाथ) से 13 योजन उत्तर–पश्चिम दिशा में कौशाम्बी नामक देश है। उस स्थान पर एक मंदिर है जिसका नाम घोषिताराम है। वहाँ एक बार भगवान बुद्ध ने निवास किया था। आजकल भी वहाँ बहुत से भिक्षु रहते हैं

जिनमें अधिकांश हीनयान सम्प्रदाय के है ।" इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि 5वीं शताब्दी में कौशाम्बी उन्नत अवस्था में था। परन्तु जब 7 वीं शताब्दी में ह्वेनसांग वहां पहुँचा तो उसे यह विहार भग्नावस्था में मिला । ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा के समय कौशाम्बी में दस विहारों को भग्नावस्था में देखा था, यद्यपि उस समय भी वहाँ हीनयान शाखा के 300 भिक्षु निवास करते थे। उसने कौशाम्बी के 60 फुट ऊंचे बौद्ध मंदिर का भी उल्लेख किया है जिसमें उदयन द्वारा बनवाई गई एक चन्दन की बुद्ध मूर्ति स्थापित थी । इसके अतिरिक्त उसने घोषिताराम के निर्माता श्रेष्ठी घोषित के भवनों के ध्वंसावशेष, एक अन्य बौद्ध मंदिर एवं स्तूप तथा भगवान् बुद्ध का स्नानागार भी देखा था । इसके ऊपरी भाग में महायान शाखा के प्रसिद्ध आचार्य वसुबन्धु रहते थे । वसुबन्धु के बड़े भाई असंग योगाचार–विचारधारा के मूल प्रवर्त्तक थे । उन्हीं की विचारधारा के प्रभाव से दिड़नाग एवं धर्मकीर्त्ति जैसे अतुलित तार्किक उत्पन्न हुए। वसुबन्धु और असंग के यहाँ निवास करने से सिद्ध होता है कि इस काल में कौशाम्बी बौद्ध दर्शन का प्रधान केन्द्र था।

सातवी शताब्दी से 11वीं शताब्दी तक कौशाम्बी का प्रदेश किसी-किसी रूप में कन्नौज के राजाओं के अधिकार में रहा, किन्तु उसका राजनीतिक महत्व शनैःशनैः फीका पड़ता गया और जो कुछ बचा–खुचा महत्व था वह 12 वीं शताब्दी के अन्त में यवनों के आक्रमणों से लुप्त हो गया। तब से 1836 ई. तक इसका इतिहास अंधकार के गर्त में विलीन रहा। जब श्री कनिंघम ने इसे खोजा तब इसके प्राचीन गौरव को प्रकाश में लाया। पश्चात् सन 1921-22 में दयाराम साहनी तथा सन् 1934–35 में ननीगोपाल मजूमदार ने यहां की खोदाई की और कुछ महत्वपूर्ण इमारतें तथा मूर्तियाँ आदि निकली । फलस्वरूप कौशाम्बी की पुरातत्व संबंधी वस्तुओं में जन अभिरुचि बहुत बढ़ी और लोगों ने यहाँ से कलाकृतियों को एकत्रित करना प्रारम्भ किया। इनमें अधिकांश वस्तुएं प्रयाग के संग्रहालय में है। ये वस्तुएँ बड़े ऐतिहासिक महत्व की हैं, कारण इनमें कौशाम्बी ही नहीं, बल्कि सारे उत्तरी भारत के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। केवल मुद्राओं से ही लगभग दो दर्जन ऐसे राजाओं का नाम ज्ञात हुआ है जो अन्य किसी सूत्र से नहीं ज्ञात थे।

कौशाम्बी का आधिपत्य पतन एवं ह्रास

पुराणों व पालि ग्रंथों में उदयन की मृत्यु के उपरान्त बोधि (राजकुमार) के चार उत्तराधिकारियों के नाम मिलते हैं। इसके बाद कौशाम्बी सम्भवतः नन्दों के अधीन हो गई थी।

मौर्यों के शासनकाल में यह नगर प्रसिद्ध राजनीतिक, धार्मिक व व्यापारिक केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। इसकी महत्ता के कारण ही अशोक ने कौशाम्बी में स्तम्भों के ऊपर अपने

लेखों को उत्कीर्ण कराया था। मौर्यकाल में यह सम्भवतः एक प्रांत का अधिष्ठान (राजधानी) था। कौशाम्बी–अभिलेख से ज्ञात होता है कि अशोक ने इस स्थान पर महामात्यों की नियुक्ति की थी। लगभग इसी काल में नगर के भिक्षु–संघ में एक महान भेद उत्पन्न हुआ जिसको रोकने के लिए अशोक ने सक्रिय प्रयास किया था। उसके अभिलेखों से पता चलता है कि उसने आज्ञा निर्गत की थी कि संघ की एकता भंग करने वाला भिक्षु, संघ की सदस्यता से वंचित व निष्कासित कर दिया जाएगा। अशोक की दूसरी पत्नी (तीवर-माता) कारूवाकी ने पुण्यार्जन के लिए इस नगर में आम्रवाटिका, संघाराम व दानगृह का निर्माण कराया था मौर्यों के पतन के बाद यह नगर मित्र नामधारी राजाओं का प्रादेशिक राजनीतिक केन्द्र बन गया था।

कौशाम्बी कुषाण राज्य में भी सम्मिलित था। यहाँ से प्राप्त एक बोधिसत्व–प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि यह प्रतिमा कनिष्क के शासन काल के दूसरे वर्ष में यहाँ स्थापित की गई थी और यह लेख उस पर उत्कीर्ण किया गया।

कनिष्क द्वारा दक्षिण-पूर्व की विजय यात्राओं के मध्य, अपने शासनकाल के दूसरे वर्ष में कौशाम्बी नगर को जीता गया था। कौशाम्बी के भाग्नावशेषों पर स्थित गढ़वा नामक ग्राम से प्राप्त पाषाणखंड पर कुषाण–नरेश कनिष्क का एक उत्कीर्ण लेख प्राप्त हुआ है, जिससे इस नगर के कुषाणसाम्राज्य के अधीन होने की सूचना प्राप्त होती है। बोधिसत्व की प्रतिमा के मिलने से यहाँ पर बौद्ध धर्म के प्रचलित होने का ज्ञान होता है।

कुषाणों के उपरांत इस समृद्ध नगर पर नेव नामक शासक का आधिपत्य स्थापित हुआ और तदुपरान्त मघवंश का। कुषाणकाल भी राजनीतिक व सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से कौशम्बी के लिए उत्कृष्ट काल रहा था। खुदाई से प्राप्त अवशेषों में इस काल के स्मारकों का बाहुल्य है। तत्पश्चात यहाँ पर पुश्वश्री नामक राजा का शासन रहा, जिसके उपरांत यह नगर सम्भवतः वाकाटक राज्य के अधीन रहा था।

चौथी शताब्दी के पूर्वार्ध में यह नगर समुद्रगुप्त की विजय के कारण गुप्तसाम्राज्य में सम्मिलित हो गया। यह उस समय का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। यही कारण है कि समुद्रगुप्त ने अपनी ऐतिहासिक दिग्विजय को चिरस्मरणीय बनाने के लिए यहाँ पर स्थित अशोक स्तम्भ के ऊपर उसी विषय से सम्बंधित एक नवीन लेख उत्कीर्ण कराया था। गुप्तकाल में ही चीनी तीर्थयात्री फाह्यान यहाँ आए थे। उनके वर्णनानुसार यह स्थल ऋषिपत्तन (सारनाथ) से उत्तर–पश्चिम में तेरह योजन पर स्थित था। उन्होंने यहाँ पर घोषिताराम विहार भी देखा, जहाँ उस समय भी भिक्षु निवास करते थे। वे अधिकतर हीनयानी (थेरवादी) थे।

गुप्त राजवंश के पतन के उपरान्त कौशाम्बी की समृद्धि क्रमशः क्षीण होने लगी। सातवीं शताब्दी में यहाँ आए चीनी यात्री ह्वेनसांग ने नगर के अधिकांश विहारों को ध्वस्त अवस्था में

पाया था। उन्होंने इस प्रकार के दस विहारों को देखा था। यहाँ पर रहने वाले भिक्षुओं की संख्या पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गई थी। उनके अनुसार यहाँ केवल हीनयानी सम्प्रदाय के तीन सौ भिक्षु निवास करते थे। ह्वेनसांग ने इस नगर में लगभग साठ फुट ऊँचा एक बौद्ध मंदिर देखा, जो राजधानी के परकोटे के भीतर था। उन्होंने श्रेष्ठी घोषित के घर के खंडहरों को भी शहर के दक्षिण–पूर्वी किनारे पर देखा। तीर्थ–यात्री ने एक अन्य बौद्ध मंदिर, भगवान के बालों व नाखूनों पर निर्मित स्तूप व भगवान बुद्ध के स्नान–गृह के अवशेषों को भी देखा था। घोषिताराम विहार के अवशेष नगर के दक्षिण–पूर्वी किनारे पर थे।

इनके अतिरिक्त, उन्होंने घोषितराम के दक्षिण–पूर्व में दो मंजिले एक भवन का भी वर्णन किया है, जिसके ऊपरी तल्ले पर ईंटों से निर्मित एक पुराना कक्ष था। यहाँ पर आचार्य वसुबन्धु निवास करते थे।

यहीं पर वसुबन्धु ने हीनयानियों के सिद्धांतों के खंडन के प्रयोजन से विज्ञप्तिमात्रता सिद्धि शास्त्र (देई-शिर-लुन) की रचना की थी। उन्होंने घोषिताराम के पूर्व में एक आम्रवाटिका में एक प्राचीन घर के होने का भी वर्णन किया है। उनके अनुसार वसुबन्धु के अग्रज असंग इसी में रहते थे। उन्होंने यहाँ 'सियेन-यड्-ग-शेड्रग चिआओ-लुन' नामक ग्रंथ की रचना की थी।

राजा हर्ष के ग्रन्थों प्रियदर्शिका व रत्नावली में भी इस नगर का वर्णन आता है। कालांतर में रचित ग्रन्थ कथासरित्सागर में भी कौशाम्बी का वर्णन है। वर्द्धनवंश के उपरांत यह नगर लम्बे काल तक प्रतिहार राजाओं के कान्यकुब्ज साम्राज्य में सम्मिलित था। ग्यारहवीं शताब्दी के एक लेख में भी कौशाम्बी-मंडल का उल्लेख मिलता है। तत्पश्चात् लम्बे समय के उपरान्त बादशाह (राजा) अकबर के शासन काल (1565 A.D.) का एक अभिलेख अशोक स्तम्भ पर उत्कीर्ण मिलता है, जो कि यहाँ के स्वर्णकारों द्वारा लिखवाया गया था।

इसके उपरान्त यह नगर काफी समय तक प्रकाश में नहीं रहा। आधुनिक काल में कनिंघम ने सन् 1871 में सबसे पहले कौशाम्बी नगर की खोज की। कौशाम्बी के विषय में सन् 1861 में बेयले (Baylay) ने कनिंघम से अपनी सम्भावना व्यक्त की थी।

साथ ही शिक्षा विभाग के बाबू शिवप्रसाद ने भी इस विषय में उनकी सहायता की और इस प्रकार इलाहाबाद शहर से करीब सत्तावन कि.मी. दूर वर्तमान कोसम नामक जगह पर प्राचीन कौशम्बी नगर प्रकाश में आया। यह स्थल जैन मतावलम्बियों के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। आज भी यहाँ प्राचीन जैन मंदिर है, जो तीर्थयात्रियों का आर्कषण है। यहाँ पर प्राचीन जैन प्रतिमाओं का मिलना भी जैन धर्म से इसके सम्बंध को प्रदर्शित करता है।

प्राचीन कौशम्बी नगर का घेरा लगभग 6 कि.मी. का था। यह नगर चारों तरफ से दीवारों से घिरा था, जहाँ आज घोषिताराम विहार के खंडहर, किले की दीवार, प्रवेश द्वार के अवशेष

और अन्य अनेक कलाकृतियाँ आदि प्राप्त हुई हैं। सन् 1951 में घोषिताराम विहार के अवशेषों को पहचाना गया था। विहार का आकार काफी विशाल था। कनिष्क कालीन बोधिसत्व प्रतिमा और उस पर उत्कीर्ण भिक्षुणी बुद्धमिता का अभिलेख भी यहीं से प्राप्त हुआ है।

प्राचीन संरचना

विहार के मध्य एक विशाल स्तूप था, जिसकी नींव चौकोर थी। स्तूप के चारों ओर भिक्षुओं के कक्ष और प्रांगण में अनेक छोटे स्तूप थे।

विहार के समीप ही नगर का पूर्वी प्रवेश द्वार था। यहाँ पर मित्रकाल की स्येनचित्ति (Eagle-alter) मिली है, जो पुरुषमेध यज्ञ में प्रयुक्त होती थी। सम्भवतः मित्र राजाओं द्वारा अपनी राजनीतिक स्थिति सुदृढ़ करने के उद्देश्य से पुरुषमेध यज्ञों का आयोजन किया गया होगा।

उत्खनन से एक प्रस्तर का महल भी प्रकाश में आया है, जो नगर के दक्षिण-पश्चिमी किनारे पर यमुना नदी के तट पर स्थित था। इस महल के निर्वाण का प्रारम्भिक समय छठी शताब्दी ईसापूर्व का था। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः यह राजा उदयन द्वारा उपयोग में लाया गया था। यह महल कम से कम तीन बार निर्मित हुआ और मित्र-वंश के बाद अपना महत्त्व खो बैठा था।

इनके अतिरिक्त कौशाम्बी से सम्बंधित दो स्तम्भ भी अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। एक अपने मूल स्थान पर ही उपलब्ध है। इसका ऊपरी भाग टूट गया है तथा शीर्ष लुप्त है। इसकी शैली अशोक स्तम्भों जैसी है, परंतु अशोक के अभिलेख के अभाव में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है।

इस स्तम्भ पर गुप्तकाल से अब तक के कई अभिलेख अंकित हैं, जिनमें एक अकबर कालीन अभिलेख भी है। आज प्रयाग में उपलब्ध स्तम्भ भी मूलतः कौशाम्बी का था, जिसे अकबर द्वारा प्रयाग ले जाया गया था। इस पर उत्कीर्ण अशोक का कौशाम्बी के महामात्यों को सम्बोधित संघभेद से सम्बंधित अभिलेख अपना विशेष महत्त्व रखता है। वर्तमान में यह प्रयाग के किले के भीतर है।

कनिष्क कालीन बोधिसत्व-प्रतिमा का भी अपना विशेष महत्त्व है। लाल पत्थर से बनी यह 4 (चार) फुट ऊँची प्रतिमा इलाहाबाद म्यूजियम में सुरक्षित है। कनिष्क के शासन के द्वितीय वर्ष की भिक्षुणी बुद्धमित्रा का अभिलेख भी इसी प्रतिमा पर उत्कीर्ण है। इसके अतिरिक्त कौशाम्बी से प्राप्त अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण मूर्त्तियाँ, कलाकृतियाँ, वेदिका स्तम्भ, सिक्के, सीलें इत्यादि इलाहाबाद म्यूजियम में संगृहित हैं और हमें कौशाम्बी के वैभवपूर्ण राजनीतिक व धार्मिक अवस्था का ज्ञान कराती है।

आधार ग्रन्थ-सूची

1. अभिसमयालंकार विस्तृत टीका सुवर्णमाला- आर्चाय चोङ्खपा, मिरिग प्रकाशन, तिब्बत 2000
2. कथासरित्सागर, बिहार-राष्ट्र-परिषद्, पटना, 1998
3. तिब्बती कग्युर-तनग्युर-सूची- देगे-संस्करण, जापान से प्रकाशित,1934
4. तिब्बती विद्वान देहु द्वारा कृत भारत एवं तिब्बत में बौद्ध धर्म का बृहत् इतिहास, भोट भाषा, तिब्बत से प्रकाशित, 1987
5. दीघनिकाय अट्ठकथा, विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, 1998
6. धम्मपद अट्ठकथा, भाग 1- प्रो0 रामजन्म सिंह , महात्मा गांधी, काशी विद्यापीठ, वाराणसी, 2000
7. पालि त्रिपिटक- विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, 1998
8. प्राचीन बौद्ध नगरी कौशाम्बी- चन्द्रसेन बौद्ध, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
9. बुद्ध और उनके समकालीन भिक्खु-भिक्खु मेधंकर , बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर, 2010
10. बुद्धकालीन भारतीय भूगोल- डॉ. भरतसिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2009
11. बुद्धचर्या-राहुल सांकृत्यायन- सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
12. बौद्ध धर्म और बिहार-डॉ. हवलदार त्रिपाठी, बिहार-राष्ट्र-परिषद्, पटना, 1998
13. बौद्ध धर्म का इतिहास- बुस्तोन, भोट भाषा, तिब्बत से प्रकाशित, 1991
14. भगवान बुद्ध और उनका धम्म- बाबासाहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
15. मत्स्यपुराणम्-चौखम्बा विद्याभवन, 2015
16. महापरिनिब्बान सुत्तं- भिक्षु धर्मरक्षित, प्रकाशक ज्ञानमण्डल लिमिटेड , वाराणसी, 2015
17. महाभारत, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2020
18. महावग्गपालि- बौद्ध भारती, वाराणसी, 1998
19. ललितविस्तर- शान्तिभिक्षु शास्त्री, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, 1992
20. विनय पिटक-राहुल सांकृत्यायन, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
21. विनय विभंग- देगे संस्कारण सं.3, विनय वर्ग, पोथी-च, छ, ज, ञ, भोट-भाषा
22. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण- गीता प्रेस, गोरखपुर, 2014
23. हरिवंश पुराण- गीता प्रेस, गोरखपुर, 2014
24. ह्वेनसांग की भारत यात्रा (सन् 629 से 645 ई.)- ठाकुर प्रसाद शर्मा, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
25. The Complete Catalogue of The Tibetan Buddhist Canons, Tohoku Imperial University, Sendai, Japan, 1934

एसोसिएट प्रोफेसर
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8009149740

बौद्ध जातक एवं अवदान साहित्य का संक्षिप्त-परिचय

—टी. आर. शाशनी—

सूत्रं गेयं व्याकरणं गाथोदानावदानकम्।
इतिवृत्तकं निदानं वैपुल्यं च सजातकम्।
उपदेशाद्भुतौ धर्मौ द्वादशाङ्गमिदं वचः ॥[1]

आचार्य हरिभद्रपाद विरचित अष्टसाहस्रिका-आलोक-टीका में "सारोत्तमा" में उद्धृत उपर्युक्त वचन से स्पष्ट होता है कि बौद्धों के संस्कृत-महायान-साहित्य में धर्मग्रन्थ बारह अंगों में विभाजित हैं। तदनुसार, सूत्र, गेय, व्याकरण, गाथा, उदान, अवदान, इतिवृत्तक, निदान, वैपुल्य, जातक, उपदेश, अद्भुतधर्म आदि बारह अंग हैं, जबकि पालि-साहित्य या स्थविरवाद में वैपुल्य, उपदेश तथा अद्भुतधर्म को छोड़कर नौ अङ्गों का ही वर्णन मिलता है। इन द्वादश अथवा नव अंगों में तथागत बुद्ध के धर्मोपदेश निहित हैं।

"जातक" शब्द जात(=जन्म) सम्बन्धी अर्थ को द्योतित करता है। भोट-अनुवादकों ने भी भोट-भाषा में "जातक" का अनुवाद "स्क्येस्-रबस्" अर्थात् "जन्म-सम्बन्धी इतिहास" (भगवान् बुद्ध के पूर्वजन्मों की कथाओं के अर्थ में) के रूप में किया है। इसी तरह से "अवदान" का अर्थ "पवित्र एवं उदात्त चरित" है। जातकों की भाँति बुद्ध के अनेक जन्मों के उदात्त चरितों का इनमें वर्णन है और उन्होंने जिस व्यक्ति के माध्यम से लोकोपकारक उपदेश दिये हैं, उसी के नाम से वह अवदान प्रसिद्ध है। सामान्यतः तथागत बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व बोधिसत्त्व के रूप में जिन विभिन्न योनियों में जन्म लिये हैं, उन्हीं का वर्णन जातक एवं अवदान-साहित्य में उपलब्ध होता है।

भोट-तन्ग्युर साहित्य में संस्कृत (मूल) से अनूदित जातक को एक स्वतन्त्र शीर्षक के अन्तर्गत संग्रह किया गया है, जिसका विवरण जापान से प्रकाशित तोहोकु सूचीपत्र के क्रम-संख्या 4150 से 4157 में उपलब्ध है, किन्तु इसमें क्रम-संख्या 4155 का ग्रन्थ-नाम आदि विवरण अनुपलब्ध है। इस सूचीपत्र में जातक के अन्तर्गत क्षेमेन्द्र रचित "बोधिसत्त्व-कल्पावदानलता", (आर्य?)शूर रचित "बोधिसत्त्वजातकधर्मगण्डी", "हरिभट्टजातकमाला-नाम", धर्मकीर्ति विरचित "जातकमाला-टीका" आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त लोकानन्द-नाटक-नाम, नागानन्द-नाम-नाटक तथा अश्वघोष रचित बुद्धचरित-नाम-महाकाव्य को भी उपर्युक्त

1. द्रष्टव्य- सर्वाकारज्ञताचर्यापरिवर्तः प्रथमः; पृ. 286, मिथिला प्रकाशन, दरभंगा, 1960

जातक के अन्तर्गत ही संगृहीत किया गया है। इनके अतिरिक्त कुछ अवदानों का संकलन भोट-क-ग्युर-संग्रह में "म्दो-स्दे"(=सूत्र-वर्ग) के अन्तर्गत तथा कुछ भोट-तन्ग्युर-संग्रह में "ह्दुल्-व"(=विनय) के अन्तर्गत भी संकलित किया गया है।

बौद्ध-साहित्य में तो जातकों का अपना विशेष महत्त्व है ही, भारतीय संस्कृति में भी जातक को लोक-कथाओं के प्राचीनतम संग्रह के तौर पर प्रतिष्ठा प्राप्त है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अधिकाँश जातक बुद्धकालीन हैं। दूसरी-तीसरी शताब्दी ईसवी पूर्व के साँची और भरहुत के स्तूपों की पाषाण-वेष्टनियों पर जातक के दृश्यों का अंकित होना भी इसकी प्राचीनता को सिद्ध करता है। इनके अतिरिक्त कालान्तर में भारत के अमरावती-स्तूप, अजन्ता, नागार्जुनी-कोण्ड, तथा जावा के बोरोबुदूर तथा श्रीलंका आदि देशों में भी जातक के प्राचीन चित्रांकन देखे जा सकते हैं। जातक-कथाओं में बुद्धकालीन भारतीय समाज के धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, व्यापारिक, भौतिक एवं लौकिक विश्वास सम्बन्धी विविध आयामों को देखा जा सकता है। इतना ही नहीं, विश्व के विभिन्न देशों के साहित्य में भी जातक-कथाओं का प्रभाव देखा जा सकता है।

जातक कथाओं में प्रसंगवश कुछ भिन्नताओं के बावजूद श्रावकयान और महायान दोनों में इसकी महत्ता सुप्रसिद्ध है। विदित है कि जातक-कथाएँ स्थविरवाद (=पालि-साहित्य) एवं महायान(=संस्कृत-साहित्य) दोनों में पायी जाती हैं। दोनों परम्पराओं में जातकों की निश्चित संख्या का निर्धारण नहीं है। इसका निर्णय करना भी असंभव-सा प्रतीत होता है, क्योंकि इन कथाओं का कालान्तर में कई रूप देखने को मिलता है। थेरवादी-परम्परा के लंका, बरमा, स्याम आदि देशों में पालि-साहित्य के आधार पर जातकों की संख्या 550 मानी जाती है, जबकि वर्तमान में उपलब्ध 547 जातक कहानियों में भी कमोवेश की गुँजाईश बनीं हुईं हैं। पालि-साहित्य के विभिन्न स्रोतों से यह प्रतीत होता है कि जातकों की संख्या अनिश्चित है, इसलिए सुनिश्चित करना कठिन है। कालान्तर में गाथाओं के संदर्भ में जातक की कथाओं को जोड़ा गया होगा, ऐसा माना जा सकता है।

स्थविरवादी-परम्परा या बौद्ध पालि-साहित्य में खुद्दक-निकाय के अन्तर्गत जातक को एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठा मिली है। इसी तरह महायान-परम्परा या बौद्ध संस्कृत-साहित्य में भी "जातकमाला" का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। साथ ही, "बोधिसत्त्व-अवदानमाला" के नाम से भी बुद्ध के जीवन की पूर्व कथाओं का वर्णन उपलब्ध होता है, जिसे आर्यशूर के द्वारा रचित माना जाता है। आर्यशूर को भोटदेश के लामा तारनाथ ने अश्वघोष का ही दूसरा नाम बताया है। इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद भी है। आर्यशूर रचित "जातक-माला" में कुल 34 कथाएँ हैं, जिनमें से 28 पालि-साहित्य की जातक-कथाओं से मिलती-जुलती हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी कथायें हैं जो पालि जातक में नहीं पायी जातीं हैं। उनमें व्याघ्री-जातकम्, मैत्रीबल-जातकम्, यज्ञ-जातकम्, अपुत्र-जातकम्, ब्रह्म-जातकम्, हस्ति-जातकम् आदि कुल 6 जातक हैं। इस ग्रन्थ के परिशिष्ट में आर्यशूरविरचिता "सुभाषित-रत्नकरण्डककथा" नामक ग्रन्थ भी प्रकाशित है। इसमें पुण्यप्रोत्साहनकथा, धर्मश्रवण-प्रोत्साहनकथा, दुर्लभमानुष्यकथा, दानकथा, पुण्यकथा, बिम्बकथा, स्नानकथा, कुङ्कुमादि-कथा, छत्रकथा, धात्वारोपणकथा, मण्डलकथा, भोजनकथा, पानकथा, वस्त्रकथा, पुष्पादि-कथा, प्रणामकथा, उज्ज्वालिकादानकथा, प्रदीपकथा, विहारकथा, शयनासनदानकथा, क्षेत्रकथा, विचित्रकथा, शीलकथा, क्षान्तिकथा, वीर्यकथा, ध्यानकथा, प्रज्ञाकथा आदि 27 पद्यों में रचित कथाओं का संग्रह है। ये सभी कथायें भी अवदान-साहित्य से ही सम्बद्ध प्रतीत होती हैं।

"राष्ट्रपाल-परिपृच्छा" नामक महायान साहित्य में भी 50 जातक कथाओं का वर्णन है, जिसे बुद्ध के द्वारा भाषित माना जाता है। संस्कृत में "अवदानशतकम्" नाम से उपलब्ध ग्रन्थ के अन्तर्गत भी 10 वर्गों में 100 कथायें हैं। लेकिन मिथिला विद्यापीठ से प्रकाशित इस ग्रन्थ में पाँचवीं कथा लुप्त है। इस प्रकाशित ग्रन्थ के परिशिष्ट में "कल्पद्रुमावदानमालायां सुभूत्यवदानम्" शीर्षक से एक अन्य अवदान कथा, पद्य रूप में समाविष्ट है। "दिव्यावदानम्" नामक अवदान-साहित्य में भी 38 कथायें समाविष्ट हैं, ये सभी कथायें पद्य सहित गद्य रूप में रचित हैं।

यद्यपि संस्कृत में उपलब्ध "दिव्यावदानम्" भोट-भाषा में अनूदित नहीं है, तथापि दिव्यावदान में संकलित "सूकरिकावदानम्" (तोहोकु-345), "कनकवर्णावदानम्" (तोहोकु-350), "चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदानम्" (तोहोकु-348), तथा "कुणालावदानम्" (तोहोकु-4145) नामक आरम्भिक तीन अवदान को भोट-क-ग्युर-संग्रह में "म्दो-स्दे"(=सूत्र-वर्ग) के अन्तर्गत तथा "कुणालावदानम्" को भोट-तन्ग्युर-संग्रह में "ह़दुल्-व"(=विनय) के अन्तर्गत संकलित किया गया है। इसी क्रम में, भोट-तन्ग्युर-संग्रह में "ह़दुल्-व"(=विनय) के अन्तर्गत ही "सुवर्णवर्णावदान" (तोहोकु-4144), "आर्यनन्दिमित्रावदान-नाम" (तोहोकु-4146), तथा "सप्तकुमारिकावदानम्" (तोहोकु-4147) नामक तीन अन्य अवदान भी संकलित हैं, जो दिव्यावदान में नहीं हैं। संस्कृत के "अवदानशतकम्" में प्रत्येक कथा आंशिक रूप से पद्य तथा विस्तृत रूप से गद्य में वर्णित हैं। बौद्ध संस्कृत साहित्य में "दिव्यावदान" को सर्वप्रथम अवदान-संकलनों में एक माना जाता है।

पालि साहित्य में प्रत्येक जातक-कथा को पाँच भागों में विभक्त किया है, तदनुसार 1. पच्चुप्पन्नवत्थु 2. अतीतवत्थु 3. गाथा 4. वैय्याकरण या अत्थवण्णना 5. समोधान।

पच्चुप्पन्नवत्थु का अर्थ है- वर्तमान काल की घटना या कथा। बुद्ध के जीवन-काल में घटित घटना को पच्चुपन्नवत्थु तथा पूर्व जन्म के वृत्त को अतीतवत्थु कहा गया है। गाथाओं को जातक का प्राचीनतम अंश माना जाता है। दूसरे शब्दों में गाथाएँ ही जातक हैं, क्योंकि पच्चुपन्नवत्थु आदि पाँच भागों में विभक्त जातक तो जातक की अर्थकथा है। गाथाओं के अनन्तर जातक में वैय्याकरण या अथवण्णना आती है, इसमें गाथाओं की व्याख्या और उनका शब्दार्थ होता है। समोधान या समावधान इस क्रम में अन्तिम है, जो अतीतवत्थु के पात्रों का बुद्ध के जीवन-काल के पात्रों के साथ सम्बन्ध मिलाया जाता है।

जातक-अट्ठकथा की निदान-कथा में बुद्ध-जीवन के तीन निदान बताये गये हैं। उनमें से 1. दूरे निदान 2. अविदूरे निदान 3. सन्तिके निदान।

"दूरे निदान" में अत्यन्त दूर अतीत की बुद्ध-जीवन की कथा का वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत सुमेध(=बाल्य, वैराग्य), संन्यास, आश्रम, दीपंकर का दर्शन, बुद्ध बनने का संकल्प, दीपंकर की भविष्यवाणी, सुमेध का दृढ़ संकल्प, दस पारमिताएँ, पहले के बुद्ध तथा जातकों में पारमिताओं का अभ्यास आदि संकलित हैं। बुद्ध जीवनी से सम्बद्ध "अपण्णक जातक" से लेकर "वेस्सन्तर जातक" तक 547 जातक-कथाएँ "दूरे-निदान" से ही सम्बन्धित हैं, जिनमें अतीतवत्थु का वर्णन उपलब्ध है।

"अविदूरेनिदान" के अन्तर्गत देवलोक से मनुष्यलोक की ओर आगमन, बोधिसत्त्व का जन्म, कुल, देश, माया देवी के गर्भ में प्रवेश, सिद्धार्थ के रूप में जन्म, काल देवल की भविष्यवाणी, ज्योतिषी की भविष्यवाणी, शैशव का एक चमत्कार, यौवन प्रवेश, जरा, व्याधि, मृत्यु, संन्यास-दर्शन, पुत्र-जन्म, गृह-त्याग, भिक्षु वेश का ग्रहण, राजगृह में भिक्षाटन, तपस्या, सुजाता की खीर, मार पराजय, बुद्ध-पद का लाभ आदि, अर्थात् "लुम्बिनी-वन में जन्म लेने के समय से लेकर बौद्धगया के वज्रासन में बोधि-प्राप्ति" तक की कथा का वर्णन "अविदूरे-निदान" से सम्बन्धित है।

इसी तरह, "सन्तिके निदान" में बोधिवृक्ष के आसपास चंक्रमण, अजपाल बरगद के नीचे वास, मुचलिन्द वृक्ष के नीचे वास, धर्म-प्रचार, सारनाथ का भ्रमण, प्रथम उपदेश, धर्मचक्र-प्रवर्त्तन, उरुवेला की ओर, राजा बिम्बिसार का बौद्ध होना, सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की प्रव्रज्या, शुद्धोदन का संदेश, कपिलवस्तु-गमन, सम्बन्धियों से मिलन, पुत्र को दाय-भाग, अनाथपिण्डिक का दान आदि के वर्णन उपलब्ध हैं। अर्थात् "बोधि-प्राप्ति के उपरान्त निर्वाण-प्राप्ति तक की बुद्ध-जीवनी" "सन्तिके निदान" के अन्तर्गत गृहीत है। इस तरह, जातक की कहानियों में

"अतीतवत्थु" के अन्तर्गत बुद्ध-जीवनी के "दूरे निदान" में समाविष्ट पूर्वजन्मों की कहानियाँ ही समाविष्ट हैं।

जातक, गाथा(=पद्य) और गद्य मिश्रित रचनाएँ हैं। गाथा को जातक का प्राचीनतम भाग माना जाता है, क्योंकि गाथा त्रिपिटक का अंश है, शेष सब अट्ठकथा का है। लेकिन जातक-कथाएँ उपर्युक्त पाँच अंगों के विना अपनी पूर्णता को प्राप्त नहीं होती हैं। यद्यपि 547 जातक-कथाओं के संग्रह को जातक कहा जाता है, तथापि विद्वानों ने जातक के अर्थ की व्याख्या का वर्णन होने से "जातक-अट्ठकथा" कहना भी समीचीन माना है। जातक अट्ठकथा के सात परिच्छेदों में कुल 400 जातक कथाओं का वर्णन उपलब्ध है। तदनुसार, पहले परिच्छेद में अपण्णक वर्ग, सील वर्ग, कुरुंग वर्ग, कुलावक वर्ग, अत्थकाम वर्ग, आसिंस वर्ग, इत्थि वर्ग, वरुण वर्ग, अपयिम्ह वर्ग, लित्त वर्ग, परोसत वर्ग, हंसी वर्ग, कुसनाळि वर्ग, असम्पदान वर्ग, ककण्टक वर्ग आदि 15 वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग में 10 कथायें हैं। इस तरह प्रथम परिच्छेद में कुल 150 कथायें हैं। दूसरे परिच्छेद में दलह वर्ग, सन्थव वर्ग, कल्याणधम्म वर्ग, असदिस वर्ग, रुहक वर्ग, नतंदल्ह वर्ग, बीरणत्थम्भक वर्ग, कासाव वर्ग, उपाहन वर्ग, सिगाल वर्ग आदि 10 वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग में 10 कथायें हैं। इस तरह दूसरे परिच्छेद में कुल 100 कथायें हैं। तीसरे परिच्छेद में सङ्कप्प वर्ग, पदुम वर्ग, उदपान वर्ग, अब्भन्तर वर्ग, कुम्भ वर्ग आदि 5 वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग में 10 कथायें हैं। इस तरह तीसरे परिच्छेद में कुल 50 कथायें हैं। चौथे परिच्छेद में विवर वर्ग, पुचिमन्द वर्ग, कुटिदूसक वर्ग, कोकिल वर्ग, चूलकुणाल वर्ग आदि 5 वर्ग हैं। प्रत्येक में 10 कथायें हैं। इस तरह चौथे परिच्छेद में कुल 50 कथायें हैं।

पाँचवें परिच्छेद में मणिकुण्डल वर्ग, वणारोह वर्ग, अड्ढ वर्ग आदि 3 वर्ग हैं। आरम्भिक दो वर्गों में प्रत्येक में 10 कथायें तथा तीसरे वर्ग में 5 कथायें हैं। इस तरह पाँचवें परिच्छेद में कुल 25 कथायें हैं। छठे परिच्छेद में अवारिय वर्ग, सेनक वर्ग नामक 2 वर्ग हैं। प्रत्येक में 10 कथायें हैं। इस तरह छठे परिच्छेद में कुल 20 कथायें हैं। सातवें और अन्तिम वर्ग में कुक्कु वर्ग के नाम से एक मात्र वर्ग है, जिसमें 5 कथायें हैं। इस तरह जातक-अट्ठकथा में कुल 400 कथाओं का संग्रह है।

पालि-साहित्य में "चरिया-पिटक" जो खुद्दक-निकाय का अन्तिम ग्रन्थ है, में भी भगवान् बुद्ध के पूर्वजन्मों की चर्याओं का वर्णन उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में भगवान् के द्वारा विभिन्न योनियों में सम्पन्न की गयी नाना पारमिताओं के वर्णन हैं। इस ग्रन्थ में पालि साहित्य में उपलब्ध दान, शील, नैष्कर्म्य, अधिष्ठान, सत्य, मैत्री और उपेक्षा आदि सात पारमिताओं पर आधारित 35 जीवन-चर्याओं के वर्णन उपलब्ध हैं। इन में से दानपारमिता के अन्तर्गत संगृहीत "महागोविन्द

चरियं'' नामक कथा, जातक में नहीं पायी जाती है, लेकिन इसका वर्णन दीघ-निकाय के "महागोविन्दसुत्त" में उपलब्ध है। चरिया-पिटक में उपलब्ध इन 35 जातकों में से 10 जातक दान-पारमिता, 10 जातक शील-पारमिता, 5 जातक नैष्कर्म्य-पारमिता, 1 जातक अधिष्ठान-पारमिता, 6 जातक सत्य-पारमिता, 2 जातक मैत्री-पारमिता तथा 1 जातक उपेक्षा-पारमिता से सम्बन्धित हैं। इनमें से सिविराज चरियं(=शिबिजातकम्), ससपण्डित चरियं(=शशजातकम्), अकित्ति चरियं(=अगस्त्यजातकम्), वेस्सन्तर चरियं(=विश्वन्तरजातकम्), मच्छराज चरियं (मत्स्यजातकम्), वट्टपोतक चरियं(=वर्तकापोतकजातकम्), भीस चरियं (=बिसजातकम्), चूलबोधि चरियं(=चुड्डबोधिजातकम्), रुरुराज चरियं(=रुरुजातकम्), कपिराज चरियं (=महाकपिजातकम्), सुतसोम चरियं(=सुतसोमजातकम्), अयोधर चरियं (=अयोगृह-जातकम्), महिंसराज चरियं(=महिषजातकम्) आदि चरिया-पिटक के कुल 13 जातक आर्यशूर रचित जातकमाला में भी पाये जाते हैं।

पालि-साहित्य में "अपदान" खुद्दक-निकाय का उत्तर-कालीन ग्रन्थ है। थेर-अपदान तथा थेरी अपदान के रूप में अपदान के दो भाग हैं। थेर-अपदान में 55 वर्ग हैं तथा चौंतीसवें वर्ग को छोड़कर प्रत्येक वर्ग में 10 अपदान हैं। चौंतीसवें वर्ग में केवल 7 वर्ग हैं। थेरी-अपदान में 4 वर्ग हैं, जिनमें प्रत्येक में 10 अपदान हैं। इस अपदान साहित्य में बुद्ध के साक्षात् शिष्यों (547 भिक्षुओं तथा 40 भिक्षुणियों) के पूर्व-जन्मों के महान् कृत्यों के वर्णन हैं। जातक के समान अपदान की कहानी के भी अतीत और वर्तमान जीवन-सम्बन्धी दो भाग हैं। जातक से सीधा सम्बद्ध न होने के बावजूद इसका वर्णन करना इसलिए आवश्यक जान पड़ता है कि कुछ विद्वान् संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध अवदान-साहित्य को पालि अपदान-साहित्य की शैली में विकसित हुआ मानते हैं। पालि-साहित्य के "बुद्धवंस" में भी गौतम बुद्ध और उनके पूर्ववर्ती 24 बुद्धों की जीवनियों का विवरण 28 परिच्छेदों में पद्यात्मक रूप में उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में पच्चीसवें बुद्ध गौतम बुद्ध के सम्बन्ध में 25 गाथाएँ उपलब्ध हैं।

पालि एवं संस्कृत दोनों परम्पराओं में भगवान् बुद्ध के पूर्व जीवन-गाथाओं से सम्बद्ध साहित्य से ऐसा प्रतीत होता है कि जातक एवं अवदान-साहित्य अत्यन्त व्यापक था। सम्प्रति जो साहित्य उपलब्ध हैं, इनके अतिरिक्त अनेक जातक एवं अवदान साहित्य से सम्बद्ध ग्रन्थ पाण्डुलिपियों एवं अन्य सूचीपत्रों में भी दृष्टिगोचर होते हैं। इसलिए इस सम्बन्ध में विशद शोध की आवश्यकता प्रतीत होती है। भोटदेश के आचार्यों ने सुङ्-बुम-साहित्य में जातक एवं अवदान के अन्तर्गत आर्यशूर विरचित जातक-माला पर 30 से अधिक टीकायें, अवदानकल्पलता पर 10 से अधिक टीकायें रची हैं। इनके अतिरिक्त भोट-साहित्य में बुद्ध की

जीवनी से सम्बन्धित कुल 151 ग्रन्थों का संकलन भी उपलब्ध है। इसी तरह से श्रीलंका, बर्मा, थाईलेंड, कम्बोडिया, चीन, कोरिया, जापान आदि देशों की भाषाओं में भी जातक एवं अवदान के साहित्य बहुतायत में उपलब्ध हैं, किन्तु इस लेख में इन सब का विवरण देना संभव नहीं है।

इन जातकों एवं अवदानों के माध्यम से हम जान सकते हैं कि तथागत बुद्ध ने बोधिसत्त्व की चर्या का पालन करते हुए विभिन्न योनियों में जन्म लेकर परहित के लिए अपने जीवन को किस तरह से समर्पित एवं उत्सर्ग किया। इनके अतिरिक्त इस साहित्य में तथागत ने पारमिताओं का अभ्यास एवं उदात्त चरित्रों सहित अनेकानेक मानवीय मूल्यों का परिचय दिया। अवदान-साहित्य के अधिकाँश कथाओं में निम्न पद्यों का बहुशः प्रयोग मिलता है, वास्तव में ये वचन अवदान-साहित्य के मर्म हैं। अवदान-साहित्य में बारम्बार प्रयुक्त इन दो श्लोकों का वर्णन आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान ने भी *धर्मधातुदर्शनगीतिः* नामक अपने ग्रन्थ में किया है। मूलतः यह श्लोक प्रातिमोक्षसूत्र में प्राप्त होता है–

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः॥ 1॥
यो ह्यस्मिन्धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति॥ 2॥[1]

"आरब्ध करें अर्थात् दुःखसत्य के परिज्ञान का प्रयास करें। उखाड़ दें, अर्थात् समुदय-सत्य के मूल को उखाड़ दें। बुद्धशासन में जुट जायें, अर्थात् मार्ग-सत्य की भावना में जुट जायें। जैसे हाथी नरकट(=तृण विशेष)-समूह को राह निकालते हुए पार करता है, उसी तरह से मृत्यु की सेना को ध्वस्त कर दें। जो अप्रमत्त अर्थात् प्रमाद रहित होकर इस विनय-धर्म का आचरण करेगा, वह जन्म-मृत्यु रूपी संसार का परित्याग कर, दुःखों का अन्त करेगा"।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ 3॥

"प्राणियों के किये सुकर्मों एवं दुष्कर्मों का नाश सौ करोड़ कल्पों में भी नहीं होता है, काल अथवा अवस्था विशेष में तदनुरूप सामग्री प्राप्त होने पर, वह निश्चय ही फलित होता है।"

इसलिए बौद्धधर्म में बोधिसत्त्वचर्या के रूप में सद्धर्म के सम्यक् आचरण और कर्म-फल को प्रधानता दी गयी है। यही कर्मफल सुख और दुःख का जनक तथा पाप और पुण्य का

1. आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान प्रणीत पंच ग्रन्थ संग्रह (धर्मधातुदर्शनगीतिः), पुनरुद्धारक, अनुवादक एवं सम्पादक-लोब्सङ् दोर्जे रबलिंग; केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ से प्रकाशित, वर्ष 1999

नियामक है। कर्मफल ही संसार एवं निर्वाण का मार्ग भी सुनिश्चित करता है। अन्ततः प्राणिमात्र का हित सम्पादन करने हेतु बुद्धत्व रूपी जो साधन है, उस की प्राप्ति का मार्ग भी चार आर्य-सत्य और कर्मफल के सिद्धान्त से ही प्रशस्त होता है। इसीलिए जातक एवं अवदानों में इन्हें अधिक महत्त्व दिया गया है।

॥ भवतु सर्वमङ्गलम् ॥

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:

1. अवदानशतकम्, बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली- 19, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, बिहार, वर्ष 2000
2. आर्यशूरविरचिता जातकमाला सुभाषित-रत्नकरण्डक-कथा च। बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली- 21, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, बिहार, वर्ष 1999
3. दिव्यावदानम्, बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली- 20, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, बिहार, वर्ष 1999
4. जातक-अट्ठकथा (मूल पालि के साथ हिन्दी-अनुवाद), भाग 1-3, आधार अनुवाद- भदन्त आनन्द कौसल्यायन, संशोधन-सम्पादन- डॉ. शिवशंकर त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित, वर्ष 2006-2007
5. पालि-साहित्य का इतिहास, लेखक- भरत सिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2013
6. A Complete Catalogue of The Tibetan Buddhist Canons (Bkaþ-þgyur and Bstan-þgyur), Published by Toh"ku Imperial University Aided by Sait" Gratitude Foundation Sendai, Japan, 1934

सह आचार्य
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो. नं. - 9415447466

बौद्ध मनोविज्ञान - मेरी समझ

—डॉ. अरुण कुमार राय—

मनोविज्ञान मन का विज्ञान है, जिसमें मानव जीवन की समस्त मानसिक गतिविधियां शामिल हैं । परन्तु पश्चिम में, यह चिकित्सा विज्ञान, दर्शन, प्राकृतिक विज्ञान, धर्म, शिक्षा समाजशास्त्र और अपराधशास्त्र आदि विषयों से उत्पन्न हुआ तथा मानव समाज से सम्बंधित सभी विषयों तक विस्तारित है । आज के समाज में, मनोविज्ञान शिक्षा, उद्योग, व्यवसाय, स्वास्थ्य देखभाल, राष्ट्रीय रक्षा, कानून, राजनीति समाजशास्त्र, विज्ञान, कला और यहाँ तक कि खेल में भी आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाया जाने लगा हो। समय के साथ इसका महत्व बढ़ गया है।

मनोविज्ञान मन के मानसिक कार्यों और मानव व्यवहार के तरीकों की जांच करता है। पश्चिम में मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व और व्यवहार के निर्धारकों के विकास का अध्ययन करने के लिए इसका उपयोग करते हैं। इसकी अंतर्निहित सीमाओं के कारण पश्चिमी मनोविज्ञान केवल व्यक्तित्व परिवर्तन और सुधार में आंशिक रूप से सफल रहा है। दूसरी ओर, बौद्ध धर्म मानव की मनोवैज्ञानिक प्रकृति को बहुत गहराई से समझता है और प्रभावी उपचार विधियों का विकास किया है। बौद्ध दर्शन या मनोविज्ञान में यह स्पष्ट रूप से रेखांकित तीनों लोकों की अवधारणा का आधार मन ही है, जन्म और मृत्यु इसी के अधीन हैं, परन्तु मन जब केंद्रीकृत होकर ध्यान करता है तो यह समाप्त हो जाता है।

मन का विश्लेषण बौद्ध मनोविज्ञान में बहुमुखी और परिष्कृत दोनों है । एक आध्यात्मिक अभ्यास के रूप में, बौद्ध धर्म में मन की प्रकृति और कार्य के बारे में पर्याप्त विवरण उपलब्ध हैं। मन को कैसे जाने-समझे और इसे परिष्कृत करें , आदि के बारे में निर्देश हैं। इस तरह हम देखते हैं कि बौद्ध मनोविज्ञान पश्चिमी मनोविज्ञान से ज्यादा समृद्ध है।

"मनोविज्ञान" शुरुआत में एक ऐसे विज्ञान के रूप में देखा गया, जो चेतना, आत्मा तथा मन की व्याख्या करता है, बाद में, इसे मानव समस्याओं के अध्ययन के लिए एक व्यवहार विज्ञान में विस्तारित किया गया। यह विकास बौद्ध धर्म में जीवन और ब्रह्मांड को कैसे देखा जाता है, इसके अनुरूप है: "मन से सभी घटनाएं उत्पन्न होती हैं", बौद्ध धर्म दुनिया की हर चीज की हमारे मन की अभिव्यक्ति के रूप में व्याख्या करता है। यह सबसे बुनियादी स्तर पर मानव समस्याओं की जाँच और विश्लेषण करता है । इस दृष्टिकोण से, बौद्ध धर्म को मनोविज्ञान की पूर्ण विकसित प्रणाली माना जा सकता है।

बुद्ध की सभी शिक्षा मन का विश्लेषण करते हैं, जैसा कि सूत्र और शास्त्रों में वर्णित है। योगशास्त्र ग्रंथों का उपयोग बौद्ध मनोविज्ञान को समझने के लिए आवश्यक है।

बौद्ध विश्लेषकों का मानना है कि मन में आठ चेतनाएँ होती हैं, जो स्पष्ट रूप से इंगित करती हैं कि यह एक तत्व से नहीं बनी है, बल्कि अनेक कारकों की एक जटिल अंतःक्रिया है। ये कारक मानव शरीर (आंख, कान, जीभ, शरीर और मानसिक कार्य) के छह संवेदी अंगों के कार्य हैं, साथ ही वह चेतना जो "आत्म" (मानस) और आलय चेतना (भंडार-चेतना) को लगातार ग्रहण करती है। (बौद्ध ग्रंथों में "मन को स्वामी" के रूप में जाना जाता है) जन्म और मृत्यु के चक्रों का आधार मन रूपी बीज है। एक बौद्ध के लिए, इस समय "स्व" अतीत से संचित सब कुछ दर्शाता है। भविष्य में "स्वयं" वर्तमान की क्रियाओं पर निर्भर करता है। वह यह है कि "इस जीवन में जो प्राप्त होता है वह पिछले जन्मों में किये गए कर्मों की खेती का परिणाम है। भावी जीवन में जो मिलता है उसका बीजारोपण इसी जन्म हो जाता है।

"तीन लोकों की कल्पना मन की एक मात्र अभिव्यक्ति है। इस जीवन और ब्रह्मांड में सभी घटनाएं आठ-चेतना के माध्यम से हमारे दिमाग पर अंकित दर्पण छवियों के अलावा और कुछ नहीं हैं। आंख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन भेदभाव और आवाज, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श और विचार को समझ लेते हैं। व्यक्तिगत विभेद प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता पर निर्भर है। वास्तव में सभी चीजें या छवियाँ अवास्तविक एवं भ्रम हैं परन्तु निर्माण हेतु इनका प्रयोग किया जाता है। इसी को "दुनिया जीवन" मानती है। वास्तव में सभी चीजें लगातार गठन, पालन, विनाश और शून्यता के चक्र में बदलती हैं। (जन्म और मृत्यु चक्र) हमारे विचार भी उत्पन्न होते हैं, रहते हैं, बदलते हैं और तुरंत गायब हो जाते हैं। कोई ऐसा जीवन या संसार कही नहीं मिल सकता है जो वास्तव में परिवर्तन के बिना मौजूद हो? ब्रह्मांड में सब कुछ केवल धारणा और व्याख्या में पाया जा सकता है।

अचेतन मन बड़े भंडार गृह की तरह है, जो प्यार, घृणा, भलाई और दुश्मनी के अतीत की यादों से भरा है, जिसे हम अब शायद इस जीवन में याद नहीं करेंगे या करना नहीं चाहेंगे। परन्तु यह वर्तमान में हमारे कार्यों और व्यवहारों को प्रभावित करता है और इसे ही बौद्ध धर्म में अज्ञानता कहा जाता है। इस अज्ञानता के कर्म प्रभाव के कारण, हम जन्म और मृत्यु के चक्र से गुजरते हैं। जो पिछले जन्म के परिपक्व बीज होते हैं, उसी के प्रभाव से हम पीड़ित हो कर और अशुभ कर्म करने के लिए ललचाते हैं, जो भविष्य में नए अनचाहे बीज रोपते हैं। जब पिछले जन्म कर्म के पौष्टिक परिपक्व बीज से हमें शुद्ध दिल, स्पष्ट और बुद्धिमान दिमाग मिलता है जिसके कारण हम पूर्ण कर्म करते हैं, जो नए शुद्ध बीज बन जाते हैं जो हमारे अचेतन मन के भंडार गृह में संगृहीत हो जाते है। पुनः ये बीज नए कर्म फल के बीज के रूप में बदल

जाते हैं। सभी मानव व्यवहारों को समझने हेतु इसी मनोवैज्ञानिक प्रारूप का प्रयोग किया जाता है।

अज्ञानता के प्रभाव के कारण ही हम अतीत को अपने साथ ले जाते हैं, लालच और क्रोध के कारण हम नकारात्मक भावनाओं से भर जाते है। परिणामस्वरूप हमारा मन भ्रमित हो कर दुनिया में चीजों के बारे में गलत विचार बनाते हैं तथा उसी प्रकार निर्णय लेने का विचार बनाते हैं। हालांकि, जिस तरह पौधों को फलने और फूलने के लिए धूप और बारिश की आवश्यकता होती है, उसी तरह की स्थितिया मानव व्यवहार के विकास के लिए आवश्यक होती है। हालाँकि सभी मनुष्यों के अवचेतन में प्रेम, घृणा और सकारात्मक या नकारात्मक विचारों की भावनाएँ गहरी बैठी होती हैं, जब ये भावनाएँ हमें लोगों या उन चीज़ों से उत्तेजित होती हैं जो हमें चारों ओर से घेर लेती हैं तब हमें नकारात्मक कर्मों से बचने के लिए अपने सच्चे मन और ज्ञान पर भरोसा करना चाहिए और उसी के अनुरूप आचरण करना चाहिए ।

अच्छे मन (सात्विक विचार युक्त मन) और उसकी बुद्धि के विकास हेतु उपयुक्त उपदेशों को अपनाना चाहिए तथा एकाग्रता विकसित करने और जागरूक अंतर्दृष्टि विकसित करने का निरंतर अभ्यास करना चाहिए, ताकि एक प्रबुद्ध मन को सच्चे मन में बदला जा सके और जिसे बौद्ध धर्म में "चेतना को ज्ञान में परिवर्तित करने" के रूप में वर्णित किया गया है। चेतना पिछले मनोवैज्ञानिक अनुभवों को एक सामान के रूप में वहन करती है। सच्चे मन से निकली बुद्धि चिकित्सा या उपचार है, जिसका उपयोग मनुष्य अपने मन के भीतर आंतरिक संघर्षों को हल करने के लिए, इस जीवनकाल में दुख को पार करने के लिए, और आने वाले जीवन में जन्म और मृत्यु के चक्र को तोड़ने के लिए कर सकता है।

मनुष्य की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं को मन कैसे प्रभावित करता है, जिसे "मन की विशेषताओं" के रूप में संदर्भित किया जाता है।

1. आधारभूत मनोवैज्ञानिक कार्य: मानसिक और शारीरिक संपर्क, ध्यान, भावना, पहचान और विश्लेषण।
2. जानबूझकर निर्मित मानसिक स्थिति: आकांक्षा, समझ, स्मृति, एकाग्रता और ज्ञान।
3. मन की स्वस्थ मनोवैज्ञानिक अवस्थाएँ: विश्वास, परिश्रम, शांत मनोवृत्ति विनम्रता, और समभाव अर्थात पश्चाताप, लालच, घृणा, अज्ञानता, आदि का पूर्ण आभाव |
4. आधारभुत दुख: लालच, घृणा, अज्ञानता, अहंकार, संदेह और गलत विचार।
5. अप्रमाणिक मनोवैज्ञानिक अवस्थाएँ: क्रोध, शत्रुता, जलन, दंभ, धोखा, चापलूसी, अहंकार, द्वेष, ईर्ष्या, कठोरता, पश्चाताप, कोई पछतावा न होना, भरोसा का आभाव,

आलस्य, असंवेदनशीलता, उदासीनता, आडंबर, विस्मृति, गलत धारणा, और विषमता।

6. मन की उदासीन अवस्थाएँपश्चाताप : तंद्रा, निरंतर अतार्किक विचार।

बौद्ध मनोविज्ञान को समझ कर अपनाने एवं प्रयोग करने की आज के तनाव एवं दबाव युक्त समाज में अत्यंत आवश्यकता है क्योंकि यदि हम समझ लें कि सब मन के द्वारा प्रायोजित है तो शायद यह विश्व युद्ध से बुद्ध की तरफ चल कर एक पूर्ण स्वस्थ विश्व की स्थापना कर सके।

सोवा-रिग्पा
के. उ..ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं. - 9452922660

बुद्ध : प्राचीन और वर्तमान दोनों के लिए प्रासांगिक

—डॉ० रवि रंजन द्विवेदी—

आज विश्व समाज आतंकवाद, साम्राज्यवाद, भ्रष्टाचार, महँगाई, मार-काट, लूट-खसोट, ईर्ष्या, द्वेष के दौर से गुजर रहा है। इस विषम परिस्थिति में बुद्ध के विचार ही एकमात्र आशा की किरण बन सकती है। महात्मा बुद्ध के उपदेशों को विश्व समुदाय आत्मसात करे तो बुद्ध वापस लौट सकते हैं और वे प्राचीन की तरह ही वर्तमान को भी समतामूलक, गैर विषमता पर आधारित समाज बनाने में सहायक हो सकते हैं। आधुनिक युग में प्राचीन से अपेक्षाएँ करना और इसे निरन्तर आदर की हासिए से देखना हमारे प्राचीन की श्रेष्ठता का परिचायक है। पर वर्तमान में हम पीछे मुड़कर नहीं देखना चाहते हैं। आज समूचा विश्व जीवन संघर्षमय हो चला है। साम्राज्यवाद की घृणित परिणति, शस्त्रों की होड़, अलगाव, आतंकवाद तथा मानव के हिंसक प्रवृत्ति ने मानव को पशुओं की श्रेणी में ला खड़ा किया है। विश्व के किसी भी कोने में दृष्टि फेरे जाये तो संघर्ष और हिंसा का विषाक्त वातावरण ही मिलेगा। अशान्ति के इस दौर में अन्ततः मानव को शान्ति की खोज की ओर अग्रसर होना पड़ेगा, तब प्राचीन के बुद्ध की ओर देखना मनुष्य की बाध्यता हो जायेगी। विश्व में शान्ति और अहिंसा का वातावरण उत्पन्न करना ही होगा क्योंकि अहिंसा के बिना शान्ति की और शान्ति के बिना अहिंसा की कल्पना नहीं की जा सकती है। हम विश्व में व्याप्त हिंसा के समन के लिए युद्ध और शस्त्रों का सहारा लेते हैं। सर्वधा संकल्प के शान्ति के लिए किया जाने वाला कोई भी प्रयास सफल नहीं हो सकता। विश्व में चतुर्दिक व्याप्त अन्तंक अशान्ति और असमानता के लिए चिन्तन प्रणाली में बदलाव करना होगा। और अपने संवेगों पर नियंत्रण को चिन्तन धारा विकसित करना होगा ।

आज से ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ था जिनकी जीवनी ही आदर्श थी और जिनका उपदेश ही विश्व समुदाय को देदीप्यमान कर रहे थे। हमारे लिए यह दुर्भाग्य ही रहा कि हमने जहाँ थोड़ा सा प्रकाश देखा तो उसे सर्वदा के लिए बुझा देने का प्रयत्न कर डाला। हमने महामना बुद्ध पर थूका, महावीर स्वामी को पीटा जिसस क्राइस्ट को पकड़कर घसीटते हुए पहाड़ी पर ले जाकर उलस्टा लटका दिया। सुकरात और मीरा को जहर का प्याला थमा दिया। विडम्बना यह रही कि इन्हीं सब महान व्यक्तियों के तिरोधान के बाद हमने इन्हें ईश्वर मानकर पूजा और इनके उपदेशों को भी ग्रहण किया। महाना बुद्ध ने विश्व में वप्त अशान्ति के लिए निरोध के लिए आठ मार्गों के अतिरिक्त नैतिक आचरण को उन्नत करने के उद्देश्य "दस शील" को विशेष महत्व दिया है। ये दस शील सत्य, अहिंसा, अस्तेय (चोरी न करना), अपरिग्रह (आवश्यकता से अधिक संचय न करना) ब्रह्मचर्य आदि का

पालन करना है। परन्तु नृत्य, सुगन्ध, असमय भोजन कोमल शय्या और कामिनी कंचन का त्याग करना आवश्यक है।

आधुनिक युग में विश्व में व्याप्त अशान्ति, अराजकता, साम्राज्यवाद और स्वार्थपरता के उन्मूलन के लिए बुद्ध के उपदेशों से निश्चय ही लाभदायिक औषधि के रूप में लाभप्रद सिद्ध होंगे। आज हम देखते हैं कि अमेरिका जिसमें लगभग सम्पूर्ण विश्व को ऋण देकर प्रभाव और दबाव लाद रहा है। अमेरिका को इस आर्थिक साम्राज्यादी नीति से उसे स्वार्थपरक बना दिया है। जबकि उसे बुद्ध के सिद्धान्त अपरिग्रह चलने की आवश्यकता है। इसी प्रकार अमेरिका ने ईराक पर जैविक हथियार के बहाने आक्रमण कर पश्चिम एशिया में घुसपैठ किया एवं पेट्रोलियम पदार्थों पर कब्जे के लिए निर्णायक युद्ध किया। जिससे इराक में अतुल धन जन की हानि हुई। अमेरिका इससे पहले 1945 ई० में जापान के हिरोशीमा, नागासाकी पर बम गिरा कर मानवता का नुकसान किया था। ऐसी स्थिति में अमेरिका के बुद्ध के "अहिंसा परमो धर्मः" के सिद्धान्त के अनुपालन की आवश्यकता है। अमेरिका को यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि वह स्वयं कभी साम्राज्य इंग्लैंड का उपनिवेश था। जिसके विरोध में उसे स्वतंत्रता संग्राम करना पड़ा था। जिसके फलस्वरूप वह प्रतिवर्ष 4 जुलाई को "स्वतंत्रता दिवस" मनाता है।

आज तक इतिहास में सर्वाधिक समय से चले आ रहे कश्मीर मुद्दों पर पाकिस्तान को यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत का विभाजन हुआ था न कि पाकिस्तान का। हमने पाकिस्तान को पाकिस्तान दिया है न कि लिया है। पाकिस्तान हिंसक गतिविधियों को जन्म देकर मानवता को कलंकित कर रहा है। अतः आज पाकिस्तान को बुद्ध के "अष्टांगिक मार्ग" दसशील के साथ नैतिक आचरण की आवश्यकता है। अब तक इतिहास में साम्राज्यवादी नीति का शिकार चीन रहा है। रूस, इंग्लैंड, जर्मनी, इटली, सबने चीन से अपना-अपना हिस्सा माँगा। विश्व इतिहास से इसे "चीनी तरबूज" का बँटवारा कहा था। चीन बंदरबाँट के नाम से जाना जाता है। परन्तु आज वही चीन भारत के साथ साम्राज्यवाद का घिनौना खेल-खेल रहा है। अतः पूरे विश्व को बुद्ध के कर्मवाद सिद्धान्त पर चलने की आवश्यकता है।

महामना बुद्ध चाहते थे कि प्रत्येक मनुष्य निर्वाण प्राप्त करे। निर्वाण शब्द का अर्थ तृष्णा का बुझ जाना। बुद्ध ने विश्व जीवन के विभिन्न कलेशों को देखा और परखा समुमय मानव जीवन के लिए हर पहलू पर विचार उसके मूल कारण तक पहुँचाना और समाधान निकालना उनका लक्ष्य था। उस लक्ष्य को पाने और स्पष्ट करने में किसी हद तक जा सकते थे। उनकी खोज मौलिक है। जो मानव जीवन पर सीधा असर पड़ता है। इसलिए वे महान अनुवेषक है और समाज स्रष्ठा भी। वे व्यर्थ के पचड़ों में अपने को नहीं उलझाते बल्कि उलझी हुई बातों

को सहज रूप से सुलझा देते। जैसा कि चिकित्सक का प्रधान लक्ष्य होता है कि रोगी का रोग दूर करना। वह सिर्फ उसी पर दतचित होकर विचार करता है। प्राण पण में प्रयास करता है। रोगी को रोग दूर हो। बुद्ध भी एक चिकित्सक की भाँति मानव में वप्त रोग निवारण करते थे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ब्रह्मजाल सूत्र- पृ० 46
2. बुद्ध चर्या- पंडित राहुल सांस्कृत्यायन- 5 से आगे
3. मिलिन्दपञ्ह- पृ० 165
4. चत्तारि आर्यागी सच्चानि- डॉ0 बृजमोहन पाण्डेय नलिन पृ० 10 से आगे
5. योग सूत्र- अध्याय 4 पृ0 15
6. मज्झिम निकाय- पृ0 51
7. धम्मपद, गाथा, 345 एवं 347
8. मज्झिम निकाय, पृ0 1-51
9. बौद्ध धर्म दर्शन, दिग्दर्शन- पंडित राज्ञठ सांस्कृत्यायन (बुद्धधर्म के तीन मौलिक सिद्धान्त- 1 सर्वमनित्यम्, 2 सर्वमनात्यम्, 3 निर्वाणं शान्तम्)
10. अष्टांगिक मंगो, डॉ0 ब्रहमोहन पाण्डेय नलिन
11. बुद्ध की चितंनधारा - कल और आज, डॉ० मुन्द्रिका प्रसाद नायक, पृ० 41-95

अतिथि प्राध्यापक (पालि)
के.उ.ति.शि.सं.,सारनाथ, वाराणसी
मो.नं. - 7839369391

धर्म की स्थिति

—दोरजे कलज़ंग—

वर्तमान समय में व्यक्ति के स्वार्थ और अत्यधिक भौतिक इच्छाओं के चलते संसार भयंकर परिस्थितियों से गुजर रहा है, मानव जाति के सम्मुख विनाश का खतरा उपस्थित है। मेरी दृष्टि में इसका कारण यह है कि है- आज दुनिया के विकसित राष्ट्रों के कर्णधार विश्व में शांति स्थापित करने हेतु एक से एक अत्याधुनिक अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण को आवश्यक समझते हैं और गरीब से गरीब देश भी अपनी जनता की दैनिक आवश्यकता रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य आदि पर ध्यान दिए बिना विकसित राष्ट्रों के जो बेकार पुराने पड़े हथियार हैं या उन विकसित राष्ट्रों की वर्षों पुरानी पड़ी टेक्नोलॉजी का अपने देश में विकास हेतु धन खर्च करके अथवा उसे एकत्रित कर पुनः अपने से कमजोर राष्ट्रों पर दबदबा बनाना चाहते हैं। इसमें भौतिक साम्राज्यवादी शक्ति से संपन्न राष्ट्र जिनके पास ठोस आध्यात्मिक संस्कृति का आधार नहीं है, उन देशों का इस विश्व की स्थिति को अस्थिर एवं अशांत करने में बहुत बड़ा हाथ है। क्या हमने एकांत में बैठकर कभी यह सोचा है या सोचने का प्रयास भी किया है कि मानव जन्म हमें क्यों मिला है ? चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के बाद हमें मानव जीवन मिला है। पर क्या हमारा प्रयास इस उद्देश्य पूर्ति हेतु हो रहा है या हम व्यर्थ की दुनियादारी में ही उलझे पड़े हैं। हमें समझाना होगा अपने को, कि श्रेष्ठतम मार्ग है बहुत साधारण दुनियादारी रखते हुए मानव जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयास करना। साधारण दुनियादारी का अर्थ यह है कि सबसे समभाव, सामंजस्य रखते हुए जहाँ जरुरत नहीं हो वहाँ व्यर्थ के पचड़े में नहीं पड़ना और जहाँ जरूरत हो वहाँ बहुत संक्षिप्त दुनियादारी रखना।

इस संसार में अनेक प्रकार के लोग हैं जो अपनी जिंदगी अपने सोच के आधार पर जी रहे हैं ! हर कोई जिंदगी की दौड़ में शामिल है ! एक दूसरे को पछाड़ना ही जिंदगी का मक़सद बन गया है ! आज वहीं किसी के पास वक़्त नहीं है ! अपनों के लिए भी नहीं। सब जिंदगी जी रहे हैं, लेकिन कहीं सुकून नहीं, कहीं शान्ति नहीं। परमात्मा के बारे में जानने की बात तो दूर, आज कल तो परमात्मा भी शक के दायरे में है। परमात्मा एक से कई बन गए हैं ! अब तो इस बात पर लड़ाई होती है, कौन सा परमात्मा श्रेष्ठ है, क्योंकि वर्तमान में कुछ तथाकथित गुरु, संत, मौलाना, फादर आदि यह मानकर चलते हैं कि जब तक संपूर्ण विश्व में उनके धर्मों की छत्रछाया स्थापित नहीं हो जाएगी, दुनिया में शांति स्थापित नहीं हो सकती, जिसके चलते धर्म परिवर्तन के लिए प्रलोभन से लेकर शक्ति का प्रयोग करने तथा मौत के घाट उतारने तक को

धर्म की मान्यता देकर विश्व में धर्म के नाम पर हिंसा, अशांति एवं अस्थिरता को ही बढ़ावा दे रहे हैं, जबकि वहीं यह कतई संभव नहीं कि दुनिया की सभी जनता किसी एक की अनुयायी बन जाए। इन सभी धर्मों के संस्थापक जो स्वयं भगवान थे, पैगंबर थे, महात्मा थे, जब वे ऐसा नहीं कर सके तो क्या आज के ये तथाकथित धार्मिक नेता ऐसा कर सकेंगे ?

आज धर्म, मंदिर मस्जिद आदि के भव्य निर्माण और बाह्य कर्मकाण्ड जैसे आडंबरों तक सीमित हो गया है। कोई भी धर्म के तथ्य को जानने का प्रयास नहीं करता। यह वैसा ही है जैसे कोई माली फूल की सुरक्षा के लिए कोमल कपड़े का टुकड़ा लिए फूल के टहनी और पत्ते पर की धूल साफ करता रहे और उसकी जड़ जो पानी और खाद के अभाव में सूखती जा रही है, उसकी और ध्यान तक ना दे, तो क्या उस फूल की सुरक्षा हो सकती है ? ऐसे ही आज के तथाकथित आध्यात्मिक लोगों का भी व्यवहार है। आज के स्वार्थ भरे युग में जहां सत्य और झूठ, सही और गलत का कोई भी व्यक्ति विभेद करना नहीं चाहता, वहीं मात्र अपने मत और अपने को सही मानता है। जो अन्यों से द्वेष, ईर्ष्या एवं प्रतिस्पर्धा आदि विकारों से ग्रस्त है। यहाँ पर एक कहावत बहुत सटीक बैठती है "कुयें के मेंढक" कुयें के मेंढक को नदी और महासागर की भव्यता का पता ही नहीं चलता और वह तालाब को ही सब कुछ मान बैठता है। हमने भी दुनियादारी और सांसारिक सुख के कुयें को ही सब कुछ मान लिया है। हम अभी भी "भक्तिरूपी नदी" जिसका विलय "प्रभुरूपी महासागर" में होता है, उससे अनभिज्ञ हैं। इन पंक्तियों को मेंने किसी के मुँह से सुना था जो मनुष्य जीवन के उद्देश्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं-

इस तरह न कमाओ कि पाप हो जाये
इस तरह न खर्च करो कि क़र्ज़ हो जाये
इस तरह न खाओ कि मर्ज़ हो जाये
इस तरह न बोलो कि क्लेश हो जाये
इस तरह न चलो की देर हो जाये
इस तरह न सोचो कि चिंता हो जाये।

लेकिन वर्तमान समय में मनुष्य इसके विपरीत कार्य करता हुआ नज़र आने लगता है।

वैसे मनुष्य को खाने के लिए दो वक़्त की रोटी तन के लिए जरूरी कपडे और रहने के लिए एक मकान इसकी ही न्यूनतम आवश्यकता होनी चाहिए और जिनको यह नसीब नहीं वे मदद के तलबगार हैं और जिनके पास इससे ज्यादा है, उन्हें मदद करनी चाहिए और यदि मनुष्य के जीवन का उद्देश्य रोटी के लिए ही जीना है तो मार्क्स, लैनिन, स्टालिन के पास

रोटियों की कमी नही थी, तब वे रोटी को अलग करके आदर्शों के लिए क्यों जिए ? इसीलिए हमें सब से पहले एक अच्छा इंसान बनना अत्यंत आवश्यक है। मेरे ख्याल से इंसान को नमक की तरह होना चाहिए, जो खाने में रहता है तो दिखाई नहीं देता और अगर न हो तो उसकी कमी महसूस होती है और वैसे भी जब मनुष्य पैदा होते हैं तो रोते हुए आते हैं और जब मृत्यु आए तो फिर से रोते हुए जाना चाहते हैं कि नहीं ये आपके द्वारा इस जन्म में किए गए कार्यों पर निर्भर करता है, अगर आपने अपने जीवन को पूरी तरह से मानव कल्याण के लिए समर्पित किया था तो आप मृत्यु शय्या पर होने पर भी खुशी-खुशी जाने लगेंगे और अगर आपने अपने इस जीवन को घृणा पूर्वक जिया है, कभी दूसरों की मदद और भलाई नहीं की तो आप फिर से रोते हुए जाएंगे, जिस प्रकार रोते हुए आए थे। मनुष्य की जिंदगी का अर्थ तब पूरा होगा जब वह किसी और के काम आए, इस कार्य में आपके समक्ष अनेक बाधाएं आयेंगी। लेकिन लगातार कोशिश ही सफलता लाती है। धीरे-धीरे बहती हुई एक धारा पत्थर में छेद कर सकती है, इसलिए निरंतर प्रयास होना चाहिए और अगर किसी मक़सद के लिए खड़े हो तो पेड़ की तरह खड़े रहो और गिरना है तो गिरो बीज की तरह ताकि दोबारा उग सको उस मक़सद को पूरा करने के लिए, क्योंकि मेरा मानना है कि गिरने से हार नहीं होती, हार तब होती है जब और कोशिश ही करना बंद कर दें। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि मानव जीवन का एकमात्र उद्देश्य आत्म-साक्षात्कार करना है।

अतः मैं नहीं समझता कि मेरी इस व्याख्या से किसी का हित होगा किन्तु इन आध्यात्मिक विचारों से कम से कम मैं अपना योगदान और कर्तव्य तो समझता ही हूँ।

आचार्य, द्वितीय वर्ष
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी

पालि : बुद्धवचन की भाषा

—दिनेश कुमारी—

भगवान् बुद्ध का अद्वितीय कदम सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों को दुःख से छुटकारा दिलाने के लिए उठा था और बोधि की प्राप्ति से लेकर महापरिनिर्वाण पर्यन्त 45 वर्ष तक वे अपने श्रेष्ठ मार्ग का उपदेश लोगों को देते रहे। उनके ये उपदेश मौखिक ही होते थे, जिन्हें बहुश्रुत अनुयायी धारण कर लेते थे। भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् पथ प्रदर्शक के रूप में इन वचनों के संग्रह की आवश्यकता हुई और त्रिपिटक के रूप में ये संगृहीत हुए। त्रिपिटक का अर्थ है तीन पिटारियाँ ये हैं- सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक।

भारतीय भाषाओं में केवल पालि भाषा ही एकमात्र भाषा है जिसमें भगवान् बुद्ध के प्राचीनतम उपदेश का संकलन किया गया है। यह संकलन ऐतिहासिक तौर पर सबसे प्राचीन भी है और सम्पूर्ण भी। इन उपदेशों के संकलन को हम थेरवाद सम्प्रदाय के पालि-तिपिटक नाम से जानते हैं। हालांकि पालि भाषा के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने प्रश्न उठाये हैं। 'पालि' सम्भवतः पाठ का भी नाम है। शायद इसी कारण से महावग्ग-पालि, उदान-पालि, कथावत्थु-पालि आदि शीर्षक प्राप्त होते हैं। इस बात में कोई मतभेद नहीं है कि भाषा में 'पालि' संज्ञा का प्रयोग अर्वाचीन ही है। बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं में बुद्ध की भाषा मागधी मानी है-

सा मागधी मूलभासा नरा यायादिकम्पिका।
ब्रह्मातो चस्सुतालापा सम्बुद्धा चापि भासरे॥

अर्थात् वह मागधी प्रथम कल्प के मनुष्यों, ब्रह्माओं तथा अश्रुत वचन वाले शिशुओं की मूलभाषा है तथा बुद्धों ने भी इसी में व्याख्यान दिया है। आचार्य बुद्धघोष के समय से लेकर वर्तमान युग तक मागधी नाम ही प्रचलित हुई है। इस प्रकार भाषा के अर्थ में हम जिसे पालि कहते हैं, उसे प्राचीन काल से ही लोग मागधी कहते आये हैं। यहाँ तक कि इसी युग में सिंहलद्वीप के महाथेर सुमङ्गल ने 'बालावतार' पर अपनी टीका लिखते हुए इसे 'पालि' न कहकर मागधी कहा है।

इस सम्बन्ध में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कुछ विवाद भी चला। जब यूरोपीय विद्वानों ने इस भाषा के व्याकरण तथा शब्दकोश आदि को पालि-व्याकरण तथा पालि-शब्दकोश कहा तो इस नामकरण का कुछ लोगों ने खण्डन भी किया। 'प्रोफेसर फरखाम्मेर' कहा था- तिपिटक की पालि मगध भाषा के माध्यम से लिखी जाती थी और इसका व्याख्यान किसी भी भाषा द्वारा हो सकता है। इस प्रकार यह केवल मूल बुद्धवचन अथवा तिपिटक का

व्याकरण अथवा कोश होगा, अनुपिटक साहित्य का नहीं। अतः इनके मतानुसार पालि शब्द का प्रयोग भाषा के अर्थ में करना अनुपयुक्त है।

लेकिन प्रोफेसर ओ. फ्रान्क फुर्तेर ने 'पालि करामलक' को प्रस्तुत करते हुए तथा उक्त मत की आलोचना करते हुए मागधी के स्थान पर पालि नाम का भी प्रयोग किया और इस सम्बन्ध में प्रतिपत्ति यह प्रस्तुत की कि यदि हम इस भाषा विशेष के लिए मागधी शब्द का प्रयोग करते हैं तो इसे शिलालेखों तथा साहित्य में प्राप्त मागधी भाषा के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न हो जायेगा।

आचार्य सुभूति ने 'अभिधानप्पदीपिका' को पालि-कोश की संज्ञा प्रदान की थी तथा 'नाममाला' को पालि मागधी की अपेक्षा पालि नाम ही अन्त में विजयी हुआ और इसी का विश्व में प्रचार हुआ।

अट्ठकथाओं में पालि शब्द का प्रयोग आचार्य बुद्धघोष ने बुद्धवचन या मूल तिपिटक के अर्थ में अथवा इसके पाठ के अर्थ में किया है। बुद्धघोष के अतिरिक्त 'दीपवंस' तथा 'महावंस' में भी पालि शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है। लेकिन चूलवंस तथा सद्धम्मसङ्गह आदि में भी पालि शब्द का प्रयोग बुद्धवचन अथवा मूल तिपिटक से अट्ठकथा की भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए ही हुआ है-

पालिमत्तं इधानीतं नत्थि अट्ठकथा इध।

पालि शब्द या धातु से बना है। 'पा' का अर्थ है, 'रक्षा करना' अर्थात् बुद्ध के वचनों का रक्षा करना या पालन करना।

प्राकृत भाषा के वैयाकरणों द्वारा जिस मागधी का विवेचन किया गया है और जो हमें बाद के संस्कृत के नाटकों में प्राप्त है, वह मागधी तो पालि के बहुत बाद की साहित्यिक भाषा है। पर सारनाथ, रामपुरवा आदि स्थानों में प्राप्त अशोक के अभिलेखों की भाषा तथा मौर्यकाल के और प्राचीन अभिलेखों की भाषा तो निःसन्देह प्राचीन मागधी ही है और पालि से तुलना करने पर इसकी दोनों से ही भिन्नता है, अर्थात् उत्तरकालीन मागधी तथा अशोककालीन मागधी दोनों से ही पालि की मौलिक भिन्नताएँ हैं। मागधी में संस्कृत की श, ष, स ये तीनों ऊष्म ध्वनियाँ 'श' में परिगत हो गई है, किन्तु इनके स्थान पर पालि में केवल दन्त्य 'स' ही प्राप्त होता है, मागधी में केवल (ल) ध्वनि है। किन्तु पालि में र् तथा ल् दोनों ध्वनियाँ हैं। इस प्रकार इन भिन्नताओं को देखकर विद्वानों ने पालि को मागधी नहीं माना है और इस पर अपने-अपने विचार प्रकट किए हैं।

पालि शब्द की व्युत्पत्ति कई विद्वानों के मतानुसार निम्नलिखित है- (1) महामहोपाध्याय विधु-शेखर भट्टाचार्य ने पालि शब्द का व्युत्पत्ति पङ्क्ति शब्द से दी है और

इसका क्रम बताया गया है- पङ्क्ति > पन्ति > पत्ति > पट्टि > पल्लि > पालि । (2) भिक्षु सिद्धार्थ के अनुसार पालि शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के पाठ शब्द से निकला है । पाठ > पाळ > पाल > पालि । (3) मैक्स बेसलर के अनुसार पालि शब्द की व्युत्पत्ति पाटलिपुत्र से मानी गई है । ग्रीक में पाटलिपुत्र को पालिब्रोथ लिखा गया है । इसका क्रम पाटलिपुत्र > पाटलिब्रोथ > पाटलिब्रुथ > पाटलि > पाडलि > पालि । (4) कुछ विद्वान् ने पल्लि शब्द से शब्द से पालि की व्युत्पत्ति दी है । पल्लि का अर्थ ग्राम (गाँव) होता है । इन लोगों के अनुसार संस्कृत नगरों की भाषा थी और पालि गाँव की भाषा । (5) भिक्षु जगदीश काश्यप के अनुसार पालि शब्द परियाय से निष्पन्न हुआ है । पर्याय > परियाय > पलियाय > पालि ।

पालि- पा रक्खणे ळिः पाति रक्खती ति पाळि; पाली ति एकच्चे । तन्ति, बुद्धवचनं, पन्ति पाळि, भगवता वुच्चमानस्स अत्थस्स वोहारस्स च दीपनतो सद्दो येव पाळि नामा ति गण्ठिपदेसु वुत्तं ति अभिधम्मट्ठकथाय लिखितं ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि पालि की व्युत्पत्ति के लिए हमें इधर-उधर नहीं जाना है । यौगिक रूप से इसकी व्युत्पत्ति 'पा' अथवा 'पाल' धातु से है । यह एक प्राचीन शब्द है तथा प्राचीन भारतीय आर्यभाषा एवं मध्य भारतीय आर्यभाषा में समान रूप से इसका व्यवहार अनेक अर्थों में हुआ है । उन्हीं अर्थों में एक अर्थ पंक्ति भी है और पंक्तिबद्ध होने के बाद मूल बुद्धवचन को अट्ठकथाओं से एवं अन्य व्याख्याओं से अलग करने के लिए आचार्यों ने बाद उसके लिए 'पालि' शब्द का प्रयोग करना प्रारम्भ किया । उसके पश्चात् तिपिटक की भाषा के लिए आगे चलकर समस्त-रूप में 'पालिभाषा' पद का व्यवहार होने लगा, जो हमें सासनवंस नामक ग्रन्थ में प्राप्त है और बाद में 'पालि' शब्द स्थविरवादी तिपिटक की भाषा का ही द्योतक हो गया है ।

निष्कर्ष- पालि मध्य भारतीय आर्यभाषा समूह की एक विशेष भाषा है, जिसमें भगवान् बुद्ध ने उपदेश दिया था, ऐसी मान्यता थेरवाद परम्परा के अनुयायी मानते हैं । हालांकि यह पालि भाषा मागधी भाषा के निकटतम है । यहाँ यह ज्ञातव्य है कि यह जैन-मागधी से पृथक् एक भाषा है । जिसका प्रयोग बुद्धवचन के रूप में हुआ । वस्तुतः बौद्ध मागधी का ही नया नाम पालि है ।

शास्त्री, तृतीय वर्ष
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी

बौद्धधर्म पर प्रकाश

—कुंगा जिकतेन—

बौद्धधर्म के विषय में जानने से पहले हमें यह पता होना चाहिए कि बौद्धधर्म क्या है, इसकी परिभाषा क्या है और बौद्धधर्म के संस्थापक कौन हैं और इसकी शस्वाहा कहाँ से हुई है। बौद्धधर्म क्या है। सही मायने में देखा जाए तो धर्म का अर्थ- धारण करना होता है। बौद्धधर्म का परिपूर्ण परिभाषा को ध्यान दें तो बौद्धधर्म यानि जो अपने क्लेश युक्त चित्त को छोड़कर निर्मित और शुद्ध चित्त को धारण करना ही बौद्धधर्म है। बौद्धधर्म के संस्थापक भगवान् बुद्ध थे, जिन्होंने बुद्धत्त्व को प्राप्त करने के बाद प्रथम भारत के अति पवित्र स्थल सारनाथ वाराणसी में सबसे पहले धर्म का प्रवचन दिया। जिसमें पाँच वर्गीय भिक्षु थे। उनमें से सबसे पहले आचार्य कौण्डिन्य को धर्मदेशना अर्थात् चार आर्यसत्य के विषय में प्रवचन दिया, जिसमें चार आर्यसत्य- पहला दुःख आर्यसत्य, दूसरा दुःखसमुदय आर्यसत्य, तीसरा दुःखनिरोध समुदय आर्यसत्य, चौथा दुःखनिरोधमार्ग आर्यसत्य। बौद्धधर्म के आगे- इसमें दो भाग हैं। महायान और हीनयान अथवा थेरवाद। महायान में भी दो भाग हैं। सूत्रयान और वज्रयान महायान और थेरवाद का मूल अंतर तो चित्त की उत्पत्ति ही है। थेरवाद के भी दो भाग हैं वैभाषिक एवं सौत्रान्तिक। बौद्धधर्म के सम्पूर्ण ग्रन्थ त्रिपिटक में शामिल किये गये त्रिपिटक- अभिधम्मपिटक, विनयपिटक, सूत्रपिटक। बौद्धधर्म के महत्व- संसार में बौद्धधर्म क्यों चाहिए, इस पर बौद्ध कहते हैं- 'अप्प दीपो भव' यानि खुद ही स्वयं के मालिक हैं, कोई आपकी मदद नहीं कर सकता। जब तक आप खुद अपने अंदर दीप नहीं जलायेंगे। यानि बौद्धधर्म का पला आर्यसत्य- दुःख आर्यसत्य- जो कि भगवान् बुद्ध कहते हैं कि इस संसार में जो कोई भी सब दुःखी हैं। पूरा जगत दुःख है। सर्व-दुःख दुःखम्। वैसे जीवन में बहुत प्रकार के दुःख हैं। रोग, बुढ़ापा, मृत्यु, चिन्ता, असंतोष इत्यादि। परन्तु पूर्ण रूप से दुःख को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। वे हैं- आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। परन्तु बहुत से लोग चाहे धर्म विद्वान हों या अन्य किसी भी प्रकार के जन हों। वे कहते हैं- संसार में सब दुःख हैं कहना पूर्णतः भूल है क्योंकि कुछ सुख की अनुभूतियाँ भी होती हैं। उनका कथन भी सत्य है। वैसे संसार में बहुत प्रकार के सुख हैं, जैसे यौवन सुख, घरेलू सुख, संगीत सुख, नृत्य सुख इत्यादि। परन्तु बुद्ध न कहा है- जिसको हम सुख समझ रहे हैं असल में वह भी दुःख है। जैसे सुख को भोगने के बाद हमें दुःख होता है, वही यानि सभी क्षणिक सुख-दुःख हैं। वे भी दुःख कारण बनते हैं। गौतम बुद्ध के द्वारा संसार को दुःख बताए जाने पर

उनकी आलोचना भी करते हैं। पर भगवान् बुद्ध ने इसके कारण और उसको समाप्त करने का भी उपदेश दिया है, जिसमें दूसरा सत्य दुःखसमुदय आर्यसत्य है। भगवान् बुद्ध ने कहा दुःख के कारण भी। जिस प्रकार हर चीज के कारण हैं उसी प्रकार दुःख के भी स्रोत हैं। दुःख का मुख्य कारण तृष्णा को बताया। मोह, काया, द्वेष, प्रतीत्यसमुत्पाद के अनुसार प्रत्येक विषय का कुछ न कुछ कारण होता है। जैसे अविद्या के कारण संस्कार उसके उपरान्त वेदना, तृष्णा, जरा, मरण इत्यादि। भगवान् बुद्ध के अनुसार सभी चीज के कारण हैं उसी तरह सब दुःख के कारण भी हैं। उसके बाद तथागत ने कहा- तृतीय आर्यसत्य, दुःख निरोध। भगवान् ने कहा दुःख के कारण को बताया। अगर कारण का अन्त किया जाए तो दुःख का भी अन्त किया जा सकता है। जिस अवस्था में दुःख का अन्त हो उसको दुःख निरोध अवस्था कहेंगे। उसमें मोह, माया आदि सबका नाश किया जा सकता है। उसका पूर्णतः अन्त तो निर्वाण के उपलक्ष्य में होगा। निर्वाण को पालि में निब्बान, संस्कृत में मोक्ष तथा अंग्रेजी भाषा में (इन्लाइमेंट) कहते हैं। जो भी मनुष्य हो वह अगर चाहे तो निर्वाण को प्राप्त कर सकते हैं। इसमें महायान के अनुसार सभी प्राणी निर्वाण को प्राप्त सकते हैं, परन्तु थेरवाद के अनुसार सभी प्राणी को उस लोक के अनुसार नहीं कर सकते हैं।

चतुर्थ आर्यसत्य- तथागत ने कहा दुःख का निरोध है तो दुःख निरोधमार्ग भी। जिस मार्ग का अनुसरण करने पर हम मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं, उसमें मार्ग के नाम- .... । परन्तु महायान और थेरवाद के मार्ग तथा फल में भिन्नताएं भी हैं। चौथे आर्यसत्य में उन्होंने बताया कि निर्वाण के प्राप्त आठ अष्टांगिक मार्ग के अनुसार मार्ग को प्राप्त किया जा सकता है। अष्टांगिक मार्ग (1) सम्यक् दृष्टि (2) सम्यक् संकल्प (3) सम्यक् वाक् (4) सम्यक् कर्मान्त (5) सम्यक् आजीव (6) सम्यक् व्यायाम (7) सम्यक् स्मृति (8) सम्यक् समाधि। अगर कोई भी व्यक्ति इस नाम पर तो उसे अर्हत्व या बुद्धत्व की प्राप्ति हो सकती है।

महायान बौद्धधर्म का सार - महायान बौद्धधर्म का मूल उद्देश्य बोधिचित्त उत्पन्न करना। महायानों का बोधिसत्त्व को प्राप्त करना ही समस्त सत्त्वों के कल्याण मात्र के लिए है। इसके पाँच मार्ग दशभूमि को प्राप्त करने शील, समाधि, प्रज्ञा का परिपूर्ण चेष्टा ही बोधिसत्त्व के बीज व स्रोत हैं।

इस दौर में बौद्धधर्म का महत्त्व - इस युग को कलयुग भी कहा जाता है। इसलिए आजकल हर कोई आजकल मानसिक और शारीरिक दोनों से परेशानी का सामना कर रहा सभी परेशानियों का अंग या मन ही है। जो हमसे बुरे कार्य करवाता है और हमें इस संसार में ढकेलता है। अगर हम अपने मन को शुद्ध और प्रसन्न रखेंगे तो सारे दुःख यूँ ही समाप्त हो

जायेंगे। इसलिए बौद्धधर्म में बताते हैं- शुद्ध मन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि धम्मपद में कहा गया है-

अनवस्सुतापिस्स अनन्वाहतचेतसो।
प्रञ्ञपापपहीनस्स नत्थि जागरतो भयं॥

अर्थात् राग से मुक्त चित्त वाले अकिंकर्तव्यविमूढ़ मन वाले, पुण्य और पाप से अलग जागृत के लिए कोई दुःख नहीं।

अर्थात् बौद्धधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं जो लोगों को बन्धन में जकड़े। यह एक जीवन जीव का सार है। अमर यह हर जगह पहुँच गया तो सुख की ऐसी समृद्धि होगी। अर्थात् बौद्धधर्म का मुख्य उद्देश्य तो लोगों का कल्याण ही है।

॥ भवतु सर्वमङ्गलम्॥

शास्त्री, प्रथम वर्ष
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9219584485

बदले की आग

(कहानी)

—प्रो. बाबूराम त्रिपाठी—

"भाभी, भइया का क्रिया-कर्म नहीं करेंगी क्या ?" पड़ोसी लड़के राहुल ने भरे गले से पूछा।

"करूँगी, पर अभी नहीं।" विभा ने आँचल से आँसू पोछते हुए कहा।

"क्रिया-कर्म की प्रक्रिया तो दाह-संस्कार के बाद ही शुरू कर दी जाती है, बाद में कब करेंगी ?"

"जब लोकई से तुम्हारे भइया की हत्या का बदला ले लूँगी, तब करूँगी।"

"तब तक उनकी आत्मा भटकती रहेगी ?"

"उनकी आत्मा की शान्ति के लिए ही तो मैंने यह प्रण किया है।"

"ठीक है, पर इतना जान लीजिए कि बदले की आग एक-एक करके दोनों पक्षों के लोगों को जलाकर राख कर देती है। पड़ोसी गाँव रूपपुर का दृष्टान्त हमारे सामने है। थोड़ी-सी जमीन को लेकर विवाद हुआ, फिर धीरे-धीरे उसने हिंसा का रूप ले लिया। एक परिवार के तीन लोग मारे गये और दूसरे के दो। आज दोनों परिवारों में पाँच विधवाएँ हैं। इसलिए आप अपने भीतर धधक रही इस बदले की आग को बुझा दीजिए। इसके अलावा लोकई की हत्या करने के बाद भइया लौट भी तो नहीं आयेंगे और फिर उसके परिवार के लोग हाथ पर हाथ रखकर बैठे भी नहीं रहेंगे, उनकी निगाह पर आपका बेटा गुड्डू भी चढ़ सकता है। इसलिए मेरी मानिए, तो अब आप अपने बच्चे के पालने-पोसने और उसकी सुरक्षा पर ध्यान दीजिए, न कि बदला लेने पर।"

"देखो राहुल, अन्याय को चुपचाप सह लेना एक तरह से उसे बढ़ावा देना है। गाँव वाले भले ही लोकई के जुल्म को सहते जा रहे हैं, पर मैं कतई नहीं सहूँगी। भला बताइए, इनकी बहू-बेटियों पर वह और उसके साथी फब्तियाँ कसते हैं और ये लोग कान में तेल डालकर बैठे रहते हैं? यह इन लोगों की नपुंसकता नहीं तो और क्या है? जब तक मैं लोकई के आतंक को जड़ से नहीं उखाड़ फेंकती, तब तक चैन से नहीं रहूँगी।"

विभा के हृदय में बदले की धधकती आग का अनुमान करके राहुल चुप हो गया क्योंकि उस समय उसकी दलीलें विभा के आक्रोश के सामने उसी तरह अस्तित्वहीन होती जा रही थीं, जिस प्रकार गर्म तवे पर पानी की बूँदे।

लोकई ने विभा के पति की हत्या इसलिए की कि वे गंगापुर बाजार में उसके द्वारा वसूली जाने वाली रंगदारी का विरोध करते थे। यहीं तक होता तब भी गनीमत थी, पर एक

दिन शाम को रमाशंकर बाजार के जोखन सुनार, जिसे लोकई ने उसी दिन सुबह रंगदारी न देने पर बुरी तरह से पीटा था, को लिवाकर लोकई के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज करवाने पुलिस स्टेशन भी चले गये। रिपोर्ट तो दर्ज हुई, पर कार्रवाई के नाम पर कुछ नहीं हुआ। कार्रवाई होती भी कैसे, लोकई की पहुँच ऊपर तक जो थी। दूसरे दिन लोकई ने रमाशंकर के यहाँ आकर धमकी दी- "लगता है, अब तुम्हें भी ठिकाने लगाना पड़ेगा।"

धमकी देने के चौथे दिन लोकई की क्रूरता, क्रूरता को भी शर्मिंदा कर गयी। सुबह लगभग आठ बजे रमाशंकर राधा-कृष्ण मन्दिर से दर्शन करके जैसे ही बाहर निकले, पहले से घात लगाकर बैठे लोकई ने ताबड़तोड़ तीन गोलियाँ उनके सीने में उतार दी। गोलियाँ चलते ही भगदड़ मच गयी। गाँव के रामहित बाबा के अलावा सभी लोग वहाँ से फूट लिये। पता चलने पर रमाशंकर की पत्नी विभा घटना-स्थल पर आयी और लगी छाती पीट-पीटकर रोने।

पुलिस फोर्स आने के पहले रामहित बाबा ने मन्दिर के पुजारी से कहा- "लोकई के डर से गाँव वाले भले ही जबान न खोलें, पर मैं पुलिस के सामने यह कहने से बाज नहीं आऊँगा कि यह खून लोकई ने किया है।" न जाने कैसे उनकी यह बात लोकई तक पहुँच गयी। परिणाम यह हुआ कि उसी दिन कॉलेज जाते समय रामहित बाबा की लड़की का लोकई ने अपहरण करवा लिया। फिर तो कौन कहे बयान देने को, रामहित बाबा घर आकर लगे सिर पीट-पीटकर रोने। उनकी लड़की तीन बजे रात को घर आयी। उसके साथ लोकई और उसके साथी, दोनों ने बलात्कार किया था। लोगों को क्या मुँह दिखायें, यह सोचकर वह अपने कमरे में गयी और फाँसी के फन्दे से लटक गयी।

पुलिस आयी, दारोगा ने विभा का बयान लिया और लाश को पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया। दूसरे दिन रामहित बाबा की लड़की की लाश का भी पोस्टमार्टम हुआ, पर लोकई के प्रभाव से पोस्टमार्टम की रिपोर्ट में केवल आत्महत्या दिखायी गयी। इतना ही नहीं, रमाशंकर की हत्या के मामले में कोर्ट ने विभा की गवाही को भी कोई तवज्जह नहीं दी, फलतः सन्देह का लाभ पाकर लोकई बाइज्जत बरी हो गया।

गुण्डे-बदमाशों का भी अपना एक उसूल होता है, गरीबों को वे भी नहीं सताते, पर लोकई का अपना कोई उसूल नहीं है। उसने न जाने कितने गरीबों को झाँसा देकर उनकी जमीनें हड़प ली है। और तो और, गाँव की विधवा जगपत्ती काकी को भी उसने नहीं बख्शा। हुआ यह कि एक दिन वह कागज-पत्तर लेकर जगपत्ती के पास आया और बोला–"काकी अपने गाँव का प्रधान किसी काम का नहीं है, करता-धरता कुछ नहीं, केवल आश्वासन देता है। इन कागजात पर अँगूठे का निशान लगा दो, मैं अधिकारी को घूस-पाती देकर तुम्हारी पेंशन पास करवा दूँगा।" भोली-भाली निरक्षर जगपत्ती ने पेंशन की लालच में अँगूठे का निशान लगा दिया। जब हर जगह निशान लग गये, तो काकी ने गदगद होकर लोकई को

आशीर्वाद दिया–"जुग-जुग जियो बेटा, मुझ जैसी बेसहारा की तुम जो मदद कर रहे हो, इससे तुम्हें बड़ा पुन्य मिलेगा।"

"काकी, फोटो है कि कल खिंचवा दूँ ?" लोकई ने बड़े प्रेम से पूछा।

"है, ले आऊँ ?"

"ले आओ, बिना फोटो का तो कागज-पत्तर आगे बढ़ेगा ही नहीं।"

फोटो लेने के बाद लोकई ने मिठाई का पैकेट जगपत्ती काकी को देकर कहा–"काकी, कल सुबह तुम्हें साहब के सामने हाजिर होना है, क्योंकि वे तुम्हें देखकर फोटो का मिलान करेंगे। जानती तो हो, यह दुनिया बड़ी जालिम है। अपना उल्लू सीधा करने के लिए यदि लोगों को किसी का गला भी काटना पड़े, तो उससे भी वे बाज नहीं आते। ऐसे लोग भगवान से भी नहीं डरते।"

"क्या करोगे बेटा, यह कलजुग है कलजुग। इसमें गुण्डे, बदमाश, बेईमान, धोखेबाज, यही सब तो फल-फूल रहे हैं। अच्छे लोग तो हर तरह से मारे जा रहे हैं। ठीक है बेटा, कल तुम्हारे साथ साहब के पास चलूँगी।"

मिठाई के डिब्बे को देखकर काकी के मुँह में पानी आ गया। इधर वर्षों से उन्हें मिठाई के दर्शन नहीं हुए थे। इस प्रकार बेईमान लोकई जगपत्ती काकी को मिठाई का पैकेट देकर उनकी दो बीघे जमीन का खुद मालिक बन बैठा। वह तो उन्हें तब मालूम हुआ, जब गाँव के किसी आदमी ने उनसे पूछा–"काकी, तुमने अपनी जमीन लोकई के नाम रजिस्ट्री कर दी है क्या ?"

"नहीं तो, मुझे क्या पड़ी है, जो उसके नाम अपनी जमीन रजिस्ट्री करूँ।"

"जाकर देखो, तुम्हारी जमीन में वह ट्रैक्टर चलवा रहा है।"

काकी भागी-भागी अपने खेत के पास गयी और ट्रैक्टर के आगे लेट गयी–"जीते जी तो मैं अपने खेत में ट्रैक्टर नहीं चलाने दूँगी।"

"सामने से हट, नहीं तो ट्रैक्टर के फाल से चिथड़े-चिथड़े करवा दूँगा।" लोकई ने हड़काया।

"यह खेत तुम्हारे बाप का है, जो इसमें ट्रैक्टर चलवा रहे हो ?"

"बाप का है, तभी तो चलवा रहा हूँ। तुमने अँगूठे का निशान लगाकर इसे मेरे नाम कर दी है, इसलिए अब इस जमीन को हमेशा के लिए भूल जाओ।"

"धोखेबाज, पेंशन की लालच देकर तुमने मुझ अनाथ के साथ इतना बड़ा धोखा किया ? मैं यहीं और अभी जान दे दूँगी।"

इसके बाद उस आततायी ने जगपत्ती काकी को घसीटकर खेत के बाहर कर दिया और वह कील्हती-सरापती घर चली आयी। वही दो बीघे जमीन उस बेचारी के जीने का सहारा

थी, आज वह भी उससे छिन गयी। मुसीबत की मारी उस विधवा को विभा अपने घर लिवा लायी और अपने साथ रखकर उसके आँसू पोछती रही। लोकई के डर के कारण गाँव वाले चाहकर भी काकी के प्रति सहानुभूति नहीं जता पाये।

रमाशंकर की मृत्यु के एक साल होने जा रहा था। विभा थोड़ा-बहुत सामान्य हो गयी थी। इसी बीच एक दिन गाँव की महिलाएँ पूजा करने के निमित्त मन्दिर के लिए निकलीं। उन लोगों ने विभा से भी चलने के लिए कहा, पर उसने जो तर्क दिया, उसे सुनकर वे अवाक् रह गयीं–"देवी-देवताओं पर अब मेरा विश्वास नहीं रहा। आये दिन तो मन्दिरों से मूर्तियों की चोरी हो रही है, किसी देवी-देवता ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से किसी चोर को दण्ड दिया ? इसके अलावा पूरा गाँव लोकई के आतंक के साये में घुट-घुटकर जी रहा है, लोगों की बहू-बेटियों की इज्जत दाँव पर लगी हुई है, हमारे इष्टदेव उनकी रक्षा करने आ रहे हैं ? आप लोग जाइए, मैं नहीं जाऊँगी।"

सच में विभा और उसके पति जैसा आस्तिक तो पूरे गाँव में कोई नहीं था, पर विभा के पति की हत्या ने उसकी आस्था को चूर-चूर कर दिया, उसने पूजा-पाठ से अब अपने को विरत कर लिया है। इतना ही नहीं, उसे अपने गाँव के लोगों से भी नफरत हो गयी थी, उसे सबके सब बुजदिल दिखाई दे रहे थे। बात भी सच है, लोगों में जरा-सा भी पुरुषार्थ होता, तो लोग अपनी बहू-बेटियों पर कुदृष्टि डालने वाले उस दुराचारी की आँखें न निकाल लेते ? इतना ही नहीं, उसके पति की हत्या के समय लोग भागकर अपनी बिलों में दुबक गये थे।

समय बड़े से बड़े घाव को भर देता है, बड़ी सी बड़ी दुश्मनी की धार को कुन्द कर देता है। फलतः विभा के अन्दर की बदले की आग भी धीरे-धीरे मन्द होती जा रही थी। रह-रह कर उसका ध्यान राहुल के इस सुझाव पर चला जाता था–'अब आप अपने बच्चे के पालने-पोसने और उसकी सुरक्षा पर ध्यान दीजिए न कि बदला लेने पर।' इसके अलावा वह इस कटु सच को भी नजरअंदाज नहीं कर पा रही थी कि प्रतिशोध की आग कभी नहीं बुझती।

लेकिन होनी को कहाँ कोई टाल पाता है, वह होकर ही रहती है। एक दिन जब विभा अपने बच्चे को स्कूल छोड़कर लौट रही थी, तो रास्ते में लोकई मिल गया। उसने उसे गाली देते हुए कहा– "सुना है, कि मेरी हत्या करने के बाद ही तुम अपने पति का क्रिया-कर्म करोगी ? पति का क्रिया-कर्म करना तो दूर रहा, अब तुम अपने क्रिया-कर्म की सोचो। द्रौपदी की इज्जत तो कृष्ण ने चीर बढ़ाकर बचा ली थी, पर आज तुम्हारी इज्जत बचाने के लिए इस गाँव का एक भी आदमी सामने नहीं आयेगा और यदि किसी ने आने की जुर्रत की भी, तो वह सीधे ऊपर जायेगा।"

"नीच कमीने, मैं अपनी इज्जत बचाने में खुद सक्षम हूँ, तुम जैसे दुःशासन मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। मुझे छूकर तो देखो, तुम्हारी आँखें न निकाल लूँ, तो मेरा नाम विभा नहीं। आज तुम्हारी शामत आ गयी है, जो मुझसे आकर उलझ गये हो।"

इतना सुनते ही लोकई बाज की तरह विभा पर टूट पड़ा और लगा बेरहमी से उसकी साड़ी खींचने। उस बेचारी ने अपनी इज्जत बचाने की बड़ी कोशिश की, पर लोकई की राक्षसी ताकत के सामने उसकी एक न चली। जब वह अर्धनग्न यानि ब्लाउज और पेटीकोट में रह गयी, तो गाँव वालों की आँखें शर्म से झुक गयीं। फिर तो मरता क्या न करता, उसने पास में पड़ी रेत के ढेर से एक मुट्ठी रेत उठाई और लोकई के चेहरे पर फेंक दी। वह लगा आँखें मलने। अवसर का लाभ उठाकर विभा ने नीचे गिरी उसकी चाकू उठायी और उसके पेट में घुसेड़ दी। वह गिरा और कुछ देर बाद ठंडा हो गया। जगपत्ती काकी ने जमीन पर पड़ी विभा की साड़ी उठाकर उसकी ओर बढ़ाया, पर विभा ने पहनने से इन्कार कर दिया– "काकी, जब तक पुलिस नहीं आ जाती, तब तक मैं इसी अवस्था में रहूँगी।"

लगभग आधे घंटे के बाद पुलिस की गाड़ी आयी। दारोगा ने विभा से पूछा– "तो यह खून आपने किया है ?"

"जी।"

"जानती हो, इसकी क्या सजा होगी ?"

"फाँसी या उम्रकैद।"

"क्या मैं हत्या का कारण जान सकता हूँ ?"

"मुझे इस हालत में देखकर भी कारण पूछ रहे हैं ?

"इसके अलावा भी तो कोई कारण होगा ?"

"गत वर्ष इस हरामजादे ने मेरे पति की दिनदहाड़े हत्या की थी, तब से मेरे अन्दर बदले की आग जल रही थी, पर समय ने उस धधकती आग को दबा दिया था। आज तो इसकी शामत आ गयी थी, जो इस कमीने ने उसे कुरेद दिया। इसने सरेआम मुझे नंगी करने की कुचेष्टा की। मुझे अर्धनग्न करके जब इसने मेरे ब्लाउज पर हाथ लगाया, तो अपने बचाव में मुझसे जो बना, उसे किया। दारोगा जी, नारी को अपनी इज्जत बचाने के लिए यदि प्राण भी देना पड़े, तो वह उससे भी बाज नहीं आती। आप तो कुछ दिन पहले इस थाने पर आये हैं, इसलिए इस दुराचारी के क्रूर कर्मों से परिचित नहीं हैं। इसके आतंक के साये में पूरा इलाका घुट-घुटकर जी रहा है। यहाँ तक कि आपके थाने के लिए भी यह सिर-दर्द बना हुआ था।"

"आपके पति की हत्या लोकई ने ही की थी, पुलिस को इसका सुबूत मिला होता, तो आज यह जेल में होता।"

"गाँव वालों में इसका आतंक इतना अधिक रहा है कि इसके खिलाफ किसी ने जबान नहीं खोली जबकि कई लोगों के सामने उनकी हत्या हुई थी। एक सज्जन ने जबान खोलने की हिम्मत की भी, तो बयान देने के पहले उनकी इकलौती जवान बेटी इस राक्षस की हैवानियत की शिकार हो गयी और लोक-लाज के भय से उसने आत्महत्या कर ली। बाप बेचारा पागल होकर घूम रहा है। न हो तो देख लीजिए, पेड़ के नीचे वे सिर पर हाथ रखे हुए बैठे हैं और यह जो आपके पास बूढ़ी काकी खड़ी हैं, इन्हें विधवा पेंशन दिलवाने के बहाने इनसे अँगूठे का निशान लगवाकर इनकी दो बीघे जमीन अपने नाम करवा ली और तब से यह बेचारी दर-दर की ठोकरें खा रही है।"

"ये सारी बातें सच हैं ?" दारोगा जी ने गाँव वालों से पूछा।

"शत-प्रतिशत सच हैं। इस आदमी ने हम लोगों का जीना हराम कर दिया था। किसके ऊपर इसने हाथ नहीं उठाया है ?" मास्टर सनेही राम ने भीगे स्वर में कहा।

"ठीक है, मैं देखता हूँ। विभा जी, आपकी इस अवस्था में फोटो ले ली गयी है, अब आप साड़ी पहन लीजिए, क्योंकि आपको पुलिस स्टेशन चलना है। चूँकि यह हत्या का मामला है, इसलिए हमें कानूनी कार्रवाई तो करनी ही होगी। वहाँ आपका लिखित बयान होगा और हाँ, इन लोगों में से जो लोग गवाही देना चाहें, आपके साथ चल सकते हैं।"

"जब मैं अपना जुर्म स्वीकार कर रही हूँ, तो किसी की गवाही की क्या जरूरत है ?"

लोकई की लाश पोस्टमार्टम के लिए भेज दी गयी और विभा को पुलिस स्टेशन ले जाया गया। वहाँ लोगों ने उसके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया। एक सिपाही ने तो विभा की तारीफ भी की– "जिस काम को हम लोग नहीं कर सके, उसे इस बहादुर महिला ने कर दिखाया। लोकई के आतंक से इस इलाके को इन्होंने हमेशा के लिए निजात दिला दी।"

दूसरे दिन सुबह ग्यारह बजे विभा को कोर्ट में पेश किया गया। जज के सामने उन्होंने अपने जुर्म को स्वीकार करते हुए उनसे अनुरोध किया– "हुजूर, आप मुझे फाँसी की सजा दें या उम्र कैद की, इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। हाँ, आपसे इतना अनुरोध जरूर है कि सजा देने के पहले मुझे पुलिस की देख-रेख में मात्र तीन दिनों की मोहलत दे दें ताकि मैं अपने पति का क्रिया-कर्म कर सकूँ।"

"उनकी हत्या कब और किसने की थी ?" जज साहब ने पूछा।

"पिछले वर्ष लोकई ने ही उन्हें मौत के घाट उतारा था।"

"तो उस समय आपने उनका क्रिया-कर्म क्यों नहीं किया ?"

"क्योंकि, उनका दाह-संस्कार करने के बाद मैंने प्रण किया था कि जब तक इस हत्यारे का काम तमाम नहीं कर दूँगी, तब तक मैं अपने पति का क्रिया-कर्म नहीं करूँगी। लेकिन जैसे-

जैसे समय बीतता गया, मेरे अन्दर जल रही बदले की आग ठंडी होती गयी। फिर तो मेरा ध्यान अपने बेटे के पालने-पोसने में केन्द्रित हो गया। आज तो यह अनायास मुझसे उलझ गया। जज साहब, मुझे अपने किये पर तनिक भी पश्चाताप नहीं है।"

"लेकिन अदालत अभी आपके इस अनुरोध पर विचार नहीं कर सकती, क्योंकि यह हत्या का मामला है।" इतना कहकर जज साहब ने विभा को जेल ले जाने का आदेश दे दिया।

बहस के दिन गाँव के सभी लोग न्यायालय में उपस्थित थे। विभा की तरफ से आकांक्षा जी वकील थीं और दूसरे पक्ष से सरकारी वकील सुरेन्द्र नाथ झा थे। दोनों क्रिमिनल के नामी-गिरामी वकील थे। सबसे पहले दारोगा यशवन्त सिंह ने घटना के सम्बन्ध में अपना बयान दिया और जज साहब के सामने लोकई के क्रूर कर्मों की फाइल पेश कर दी। फाइल देखने के बाद उन्होंने चिन्ता व्यक्त करते हुए यशवन्त सिंह से पूछा– "लोकई एक से एक जघन्य अपराध करता रहा और गंगापुर थाने की पुलिस मूकदर्शी बनी बैठी रही ? क्या कारण है कि उसके खिलाफ कभी कोई कार्रवाई नहीं हुई ?"

"सर, पुलिस कैसे कार्रवाई करती, जब भी उसे हिरासत में लिया गया, तो कभी किसी मंत्री का फोन आ जाता था, तो कभी गृह मंत्रालय से, विवश होकर उसे छोड़ना पड़ता था। कुछ दिन पहले एक तेज तर्रार सब इंसपेक्टर दुर्गा देवी आयी थीं। उन्होंने एक लड़की को छेड़ने और उसके साथ अश्लील हरकतें करने के जुर्म में लोकई को गिरफ्तार करके उसे हवालात में डाल दिया। कुछ ही देर बाद क्षेत्र के विधायक जी का फोन आ गया- 'उसे छोड़ दो, अपना आदमी है।' दुर्गा देवी ने छोड़ तो दिया, पर छोड़ने के पहले उसकी ऐसी धुनाई की कि उसे छठी का दूध याद आ गया। इतना ही नहीं, जिस हाथ से उसने उस लड़की के स्तन को पकड़ा था, उसे भी दुर्गा देवी ने नाकाम कर दिया था। लोकई को गिरफ्तार करने और उसकी पिटाई करने का परिणाम यह हुआ कि तीसरे दिन उस बेचारी को बोरिया-बिस्तर समेटना पड़ा। सर, जब तक पुलिस के अधिकार-क्षेत्र में हमारे अफसर, नेता और मंत्री दखल देते रहेंगे, तब तक पुलिस गुंडे-बदमाशों का कुछ नहीं बिगाड़ सकती। आज सुबह लोकई के दो साथियों को गिरफ्तार करके मैं लॉक-अप में डाल आया हूँ, उन्हें छोड़ देने के लिए हमारे कमिश्नर साहब का दो बार फोन आ चुका है। या तो उन्हें छोड़ूँ या अपना बोरिया-बिस्तर समेटूँ।" यशवन्त सिंह के बयान को सुनकर जज साहब आवाक् रह गये।

इसके बाद सरकारी वकील सुरेन्द्र नाथ ने ऐसी दलीलें दीं कि लोगों को लगा कि अब विभा को सजा होकर रहेगी। गाँव वालों के चेहरे पर मायूसी छा गयी। आकांक्षा ने विधवा जगपत्ती, जिसकी जमीन लोकई ने धोखे से अपने नाम करवा ली थी, उन्हें बुलाने की अनुमति

माँगी, पर जगपत्ती के नाम पर सरकारी वकील ने आपत्ति कर दी–"हुजूर, इस केस से जगपत्ती का कोई लेना-देना नहीं है, इसलिए उन्हें बुलाकर कोर्ट का समय जाया न किया जाय।"

"ठीक है, जगपत्ती का न सही, रामहित का तो है।" कहकर मीनाक्षी देवी ने रामहित को बुलाने की अनुमति माँगी। जज साहब ने रामहित को पेश करने की तुरन्त अनुमति दी। रामहित के बयान के बाद आकांक्षा ने जज साहब के सामने विभा के चीर-हरण के समय का अर्धनग्न फोटो रखा, जिसे देखकर उनकी आँखें भर आयीं। उन्होंने चश्मा उतारकर रूमाल से आँखें पोछते हुए कहा– "ठीक है, फैसला कल सुनाया जायेगा।" इतना कहकर वे उठ गये।

पूर्व प्रमुख, शब्दविद्या संकाय एवं
पूर्व अध्यक्ष, प्राचीन एवं आधुनिक भाषा विभाग
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9598070524

उत्तररामचरितम् नाटक के चित्रदर्शन प्रथम अंक का दाम्पत्य-सन्देश

—प्रो. धर्मदत्त चतुर्वेदी—

कल्पनालोक का कोई भी विजेता कवि या लेखक अपने प्रतिभा कौशल से लोकानुरञ्जन प्रेक्षक समाज के मध्य ऐसा जम जाता है कि पुनः उसे चिरकाल तक कोई भी काव्यस्रष्टा हिला नहीं सकता। इस दृष्टि से संस्कृत साहित्य के अनुपम सुप्रतिष्ठित नाटककार भवभूति के करुणरस प्रधान उत्तररामचरित नाटक की अनदेखी कौन सा सहृदय कर सकता है। यह नाटक सात अंकों में निबद्ध है, वाल्मीकीय रामायण पर आधारित राम का उत्तरचरित निरूपित है। इसमें प्रथम अंक को चित्रदर्शन नाम से जाना जाता है। इस नाटककार का अभूतपूर्व रचना कौशल निश्चित ही प्रेक्षकों को झकझोर देता है। इसमें नाटककार ने चित्रदर्शन के स्थान पर आलेख्य शब्द का प्रयोग किया है। भित्ति या पत्थरों पर जो जीवनचरित उकेरे जाते हैं, उसे आलेख्य शब्द से कहा गया है। जब उट्टंकित अपने ही आदर्श चरित को स्वयं कोई महानायक देखता है तो उसे अत्यन्त सुखद अनुभूति तो होती ही है साथ ही दुःखद वियोग की घटनाओं को देखने से वह विषाद से भी कभी भर जाता है। हर किसी के जीवन में केवल सुख की ही वृष्टि नहीं होती है, कभी-कभी व्यक्ति को दुःखदायी परिस्थितियों का भी सामना करना पड़ता है और अपने अगाध धैर्य व उद्यम से उसे सहना ही पड़ता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी इस तथ्य से परे तब नहीं देखे जाते हैं जब लक्ष्मण एक चित्रकार के द्वारा भित्ति पर उट्टंकित राम के चरित की सूचना देते हैं। भवभूति ने इस आलेख्य की कल्पना कर अपने नाटक की पृष्ठभूमि तैयार कर डाली। लक्ष्मण राम को सूचित करते हैं–

जयति जयत्यार्यः, आर्य तेन चित्रकरेणास्मदुपदिष्टमार्यस्य चरितमस्यां वीथिकायाम-भिलिखितम्, तत्पश्यत्वार्यः। अर्थात् आर्य की जय हो। आर्य, उस चित्रकार ने हमारे द्वारा वर्णित आर्य का चरित इस चित्रभित्ति पर चित्रित कर दिया है, उसे आप देखिये। इसमें वीथी शब्द का प्रयोग पंक्ति, मार्ग, गृह का आँगन इन अर्थों में कोशकारों ने किया है[1]। वैसे सामान्य व्यवहार में गलियारे को वीथी कहा जाता है। राम ने इस चित्रभित्ति को गर्भिणी सीता के मनोविनोद के लिये उपयुक्त बताया।

राम लक्ष्मण से पूछते हैं इस भित्तिचित्र में चरित्र किस सीमा तक निबद्ध है? लक्ष्मण – आर्या सीता की अग्निशुद्धि तक का वृत्तान्त वर्णित है। राम ने कहा– शान्तं पापम् – पाप शान्त

1. अमरकोश 2.4.4 वीथी वर्त्मनि पङ्क्तौ च गृहाङ्गे नाट्यरूपके।

हो अर्थात् मत बोलो। जब अशुभ वचनों का कथन किया जाता है तब उसे शान्त करने की बात कर मना कर दिया जाता है। राम लक्ष्मण के सामने सीता की पवित्रता को सूचित कर कहते हैं–

उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः।
तीर्थोदकञ्च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हति।।[1]

राम का यह सीता की पवित्रता का वचन नारियों के चरित्र को सुदृढ़ बनाता है। जो वस्तु उत्पत्ति से ही पवित्र हो तब उसकी पवित्रता के लिए प्रमाण की क्या आवश्यकता है? तीर्थ का जल तथा अग्नि ये दोनों अपनी पवित्रता को साबित करने के लिए किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं करते हैं। सीता तो जन्म से ही पवित्र है। उसकी पवित्रता पर सन्देह करना व्यर्थ है। भारतीय संस्कृति में नारी पातिव्रत्य धर्म से सुशोभित देखी जाती है। इसमें स्वेच्छाचारिणी मनचलन नारियों का कोई स्थान नहीं है। इसी तरह जिस अग्निकुण्ड में देवताओं के नाम से आहुति दी जाती है उस अग्नि की शुद्धि तथा तीर्थोदक भी सन्देह का स्थान नहीं है।

इस भित्तिचित्र में वर्णित सीता की अग्निशुद्धि विषयक घटना को देखकर सीता कहीं विक्षुब्ध न हो जाय, इसीलिए राम कहते हैं – देवि, देवयजनसम्भवे प्रसीद, एष ते जीवितावधिः प्रवादः– अर्थात् देवताओं के यज्ञ से उत्पन्न हे सीते, यह लोकापवाद तो आपके जीवनपर्यन्त बना रहेगा, फिर भी राम कहते हैं कि क्या किया जाय, जिनके लिए कुल ही सर्वोच्च धन होता है उन्हें इस लोक को प्रसन्न करना ही पड़ता है। फिर भी सीता के प्रति हमारा अशुभ वचन निश्चित ही उसके प्रति योग्य नहीं है क्योंकि सुगन्धित पुष्प का सिर पर अवस्थान होता है न कि उसे पैरों से रगड़ा जाता है। कितनी महत्त्वपूर्ण उक्ति है आज की विषम परिस्थितियों के प्रसंग में यह। आदर्श मानव प्रजा को प्रसन्न करने में कोई कसर नहीं छोड़ता भले ही उसे अपनी निजी क्षति का सामना करना पड़े। आज स्वार्थी व्यक्ति अनुचित तरीके से वैयक्तिक उपलब्धि में प्रयत्नशील है। वह इतना क्षुद्र है कि उसे लोकमर्यादा तक का ध्यान नहीं रहता। भवभूति इस भित्तिचित्र के माध्यम से कितने बडे आदर्श को सहजता से रखने में सफल पाये जाते हैं। इसे संस्कृत साहित्य का ज्वलन्त उदाहरण ही कहा जा सकता है।

इस चित्रदर्शन अंक में भारतीय संस्कृति का चरम विकास परिलक्षित होता है। क्या अनुपम कवि-कौशल है यह, क्या बेजोड़ भारतीय चित्रशिल्प है।

इस भित्तिचित्र में जृम्भकास्त्रों के रहस्य पर भी नाटककार ने प्रकाश डाला है। जब सीता भित्तिचित्र में प्रदर्शित जृम्भकास्त्रों के विषय में पूंछती है तब राम कहते हैं, ये वही शस्त्र हैं जो

1. उत्तररामचरितम् अंक 1. श्लोक 13

भगवान् कृशाश्व से कौशिक विश्वामित्र को प्राप्त हुए। जिन्होंने ताडका का वध करने के लिए मुझे प्रदान किये। हे सीते, अब ये शस्त्र तुम्हारी सन्तान को प्राप्त होंगे। पुनः इस चित्रदर्शन में मिथिला का वृत्तान्त, जनक-रघु का सम्बन्ध, चारों भाइयों का वैवाहिक कृत्य इत्यादि अनेक कथानकों को इस तरह से दरसाया गया कि सीता को कहना पड गया कि लगता है कि मैं आज भी उसी प्रदेश में हूँ तथा उसी काल में अपने को महसूस कर रही हूँ। जिसे कविकर्म का कौशल ही कहा जा सकता है। एक भित्तिचित्र पर गौर करने से अविद्या, मोह तथा द्वेष को भुलाकर कोई भी व्यक्ति उच्चादर्श की झाँकी से झंकृत होकर अपना चारित्रिक उन्नयन कर सकता है। भित्तिचित्र में ऋषि-महर्षियों को देखकर सीता पुनः सादर प्रणाम करती है। इससे चित्रनिर्माता भी पुण्यभागी बन ही जाता है। भागीरथी गंगा, यमुना तट पर श्याम वर्ण वटवृक्ष, विन्ध्याटवी का दृश्य बतलाते हुए राम सीता को याद दिलाते हैं कि जब तुम वन मार्ग से उत्पन्न थकावट की वजह से जकड़न महसूस कर रही थी तब पतले कमलनाल के समान दुर्बल कोमल भुजा को मेरे वक्षःस्थल पर रखकर तुम निद्रा में डूब गयी थी। यह है पति-पत्नी का आदर्श अद्वय प्रेम, जो एक दूसरे की वेदना को भी याद करने से सुपुष्ट हो जाता है। इस स्थिति में तो कभी भी पति-पत्नी का दृढ बन्धन विच्छिन्न नहीं हो सकता है, यही है नाटककार का कौशल जो सामाजिक पारिवारिक सम्बन्धों को मजबूती प्रदान करता जाता है।

भित्ति-आलेख्य में पञ्चवटी का वर्णन जब आता है तब सीता कहती है हाय यहीं तक आर्यपुत्र का दर्शन रहा। नाटककार किसी भी कथन को कितने कुतूहल से प्रस्तुत करता है कि सीता का राम से वियोग पंचवटी में ही हुआ था, जहाँ शूर्पणखा के अङ्गों को क्षत-विक्षत कर देने से रावण ने सीता का हरण किया था। राम सीता को भयभीत जानकर कहते हैं अरे यह तो भित्तिचित्र है। इसे भवभूति ने इस तरह संस्कृत में कहा – अयि विप्रयोगस्ते चित्रमेतत्। सीता इस कथन पर टिप्पणी करती हुई कहती है जो भी हो, दुर्जन व्यक्ति सुख को छीन ही लेता है। सीता को पञ्चवटी में रावण द्वारा अपने हरण तथा राम से वियोग की घटना याद हो जाने से पुनः वियोग का भय सताने लगता है। कहीं इस घटना को भित्तिचित्र में देखने से पुनः प्रियतम राम से वियोग न हो जाए, इस आशय को भवभूति ने नाटक में आगे जाकर सत्यापित कर ही दिया लोकापवाद जैसे वज्र प्रहार से। नाटककार ने भित्तिचित्र बनवाकर भावी विप्रयोग को आखिर सूचित कर ही दिया।

भित्तिचित्र में कनकमृग के छल से रावण के द्वारा सीता हरण की घटना को याद कराकर लक्ष्मण कहते हैं – कि राक्षसों का वह कनकमृग का छल आज भी व्यथित कर देता है जिसका कि बदला भी लिया जा चुका है। उस शून्य निर्जन पञ्चवटी में आपके (राम के) करुण विभोर चरित से पत्थर भी रोने लगता है तथा वज्र का हृदय आज भी फट जाता है। कितना मार्मिक

चित्रण है यह, जो राम के चरित से करुणा की धारा बहा देता है। इसीलिए कहा गया है– कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते अर्थात् सभी कवियों में करुण रस का भव्य विस्तार भवभूति ही कर पाते हैं।

घाव को उकसाने या कुरेदने पर दर्द दुगुना हो जाता है यह अनुभवसिद्ध है। कभी कभी तो पुराने घाव भी जो भर चुके हैं, वे भी याद आने पर मन को व्यथित कर ही देते हैं। भवभूति का भित्तिचित्त समस्त पूर्व विपत्तियों तथा विषाद को तरोताजा कर देता है । यही तो चित्रशिल्पी का अद्भुत चमत्कार है। जो इतिहास को संरक्षित रखता है, अत्यन्त बारीकी से प्रत्येक घटना को यथावत् उजागर कर देता है । वर्तमान समय में भी सीनरी, भित्तिचित्र, शिलापट्ट, पट्टचित्र आदि का बाजार अपने चरम पर विकसित दिखाई देता है । सीता का वियोग भित्तिचित्र में देखने से राम पुनः असहज हो जाते हैं और वे उस विगत असह्य वेदना से मर्मस्थान में उत्पन्न फोड़े के घाव की तरह पीड़ित हो जाते हैं। भला कोई भी आदर्श व्यक्ति कैसे अपने प्रियजन के पूर्ववियोग से व्यथित नहीं होगा। दूसरे की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझ लेने से ही साहित्य यात्रा प्रतिफलित होती है।

राम तथा सीता का अद्वैत दाम्पत्य, वर्तमान पारिवारिक विषम परिस्थितियों के बीच मील का पत्थर साबित हो सकता है। भारतीय दाम्पत्य सम्बन्ध वर्तमान युग में काटों भरा ताज ही है। पारिवारिक न्यायालय में हजारों दाम्पत्य विच्छेद के मुकदमे चल रहे हैं। इसमें कहीं स्वच्छन्द आचरण, स्वार्थभरी प्रवृत्ति, प्रेम की पारस्परिक न्यूनता, दहेज-लोभ, नारी उत्पीडन इत्यादि अनेक कारणों से पवित्र दाम्पत्य क्षणिक स्थिति में पहुँच गये हैं। राम तथा सीता के पवित्र प्रेम के रस में अद्यतन दम्पति को गोते लगाने चाहिए। उदाहण के तौर पर जैसे राम अपने वनगमन की कठिन परिस्थितियों के बीच सीता की थकान को दूर करते थे। चलते-चलते जब वह असमर्थ हो जाती थी तब राम उनके विश्राम का प्रबन्ध करते थे। राम, लक्ष्मण तथा सीता तीनों चित्रदर्शन के माध्यम से पम्पा सरोवर, गोदावरी, माल्यवान् पर्वत, राक्षसों के साथ संघर्ष आदि के विषय में पुरानी यादों को जगाकर आनन्द उठाते हैं तभी सीता कहती है कि इस चित्रदर्शन के देखने से कुछ मैं विशेष निवेदन करना चाहती हूँ। राम की स्वीकृति पाकर सीता कहती है कि इस चित्रदर्शन से मेरी पुनः उन पर्वतमालाओं में विहार तथा भागीरथी में स्नान की इच्छा हो रही है। राम ने स्वीकृति प्रदान कर लक्ष्मण को सीता के वन-विहार हेतु रथ तैयार करने की आज्ञा प्रदान की। राम पुनः सीता के वनविहार हेतु जाने से उत्पन्न वियोग से पुनः दुःखी हो जाते हैं । सीता राम के वक्ष पर अपना सिर रख गाढी निद्रा में जब डूब जाती है तब एक आदर्श पति राम की अपनी प्रियतमा सीता के विषय में कितनी विशुद्ध स्नेह से सिञ्चित यह उक्ति है –

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलः चन्दनरसः ।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकरसः
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ॥[1]

यह मेरे घर की लक्ष्मी है अर्थात् सौभाग्य फल की देवी है सीता। मेरे नेत्रों में सुख देने वाली अमृत की शलाका है। इसके शरीर का जो स्पर्श है वह चन्दन का रस है। इसकी जो मेरे गले में भुजा है वह तो शीतल चिकना मोतियों का हार है। राम का कथन है कि सीता का क्या प्रिय नहीं है ? अर्थात् सभी वस्तु अत्यन्त प्रिय है, केवल यदि अप्रिय है तो वह है इसका वियोग। एक आदर्श पति की इतनी सुन्दर सात्त्विक विशुद्ध अवधारणा अपनी प्रेयसी पत्नी के प्रति हो तब वैसा दाम्पत्य इस दुनिया में क्या हासिल नहीं कर सकता है ? आज तथाकथित अविश्वसनीयता की भूमि पर सोने वाले दम्पती को अवश्य ही अपने हित में इस आदर्श का पालन करना चाहिए।

इतनी सुन्दर प्रेमभावना को व्यक्त करने के बाद भी राम चित्रदर्शन में उट्टंकित सीता वियोग के दृश्य से व्यथित हैं फिर भी उनका सीता के प्रति अद्वैत प्रेम अधिक प्रगाढ होता चला जाता है। इसे निम्न पद्य के द्वारा देखा जा सकता है –

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्न हार्यो रसः ।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥[2]

कितना सुन्दर हृदयग्राही दाम्पत्य प्रेम इसमें निबद्ध है जिसे समझकर कौन ऐसा होगा जो इसका तिरस्कार करेगा। अर्थात् वह दाम्पत्य सुख-दुःख की सभी अवस्थाओं में एकरूप होता है अर्थात् पत्नी के दुःख-सुख में पति भी उसी के अनुरूप व्यवहार करता है। ऐसे अद्वैत प्रेम में ही हृदय विश्राम लेता है। इसके आनन्द का वृद्धावस्था भी हरण नहीं कर सकती। समय पर सभी संकोच-लज्जा आदि बाधक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं और वह दाम्पत्य विशुद्ध स्नेह में पहुँच जाता है, ऐसा विशुद्ध अद्वैत प्रेम जिस भद्र मनुष्य को बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है वह निश्चित ही सौभाग्यशाली माना जाता है। राम की सीता के प्रति प्रेम दृष्टि कितनी उदात्त तथा प्रगाढ है। अद्यतन दम्पती समाज को अपने जीवन को इस अद्वैत दाम्पत्य से निश्चित ही सिञ्चित करना

---

1. उत्तररामचरितम् 1.38
2. उत्तररामचरितम् 1.39

चाहिए। काव्य की यात्रा उत्तम चरित्र को स्थापित कर एक उच्चस्तरीय उदात्त जीवन के निर्माण के लिए होती है। जहाँ सरस कोमलकान्त पदावली के माध्यम से सहृदय पाठक जनों के लिए उत्कृष्ट सरस आनन्द की वृष्टि की जाती है।

इतने सुन्दर दाम्पत्य की प्रस्तुति में राम के लिए असहनीय प्रिया-वियोग की नाटककार ने प्रस्तुति तो कर दी किन्तु इसके बाद विरह-वर्णन भी आड़े खड़ा कर दिया। इसी बीच दुर्मुख नामक गुप्तचर आ धमकता है और सीता के लोकापवाद की सूचना अपने राजा राम के पास पहुँचा देता है। राम के मुख से तब अहह तीव्रसंवेगो वाग्वज्रः अर्थात् यह वाणी रूपी वज्र बड़ा ही दुःखद वेग वाला है ऐसा कहकर राम मूर्च्छित हो जाते हैं। राम को भित्ति चित्र में नाटककार द्वारा चित्रित सीता वियोग की घटना को देखकर ऐसी आशंका पहले से ही थी। एक भित्तिचित्र इतना बड़ा उपद्रव खड़ा कर देता है, राम तब कहते हैं कि दूसरे के घर में रहना भी कभी कभी धिक्कार योग्य बन जाता है। सीता के लंकाधिपति रावण की लंका में निवास करने के जिस कलंक को मैंने अनेक उपायों से शान्त कर दिया था, वही कलंक भाग्य के प्रतिकूल होने से पुनः पागल कुत्ते के विष के समान चहुँ ओर फैल गया है।

राम मैत्रावरुणि वसिष्ठ गुरु द्वारा उपदिष्ट राजधर्म को ध्यान में रखकर पहले ही वचनबद्ध हो चुके थे –

स्नेहं दयां च सौख्यं च, यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥[1]

अर्थात् प्रजा के अनुरञ्जन के लिए मुझे अपना स्नेह, दया, सुख तथा अपनी प्रिया जानकी का भी परित्याग करना पड़े तो मुझे कोई व्यथा नहीं होगी। राम जानते हैं कि सीता अत्यन्त विशुद्ध है, परीक्षित है, फिर भी प्रजाजन में सीता के चरित्र के प्रति असन्तोष है। इस स्थिति में वे प्रजा सन्तुष्टि के सामने झुक जाते हैं। कभी कभी विपरीत परिस्थितियों में पवित्र बुद्धि को भी पीछे हटना पड़ता है। फिर भी राम सीता परित्याग के विषय में बेहद पश्चात्ताप व तीव्रवेदना का अनुभव करते हैं। एक सत्य न्यायनिष्ठ राजा प्रजा की प्रसन्नता के लिए अपनी प्रिय वस्तु का भी परित्याग करने के लिए तैयार हो जाता है। उस वस्तु में भी जहाँ प्राणों से भी अधिक प्रिय अर्धाङ्गिनी ही क्यों न हो। यही जीवन की विडम्बना है जिसका सामना यहाँ करना ही पड़ता है और नतमस्तक भी होना पड़ जाता है।

प्रतिहारी दुर्मुख के द्वारा प्राप्त सीता के लोकापवाद दुर्वृत्त से राम अपने को पुण्यहीन समझने लगते हैं। क्योंकि सूर्यवंशीय राजाओं द्वारा पवित्र तथा उज्ज्वल चरित्र स्थापित किया

---

1. उत्तररामचरितम् 1.12

गया है । उसके विषय में सीता विषयक जनश्रुति यदि आ जाती है तो निश्चित ही वह राजा अपने को धन्य कैसे समझ सकता है। जो सीता यज्ञभूमि से उत्पन्न हो, जिसने अपने जन्म से वसुन्धरा को भी पवित्र कर दिया हो, जिसने राम के सिवा किसी दूसरे का ध्यान न किया हो, जो जनकनन्दिनी हो, उसके विषय में ऐसी अशुभ जनश्रुति कहाँ से आ पड़ी? राम कहते हैं कभी स्वामी बनकर भी कोई अनाथ हो जाता है। जिस सीता से जगत् पुण्यवान् हो उस सीता के विषय में जगत् की अशुभ धारणाएँ तथा जिससे लोक नाथवान् हो वही आज अनाथ होने जा रहा है, यह कैसी विडम्बना है। राम स्वयं कहते हैं जिस सीता को मैंने कभी हृदय से विलग नहीं किया आज उसी सीता को छद्मविधि से अर्थात् वनविहार के बहाने मैं मृत्यु को उसी प्रकार सौंप रहा हूँ जैसे मांसविक्रेता घर में पाली गई चिड़िया को कसाई के हाथ सौंप देता है। राम का यह उपयुक्त कथन उस परिस्थिति में है जब सीता राम को भुजाओं से पकड़े तथा सिर को भी उन्हीं के ऊपर रख कर सो रही है। राम सोई हुई सीता के प्रति आत्मवचन कहते हैं अब इसका स्पर्श उचित नहीं है क्योंकि मैं इसके प्रति अपूर्व चण्डाल जैसा कर्म करने जा रहा हूँ, इसलिए वे उनका सिर उठाकर अलग कर अपने से पृथक् कर देते हैं तथा अपनी भुजा को छुड़ाते हुए कहते हैं कि सीते, मेरा सहारा अब मत लो, मुझे छोड़ दो, तुमने चन्दन वृक्ष के धोखे से प्राणसंहारक विषवृक्ष का सहारा लिया है। राम कहते हैं मेरे लिए यह संसार असार है, जीवलोक विपरीत हो गया है, मैं शरणहीन हो गया हूँ, अब मेरी गति कहीं नहीं है। मुझ में अब चेतना, दुःख को सहने मात्र तक रह गई है। मैं गर्भ के भार से भारी प्रिय पत्नी को उठाकर पशुओं के ग्रास के जैसे फेंक रहा हूँ। राम की इस मार्मिक वेदना के बीच नाटककार तभी नेपथ्य से लवणासुर राक्षस के द्वारा अयोध्या पर आक्रमण की सूचना देता है। राम प्रजापालन धर्म के अनुरूप प्रिय पत्नी सीता के प्रति यह कहकर चल देते हैं कि हे सीते तुम अब इस स्थिति में कैसे रहोगी? वे वसुन्धरा से सीता की रक्षा की गुहार लगाकर वहाँ से निकल जाते हैं।

इसके बाद राम के द्वारा आदिष्ट दुर्मुख सेवक उपस्थित होकर सीता से कहता है कि देवि, आपके मनोविहार हेतु रथ तैयार है, आप रथ पर विराजमान हों। सीता अपने पास राम को न पाकर व्यथित होकर कहती है अरे धिक्कार है मुझे। जो आर्यपुत्र सोती हुई मुझे छोड़कर कहीं चले गये हैं। मैं बाद में उन पर कोप प्रकट करूँगी। इस तरह सीता रथ पर सवार होकर तपोवन, रघुकुलदेवता तथा आर्यपुत्र पति को प्रणाम कर निकल जाती है। इसी कथानक तक नाटक का चित्रदर्शन (प्रथम) अंक समाप्त हो जाता है।

इस तरह भवभूति ने चित्रदर्शन की एक अच्छी सोची समझी ऐसी कुशल योजना बनाई कि उसी से सीता का वियोग भी प्रस्फुरित हो गया। यों कहा जाय तो एक वियोग ने द्वितीय वियोग को जन्म दे दिया। राम तो सीता के वियोग को चित्रफलक में देख विक्षुब्ध हो ही गये

थे और वियोग के दौरान जो दृश्य उनके वनवास के दौरान घटित हुआ उसे पुनः दोहराने मात्र से पुनः सीता वियोग की आशंका उन्हें भयभीत करने लगी। तभी वे अपना प्रगाढ प्रेम जताकर वियोग को भुलाने का प्रयास करते हैं। लेकिन विधाता को तो सीता का राम से विछोह कराना था। इसीलिए उस वियोग को लेकर सूचनादाता दुर्मुख उपस्थित हो गया। निश्चित ही भवभूति एक सफल नाट्यशिल्पी कहे जा सकते हैं। कोई भी लेखक या नाटककार अपनी अभूतपूर्व चमत्कारी कल्पनाओं के माध्यम से ही समाज को प्रभावित कर सकता है, उनमें से संस्कृत नाटककार भवभूति अन्यतम मनीषी थे।

शब्दविद्यासंकायाध्यक्ष, अध्यक्ष संस्कृत विभाग
तथा प्राच्य एवं आधुनिक भाषा विभाग
के.उ.ति.शि. सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं. - 8853162480

संस्मरण

छात्र और बन्दर

—प्रमोद सिंह—

कहते हैं समय एक अच्छा शिक्षक होता है और जो समय सिखाता है हमें वह आजीवन याद रहता है। परन्तु, समय तो एक सतत चलने वाला चक्र है, वह ज्ञान कैसे दे सकता है? यदि हम इस प्रश्न पर विचार करें तो हम पाते हैं कि समय नहीं परन्तु समय के साथ हमारे बिताए पल, हमारे व्यवहार, हमारा परिश्रम, लोगों के साथ हमारा अनुभव, प्रवृति का समय के साथ परिवर्तन आदि हमें ज्ञान से सज्जित करते हैं।

मेरे विश्वविद्यालयी कार्य जीवन में कई वरिष्ठ कर्मचारियों ने हमसे कहा- "छात्र और बन्दर एक समान होते हैं और जब वह उत्पात मचाने पर आते हैं, तो उन्हें संयम में लाना असंभव सा है।"

परन्तु मेरा अनुभव उक्त वाक्य को नकारता है।

यह अनुभव उस समय का है जब मैं भारतीय नौसेना में कार्यरत था और छुट्टी के दौरान गोवा से वाराणसी आ रहा था। दिसम्बर 2006-07 का समय था। उत्तर भारत में ठंडक ने अपना दस्तक दे दिया था। चूंकि गोवा में सामान्यतया न तो बहुत ठंड पड़ती है और ना ही लू चलती है, अतः मैं भी सामान्य तापमान से ठंड की ओर बढ़ रहा था। हमें वाराणसी के लिए इटारसी से ट्रेन परिवर्तित करना होता था। अतः रात्रि 8.00 बजे इटारसी से वाराणसी के लिए ट्रेन में सवार हुआ। सब सामान्य चल रहा था तथा ट्रेन भी अपनी गति से गंतव्य की ओर बढ़ रही थी। अचानक रात्रि 12 बजे हमारी बोगी में एक हलचल सी मच गई या यह कह लें, भगदड़-सी मच गई। मेरी निंद्रा भी खुल चुकी थी। मैंने पाया बहुत से नवयुवक बोगियों में चढ़ रहे थे तथा जहाँ भी थोड़ा स्थान पा रहे थे वहीं कब्जा जमा कर बैठ रहे थे। उनकी संख्या सैकड़ों में थी, अतः कोई कुछ कर भी नहीं पा रहा था। मैंने पाया ट्रेन जबलपुर स्टेशन पर खड़ी है और बार-बार चेन पुलिंग कर उसे चलने नहीं दिया जा रहा है। किसी तरह ट्रेन जबलपुर से आगे बढ़ी। उन नवयुवकों की बात से यह जानकारी प्राप्त हो रही थी कि शायद कोई सेना भर्ती की रैली जबलपुर में थी और ये नवयुवक उसी के लिए जबलपुर आए थे।

मैंने सोने का बहुत प्रयास किया परन्तु नवयुवकों के शोरगुल ने निद्रा को दूर ही रखा। सुबह 6 बजे तक ट्रेन सतना पहुंच गई तथा कुछ नवयुवक वहाँ उतर गए। मैंने हॉकर से एक अंग्रेजी का अखबार (Times of India) लिया और अपनी सीट पर उसे रख चाय की तलाश

में बाहर आया। जब मैं लौटा तो मैंने पाया कि मेरा समाचार पत्र मेरी सीट पर नहीं है, अपितु वह अलग-अलग पृष्ठ के साथ नवयुवकों के हाथों में दिख रहा है। मुझे बहुत क्रोध आया और मैंने सभी के हाथों से उन पृष्ठों को वापस लेकर उनको व्यवस्थित कर उन नवयुवकों से पूछा कि इस समाचार पत्र को कौन उठाया? वे सब मेरी ओर ध्यान से देखने लगे। कोई जवाब नहीं मिलने पर मैंने पुनः उस प्रश्न को दोहराया। इस पर ऊपर की सीट पर बैठा एक नवयुवक बोला- मैंने उठाया।

मैंने कहा- पेपर का हेडलाइन क्या कहता है?

नवयुवक - ये हेडलाइन क्या होता है?

मैं - मुख पृष्ठ पर जो लिखा है "Ballot seizes Bullet in tray" का क्या मतलब है?

वहाँ एक सन्नाटा छा गया, तभी एक दूसरा नवयुवक (हँसते हए) - लगता है देश से अंग्रेज चले गए, इन्हें यहीं छोड़ गए हैं। (सभी नवयुवक हँसने लगते हैं)

मैंने (गुस्से में) - अंग्रेज नहीं छोड़ गए हैं, मैं भी इसी मिट्टी में पैदा हुआ हूँ। परन्तु, अंग्रेजी भाषा का ज्ञान रखता हूँ और अंग्रेजी जानने से मैं अंग्रेज नहीं हो जाता, कई भाषाओं का ज्ञान आपके व्यक्तित्व को बताता है।

एक दूसरा नवयुवक - लगता है ये भी भर्ती में फेल हो के लौटे हैं, इसीलिए ज्यादा दुःखी हैं। (सभी नवयुवक हँसने लगते हैं)

मैंने कहा- नहीं, भारतीय नौसेना।

दूसरा नवयुवक - हमें भी ज्ञान दीजिए, कैसे पास होंगे इस परीक्षा में।

उक्त वार्तालाप के बाद मेरे और नवयुवकों के बीच लम्बा संवाद चला। उनके बहुत से प्रश्न थे तथा यथाशक्ति मैं उत्तर देने का प्रयास करता रहा। उनके सारे प्रश्न सेना के जीवन, भर्ती प्रक्रिया, विषय, ट्रेनिंग आदि पर ही थे।

बातों के ही क्रम में एक चाय वाला आया। उसने मुझसे चाय के लिये पूछा। मैंने भी नवयुवकों को चाय के लिए आग्रह किया। उनकी सहमति प्राप्त होने पर मैंने चाय वाले से कहा- इन नवयुवकों को चाय दे दें। लगभग दस नवयुवक थे। नवयुवकों ने अधिकार स्वरूप चाय वाले से चाय लिया। मुझे ऐसा लग रहा था जैसे इन नवयुवकों के बड़े भाई या अभिभावक स्वरूप इनके साथ यात्रा कर रहा हूँ। सतना से प्रयागराज तक का सफर कैसे बीता, पता ही नहीं चला। जो यात्रा रातभर कष्टकारी रही, यही यात्रा सुखद अनुभव दे रही थी।

वे सभी नवयुवक प्रयागराज स्टेशन से पहले ही यार्ड में उतर गए, परन्तु जब तक वे मेरी दृष्टि से ओझल नहीं हुए, तब तक हाथों और इशारों से वार्ता होती रही।

उन नवयुवकों का बिछड़ना मुझे दुख दे रहा था, परन्तु यात्राओं की यह विडम्बना रही है कि क्षणिक सम्बन्ध बनते और बिगड़ते रहते हैं। मैंने भी अपनी यात्रा पूरी की और अपने गन्तव्य वाराणसी आ गया। जब मैं भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय) में सेवा दे रहा था, तब वहाँ एक बार छात्र उग्र हो गये थे। उनकी प्रशासन से कुछ माँगें थीं, उस वक्त मेरे कार्यालय के एक बुजुर्ग कर्मचारी ने मुझे कहा- "चलिए कार्यालय बन्द कर दीजिए, छात्र उग्र हो गए हैं और छात्र और बन्दर एकसमान होते हैं। कार्यालय में भी तोड़फोड़ कर सकते हैं। मैं उनकी सलाह मानते हुए कार्यालय छोड़ कर घर चला आया, परन्तु यह वाक्य कि "छात्र और बन्दर एक समान होते हैं" मेरे मस्तिष्क में एक प्रश्न छोड़ गया।

क्या इस देश के इतने प्रतिष्ठित संस्थान के छात्र की तुलना बन्दर से करना उचित है? या छात्रों का स्वभाव बन्दर जैसा हो सकता है?

परन्तु, मेरा वह ट्रेन यात्रा का अनुभव कुछ और ही कह रहा था। वह यह कह रहा था कि नवयुवकों में ऊर्जा तो बन्दर के समान होती है, परन्तु वह बन्दर नहीं है। वह विवेकशील युवा है। उनके ऊर्जा की आवश्यकता इस धरातल को है।

समय के साथ-साथ मेरे कार्यस्थल और कार्य-प्रकार बदलते गए। परन्तु उसके बाद जब कभी भी छात्रों का झुण्ड मेरे पास आया, चाहे उग्र अवस्था में ही क्यों न हो, मैंने सदैव उनसे ही प्रश्न किया कि "यदि आप मेरी जगह होते तो इस अवस्था में क्या करते?"

छात्रों के जवाब कभी-कभी अच्छे तथा कभी-कभी अनुभवहीनता के कारण अव्यावहारिक मिलते थे। जहाँ अच्छे मिले, मैंने उन्हें अपनाने का प्रयास किया तथा जहाँ अव्यावहारिक मिले, छात्रों को समझाया।

इस प्रयास में मैंने अनुभव किया, जो छात्र मेरे पास कभी उग्र अवस्था में आए, दुबारा मिलने पर एक दूसरे को सदैव आदर की दृष्टि से ही मिलते पाया है तथा वह मुझे सदैव अच्छा महसूस होता है। मुझे ऐसा अनुभव उस ट्रेन यात्रा से ही हो चुका था कि यदि नवयुवकों और छात्रों की भावनाओं को जानने के बाद हम उनके साथ एक मनुष्य सा व्यवहार करें, तो वह सदैव एक सुखद अनुभव होता है। अतः मैंने पाया कि छात्र और बन्दर एक समान नहीं होते हैं। ऊर्जा तो समान होती है, परन्तु विवेक छात्रों के ही पास होता है। यही ऊर्जा और विवेक के समागम से छात्र/नवयुवक समाज को एक नई दिशा देने की क्षमता रखते हैं।

सहायक कुलसचिव
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.-9958391967

काशी क्षेत्र के लोक देवी-देवताओं से संबंधित धार्मिक मान्यताओं का अध्ययन : मृण्मूर्तियों के सन्दर्भ में

—डॉ॰ शुचिता शर्मा—

भारतीय संस्कृति में लोक धर्म का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है जो सांस्कृतिक विविधता के अनेक पक्षों को समाहित किये हुए है। ब्राह्मण धर्म से संबंधित देवी-देवताओं की प्रस्तर मूर्तियों अथवा मृण्मूर्तियों के निर्माण में जहाँ एक तरफ शास्त्रीय नियमों का विधान होता था वहीं दूसरी तरफ ऐसा प्रतीत होता है कि लोकधर्म से संबंधित देवी-देवताओं की प्रस्तर मूर्तियों अथवा मृण्मूर्तियों का निर्माण मह (मेले या उत्सव), जत्ता (यात्रा), वतिक (ब्रतिक) एवं रोच (रुचि के अनुसार) आदि से प्रभावित होकर किया जाता था। उपरोक्त लगभग ये सभी शब्द अनेक साहित्यिक ग्रंथों जैसे अथर्ववेद का पापमोचन सूक्त, जैनग्रंथ णायाधम्मकहा एवं रायपसेणीय सुत्त, बौद्ध ग्रंथ सुत्तनिपात के महानिद्देश, भगवद्गीता एवं विष्णु धर्मोत्तर पुराण में विभिन्न लोक देवी-देवताओं के नाम के साथ जुड़ा हुआ पाया गया है। साथ ही मत्स्य पुराण, महाभारत, प्राकृत ग्रंथ अंगविज्जा, वायु पुराण एवं काश्यप संहिता के रेवतीकल्प जैसे ग्रंथों में इनके नाम स्पष्ट रूप से मिलते हैं।

गंगा घाटी क्षेत्र के उत्खनित विभिन्न पुरास्थलों से लोक देवी-देवताओं से संबंधित अनेक प्रकार की मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इन मृण्मूर्तियों में प्रमुख रूप से लज्जा गौरी, यक्ष, नाग-नागी, राक्षस एवं क्रूरमुखी मातृकायें हैं जिनका विवरण साहित्य में भी प्राप्त होता है। प्रस्तुत शोधपत्र में लोकधर्म से संबंधित विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियों के शारीरिक लक्षणों एवं उपरोक्त उल्लेखित विभिन्न साहित्यिक ग्रंथों में प्राप्त इन देवी-देवताओं से संबंधित विभिन्न विवरणों एवं नामों का तुलनात्मक अध्ययन करके इनमें सह-संबंध स्थापित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इनके अनुष्ठानिक महत्व की नृजातीय अध्ययनों के आधार पर विवेचना की गयी है।

लज्जा गौरी/ नग्निका

नग्निका नाम से अभिहित मृण्मूर्तियाँ ऐसी नारी मृण्मूर्तियाँ हैं जो नग्नावस्था में प्रदर्शित होती हैं एवं इनके दोनों हाथ विपरीत दिशाओं में समानान्तर विस्तीर्ण, पैर ऊपर की तरफ उठे हुए एवं उभारयुक्त उरोजों को दर्शाया गया होता है। इनके ग्रीवा, हाथ व कमर को आभूषणों से सज्जित किया गया होता है। इस प्रकार की मृण्मूर्तियों को क्रेमरिश स्टैला (1956: 259-70)

ने सर्वप्रथम अदिति-उत्तान-पाद कहा था। तत्पश्चात इन्हें नारी-उत्तान-हस्त-पाद कहा गया। टी.वी.जी. शाष्त्री (1993: 275) ने इन्हें लज्जा गौरी का नाम दिया।

साहित्यिक स्रोतों में अथर्ववेद (11/ 6/1-23) के पापमोचन सूक्त में प्राप्त विभिन्न वैदिक एवं अवैदिक देवताओं से संबंधित एक सूक्त में "भग" शब्द का उल्लेख हुआ है। मत्स्य पुराण में उल्लेखित दो सौ देवियों की एक सूची में "भगानन्दा एवं भगमालिनि" शब्दों का उल्लेख हुआ है। ये तीनो शब्द सम्भवतः लज्जा गौरी या नारी-उत्तान-हस्त-पाद मृण्मूर्तियों से संबंधित है।

चित्र सं0-1, मातृदेवी: अगियाबीर, मिर्जापुर

द्वितीय शताब्दी ईसवी में निर्मित इस वर्ग से संबंधित एक मृण्मूर्ति झूँसी (इलाहाबाद) से प्राप्त हुई है जिसे सतीश चन्द्र काला नें नग्नबंधक नामक देवी की मूर्ति कहा है (काला 1972: चित्र सं. 92)। ऐसी ही मृण्मूर्तियाँ भीटा (मार्शल 1915: 24-94) एवं अगियाबीर (सिंह एवं सिंह 2004: 40, प्ल्. ।) से एक-एक की संख्या में प्राप्त हुई हैं। ये सभी मृण्मूर्तियाँ नग्नावस्था में प्राप्त हुई हैं जिनका दोनो हाथ एवं पैर ऊपर की तरफ ऊठा हुआ है एवं नितम्ब का भाग भूमि को स्पर्श कर रहा है। इन्हे उत्खननकर्ताओं नें मातृदेवी कहा है (**चित्र संख्या-1**) ।

नागपूजा

लोकधर्म के देवताओं की सूची में नाग-नागी एक महत्वपूर्ण देवी-देवता हैं। इनका समन्वय ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्मों में भी देखने को मिलता है। किन्तु इनके साथ कुछ

विरोधी कथाओं के भी प्रमाण मिलते हैं जिनमें कृष्ण के द्वारा कालिय नाग का निष्कासन, नाग एवं गरूड़ का संघर्ष एवं जनमेजय द्वारा किया गया नाग यज्ञ आदि की कथाएं प्रमुख हैं।

साहित्यिक स्रोतों में अथर्ववेद (11/ 6/1-23) के पापमोचन सूक्त में प्राप्त विभिन्न वैदिक एवं अवैदिक देवताओं से संबंधित सूक्त में **"सर्प"** शब्द का उल्लेख हुआ है। णायाधम्मकहा (1,25, वैद्य संस्करण, 23) में मह अथवा उत्सवों की सूचियाँ मिलती है जिसमें **"नागजत्ता = नागयात्रा"** एवं रायपसेणिय सुत्त में **"नागमह"** का उल्लेख है। भगवद्गीता (गीता अध्याय 10, विभूतियोग) में **"वासुकि सर्प"** एवं **"नाग"** का उल्लेख आया है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में प्राप्त लोकदेवों की सूची में **"नाग देवता"** का उल्लेख हुआ है। प्राकृत भाषा में रचित जैनग्रंथ अंगविज्जा से प्राप्त देवी-देवताओं की सूची में **"नाग एवं नागी"** का उल्लेख हुआ है।

पुरातात्त्विक दृष्टि से **नाग-नागी** की मृण्मूर्तियाँ भी लगभग सम्पूर्ण गंगा घाटी से प्रतिवेदित हुई हैं। वैशाली से पाँच (सिन्हा एण्ड राय 1969: 169, स्ग्ए1,5,6,7,10), सोनपुर से चार (सिन्हा एण्ड वर्मा 1977: 121-122, ग्ग्टस्,9,4,2,8), प्रहलादपुर (नारायण 1968: 46, ग्टप्प्प्,18) एवं राजघाट (नारायण एवं अग्रवाल 1978: 66, प्,8) से एक-एक नाग मृण्मूर्तियाँ प्रतिवेदित हुई हैं। गाजीपुर जनपद के अन्तर्गत गांगी नदी के पुरातात्त्विक सर्वेक्षण के दौरान देवकली पुरास्थल से एक **नागी** की मृण्मूर्ति का शीर्ष भाग प्राप्त हुआ है **(चित्र संख्या-2)**। ऐसी ही एक मृण्मूर्ति खैराडीह जनपद बलिया (जायसवाल 1991: ग्प्प्प्, 61) से प्रतिवेदित हुई है जो देवकली से प्राप्त मृण्मूर्ति से काफी समानता लिये हुए है।

चित्र संख्या-2: नागी, देवकली (जनपद गाजीपुर, उ.प्र.)

गांगेय क्षेत्र में नाग पूजा का संकेत कुषाण काल से दिखाई देता है। वर्तमान समय में भी नागों से संबंधित महत्वपूर्ण पर्व नाग पंचमी है जो उत्तरी एवं पूर्वी भारत में मनायी जाती है। पूर्वी उ.प्र. व बिहार में महिलायें अपने घरों को गोबर से रेखांकित कर दूध एवं भूने दाने के साथ पूजा करती हैं। उत्तर-प्रदेश में परिवार का मुखिया अपने शयनकक्ष की दीवाल में दो भद्दे दिखने वाले साँपों को बनाता है। साँपों के बिल के पास दूध एवं सूखे चावल अथवा धान का लावा रखा जाता है। लोक कथाओं के अनुसार नाग पृथ्वी में गड़े धन की रक्षा करता है। इसी प्रकार देवकली एवं खैराडीह से प्राप्त मानवीय रूप में नागी की मृण्मूर्तियाँ भारतीय समाज में प्रचलित इच्छाधारी नागिन की अवधारणा को प्रमाणित करती हैं।

यक्ष

अथर्ववेद (11/6/1-23) के पापमोचन सूक्त में प्राप्त विभिन्न वैदिक एवं अवैदिक देवताओं से संबंधित एक सूक्त में **"यक्ष"** का उल्लेख हुआ है। णायाधम्मकहा (1,25, वैद्य संस्करण 23) में मह अथवा उत्सवों की सूचियाँ मिलती है जिसमें **"जक्खजत्ता = यक्षयात्रा"** एवं रायपसेणिय सुत्त में **"जक्खमह"** का उल्लेख है। प्राकृत भाषा में रचित जैनग्रंथ अंगविज्जा से प्राप्त देवी-देवताओं की सूची में **"यक्ख**, **यक्ष** एवं **यक्षी"** का उल्लेख हुआ है। काश्यप संहिता के रेवतीकल्प में उल्लेखित देवियों की सूची में **"यक्षी"** का उल्लेख प्राप्त हुआ है।

यक्ष की मृण्मूर्तियाँ लगभग सम्पूर्ण गंगा घाटी से प्रतिवेदित हुई हैं। कुषाणकालीन चरण में कौशाम्बी से दा (**चित्र संख्या-3**), अहिच्छत्र से एक (काला 1972: चित्र सं. 60,61,62), बक्सर, बिहार से एक (कुमार 1995: 151) एवं बुलन्दीबाग (गुप्ता 1965: 215) से भी एक यक्ष मृण्मूर्ति प्रतिवेदित हुई है।

यक्ष का उल्लेख एक तरफ ऋग्वेद, यजुर्वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद्, गृह्य सूत्र, पुराण, जातक, दीघनिकाय, पालि साहित्य के अन्य ग्रंथ, जैन आगम साहित्य, भाष्य एवं चूर्णिकथा आदि में आता है वहीं दूसरी तरफ लोक में वीर-ब्रह्म के रूप में सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रचलित है। अपने देश में धर्म की एक ऐसी परम्परा दृष्टिगत होती है कि पुराने देवी-देवताओं का अस्तित्व भी कालान्तर में किसी न किसी रुप में गतिमान रहता है। लोगों द्वारा उसकी उपासना भी की जाती है। इसी तरह यक्ष पूजा का अस्तित्व भी वर्तमान में दिखाई देता है। यह पूजा डीह, बीर अथवा ब्रह्म के रुप में प्राप्त होती है। एक सर्वेक्षण एवं नृजातीय अध्ययन के उपरान्त यह तथ्य प्रकाश में आया है कि पूर्वी उ0 प्र0 के लगभग सभी गाँवों में एक ग्राम देवता होता है जिसे लोग डीह के नाम से जानते है। किसी-किसी गाँव में ढूहा अथवा स्तूप जैसी संरचना बनाकर एवं कुछ गाँवों में घोड़े अथवा हाथी पर सवार भारी-भरकम शरीर युक्त, हाथ में भाला

अथवा अंकुश लिए डीह/बीर की प्रतिमा भी पूजी जाती है (**चित्र संख्या-4**) । लोगों का विश्वास है कि डीह ग्राम की रक्षा करते हैं। यह मानव एवं पशु दोनों को बीमारियों से बचाते है। यदि यह कुपित होते हैं तो गाँव में कोई न कोई आपदा आ जाती है । गाजीपुर जनपद के सर्वेक्षण के दौरान ग्रामीणों से साक्षात्कार के फलस्वरूप डीह के बारे में बहुत ही रोचक तथ्य ज्ञात हुआ कि गाँवों में जब भेड़िया (स्थानीय भाषा में हुँड़ार) अपने शिकार के लिए निकलता है तो पहले वह ग्राम देवता डीह/बीर से अनुमति लेने के पश्चात ही उस गाँव में प्रवेश करता है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भी प्राचीन यक्ष पूजा के चार मंदिर अथवा थान अभी तक विद्यमान है। वर्तमान में वाराणसी शहर में भी कई मुहल्ले इन वीरों के नाम पर आज भी हैं जैसे लहुराबीर एवं बुल्लाबीर (बुलानाला), जक्खा (यक्षा), लौटूबीर, भोगाबीर, भोजूबीर एवं कर्मनबीर इत्यादि प्रमुख हैं जो प्राचीन यक्ष पूजा से संबंधित हैं।

यक्ष-पूजा के साथ यक्ष प्रश्न- यक्षों से प्रश्न पूछने की प्रथा भी थी जिसे प्रश्न व्याकरण भी कहते थे। वर्तमान समय में भी यक्ष या बीर जब किसी के सिर पर आ जाता है तब तुरन्त चारो तरफ से प्रश्नों की झड़ी लग जाती है। बता तू कौन है ? कहाँ से आया है ? और भी लोग जो-जो चाहते हैं, पूछते हैं। यक्ष-पूजा मान्यता का आवश्यक अंग था। महाभारत में युधिष्ठिर और यक्ष के संवाद के रूप में जो प्रश्नोत्तरी दी हुई है उसमें यक्ष पूछने वाला एवं धर्म के प्रतिनिधि युधिष्ठिर उत्तर देने वाले हैं। लेकिन लोग पूछें, यक्ष उत्तर दे, वह भी एक परम्परा थी जो वैदिक काल तक पायी जाती है। महाभारत की यक्ष प्रश्नोत्तरी लोक साहित्य का अभिन्न अंग थी (अग्रवाल 1964: 140)।

चित्र संख्या-3: यक्ष, कौशाम्बी

चित्र संख्या-4: यक्ष पूजा का वर्तमान स्वरुप डीह/बीर प्रतिमा, हरखूपुर, जनपद गाजीपुर

असुर

प्राचीन भारत में एक तरफ वैदिक देवता जैसे इन्द्र, बृहस्पति, मित्र, वरुण, विष्णु, सविता, पूषा, त्वष्टा, अर्यमा, सोम आदि प्रमुख थे वहीं दूसरी तरफ यक्ष, राक्षस, सर्प, पूण्यजन, भूत इत्यादि देवता भी लोक में प्रचलित थे जिनका संबंध आदिम जातियों से था। भारतीय धार्मिक लोक परम्परा में पूज्यनीय लोक देवताओं में असुर की भी उपासना होती रही है जो सम्भवतः अवैदिक समाज में प्रचलित थी।

साहित्य स्रोतों में अथर्ववेद (11/6/1-23) के पापमोचन सूक्त में प्राप्त विभिन्न वैदिक एवं अवैदिक देवताओं से संबंधित सूक्त में **"रक्षस, भूत एवं भूतपति"** शब्द का उल्लेख हुआ है। यहाँ ये शब्द सम्भवतः राक्षस, भूत एवं भूतपति असुर के पर्यायवाची हैं। णायाधम्मकहा (1, 25, वैद्य संस्करण पृ. 23) में मह अथवा उत्सवों की सूचियाँ मिलती है जिसमें **"भूयजत्ता = भूतयात्रा"** एवं रायपसेणिय सुत्त में **"भूयमह"** का उल्लेख है। बौद्ध ग्रंथ सुत्तनिपात के महानिद्देश में **"असुरवतिक"** का उल्लेख आया है। इस ग्रंथ में लोक देवताओं के पूजने व माननें वालों को व्रतिक (पालि-वतिक) कहा गया है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में प्राप्त लोकदेवों की सूची में "राक्षस" का उल्लेख हुआ है। प्राकृत भाषा में रचित जैनग्रंथ अंगविज्जा से प्राप्त देवी-देवताओं की सूची में **"राक्षस, प्रेत, भूत"** का उल्लेख हुआ है ।

असुर की मृण्मूर्तियाँ भी मध्य गंगा घाटी से प्रतिवेदित हुई हैं। कोपिया, जनपद संत कबीर नगर से एक (कानूनगो 2006: पुरातत्त्व संख्या 26, 110) एवं बुलन्दी बाग, पटना से दो (गुप्ता 1965: 215) असुर मृण्मूर्तियाँ प्रतिवेदित हुई हैं। राजघाट पुरास्थल के उत्खनन (नारायण एवं अग्रवाल 1978: 66, गगगप्प्, 2) से मिली एक मृण्मूर्ति को असुर की मृण्मूर्ति माना जा सकता है **(चित्र संख्या-5)** ।

चित्र संख्या-5: असुर: राजघाट , वाराणसी

सम्भवतः यह असुर भी क्रूर यक्ष का प्रतिरूप है जिसकी वर्तमान में भी दैतराबीर बाबा के नाम से उपासना की जाती है। प्रस्तुत शोधकर्ता द्वारा जनपद गाजीपुर (उ.प्र.) में पुरातात्त्विक सर्वेक्षण के दौरान अनेक गाँवों में एक चबूतरे के ऊपर थूहे जैसी बनी संरचना प्राप्त हुई है। स्थानीय लोगों द्वारा इसके संबंध में बताया गया कि यह दैतराबीर बाबा का स्थान है। कभी-कभी ये रात्रि के समय घूमते-टहलते हुए दिखाई देते हैं। इनका स्वरूप बहुत ही क्रूर है तथा कुपित होने पर लोगों का अहित कर देते हैं। इनकी पूजा में मदिरा और बलि दी जाती है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में इस दैतराबीर बाबा के स्थान पर बकरे इत्यादि की बलि इस देवता को प्रसन्न करने के लिए दी जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी उदाहरण प्राप्त होते हैं कि असुर, दैत्य अथवा प्रेत से छुटकारा पाने हेतु कुछ लोग नरबलि तक भी दे देते हैं। उत्तर-प्रदेश के सोनभद्र जनपद के जनजातीय क्षेत्रों में प्रेत से छुटकारा पाने हेतु नरबलि देने के उदाहरण प्रायः प्राप्त होते रहते है।

मातृकाएँ

प्राचीन भारत में मातृकाओं की अनेक रूपों की उपासना होती रही है। इनमें एक रूप क्रूरमुखी मातृकाओं का भी था जिसकी पूजा का प्रचलन लोक में था। प्राकृत भाषा में रचित जैनग्रंथ अंगविज्जा से प्राप्त देवी-देवताओं की सूची में **पिशाची, राक्षसी** एवं **भूतकन्या** का उल्लेख हुआ है। मत्स्य पुराण में उल्लेखित दो सौ देवियों की एक सूची में **"कटुमुखी एवं क्रोधिनी"** शब्दों का उल्लेख आया है। वायु पुराण में उल्लेखित देवियों की सूची में **"रौद्री"** शब्द का उल्लेख मिलता है जो सम्भवतः क्रूरमुखी मातृकाओं के संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है। काश्यप संहिता के रेवतीकल्प में उल्लेखित देवियों की सूची में भी **"रौद्री"** का उल्लेख प्राप्त हुआ है।

पुरातात्त्विक साक्ष्यों में मृण्मूर्ति राजघाट (नारायण एवं अग्रवाल 1978: टप्, 8) एवं अहिच्छत्र (अग्रवाल 1947-48: स्टए 251) से एक-एक की संख्या में इस प्रकार की मृण्मूर्तियाँ प्रतिवेदित हुई हैं।

प्रस्तुत शोधकर्ता को भी गाजीपुर जनपद के अन्तर्गत गांगी नदी के पुरातात्त्विक सर्वेक्षण के दौरान देवकली पुरास्थल से इस प्रकार एक की मृण्मूर्ति प्राप्त हुई है जो राजघाट एवं अहिच्छत्र से प्राप्त इस प्रकार की मृण्मूर्तियों से काफी समानता लिये हुए है। इस मृण्मूर्ति के चेहरे की बनावट क्रूर एवं नेत्रों को उभार लिए हुए दिखाया गया है जो सम्भवतः क्रूरमुखी मातृका का रूप हो सकती है (चित्र संख्या-6)।

चित्र संख्या-6: क्रूरमुखी मातृका, देवकली, गाजीपुर, उ.प्र.

महाभारत में क्रूरमुखी माताओं को 'अशिवा' कहा गया है। पूतना, रेवती, शुष्करेवती, चण्डा, यक्षिणी, राक्षसी, पिशाची इत्यादि लोकदेविया इसी वर्ग से संबंधित हैं (जोशी: 1977, 131)।

इनमें से पूतना के संबंध में सुश्रुत के उत्तरतंत्र में उल्लेख मिलता है कि 'वह गंदी (*मलिन*), मैले वस्त्रों से ढकी हुई (*मलिनाम्बर संवीता*), अप्रिय गंधयुक्त (*सुदुर्गन्धा*), जीर्ण-शीर्ण केशयुक्त (*रूक्षमूर्धजा*) एवं बहुत क्रोधित (दुर्दर्शना) दिखती है। वह अकेले खण्डहर जैसे घरों (*शुन्यागाराश्रितादेवी एवं भिन्नगाराश्रया*) में निवास करती है'।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इस कथन पर ध्यान दिया जाय तो ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के बीच यह बार-बार सुनने को मिलता है कि 'उस खण्डहर में मत जाना, वहाँ पर भूतनी, प्रेतनी अथवा चुड़ैल रहती है जिसे कई लोगों के अतिरिक्त मैने अपनी आँखों से देखा है।' अथवा यह सुनने को मिलता है कि 'इस व्यक्ति को चुड़ैल/प्रेतनी ने पकड़ रखा इसलिए यह बीमार है। इसे तांत्रिक के पास ले जाकर पूजा-पाठ कराओ तभी ठीक हो पायेगा।' उपरोक्त कथनों में चाहे भले ही कोई सच्चाई न हो किन्तु यहाँ पर इनसे प्राचीन जनजातीय मान्यताओं एवं विश्वासो के अनुरुप मातृदेवी की उपासना की निरन्तरता ही प्रमाणित होती है।

इसी प्रकार रेवती को षष्ठी देवी का रूप माना गया है। रेवती अथवा षष्ठी के संबंध में सुश्रुत के उत्तरतंत्र में उल्लेख मिलता है कि 'वह अनेक वस्त्रों (*नानावस्त्रधरादेवी*), पुष्प माला (*चित्रमाल्यानुलेपना*) एवं लटकते हुए कर्णकुण्डल (चलत्कुण्डिलनी) को धारण करती है। वह

युवा एवं उम्र में सोलह साल (*श्यामा*) की है और सदैव मातृदेवियों जैसी लम्बी, कराला, विनता एवं बहुपुत्रिका को धारण करती है। काश्यप संहिता में उल्लेख मिलता है कि रेवती अथवा षष्ठी स्कन्द की बहन (*स्कन्दमानाधयन्*), छः मुखों (*षण्मुखी*) को धारण करने वाली है। यह सदैव सुन्दर (*नित्य ललिता*) एवं कामरूपिणी (*कामरूपिणी*) के समान है। यह जीवन एवं प्रसन्नता का स्रोत है एवं बच्चे के जन्म के छठें दिन अथवा प्रत्येक पखवारे के छठें दिन इसकी पूजा करनी चाहिए *(षष्ठी च ते तिथिः पूज्या पुण्या लोके भविष्यसि ॥ तस्माच्च सूतिकाष्ठी पक्षषष्ठी)*।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी जब किसी स्त्री को बच्चा पैदा होता है, तब बच्चे के जन्म के छठवें दिन घर में छठी मनायी जाती है जिससे उसके ऊपर बुरी आत्माओं का प्रभाव न पड़े। यह सम्भवतः रेवती अथवा षष्ठी देवी के उपासना से संबंधित कर्मकाण्ड माना जा सकता है जो हारीति अथवा जातहारिणी (स्त्रियों के गर्भ से बच्चों का हरण करने वाली देवी) का रक्षात्मक रूप है।

भारतीय लोक संस्कृति में देवी-देवताओं की पूजा का अपना विशिष्ट उद्देश्य होता था। प्रत्येक देवी या देवता लोक कल्याण के किसी न किसी विशिष्ट कार्य से सम्बद्ध किये गये हैं। इनके अध्ययन से सामाजिक एवं धार्मिक इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। इन देवताओं की लोकप्रियता एवं प्रतिष्ठा में आया हुआ परिवर्तन जनजीवन में हुए सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों को प्रतिविम्बित करता है तथा लोकधर्म में प्रचलित विविध धार्मिक मान्यताओं एवं परम्पराओं का अध्ययन सामाजिक-आर्थिक इतिहास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. स्टैला, क्रैमरिश, 1956, ऐन इमेज ऑफ अदिति उत्तानपाद, आरटीबस एशिया, ग्प्ग्, ।
2. शास्त्री, टी0वी0जी0, 1993, "लज्जागौरी फ्रॉम आलमपुर एण्ड इट्स सिम्बोलिजम: इन ए0वी0एन0 नरसिम्हामूर्ति एवं आई0के0 शर्मा श्रीनाम चन्द्रिका: ओरूगन्ती रामचन्द्रैया, फेसक्रिफ्ट देलही ।
3. मार्शल, जे0, 1915, एक्सकेवेशन्स ऐट भीटा, ए0एस0आई0: एनुअल रीपोर्ट,1911-12।
4. काला, एस0सी0, 1972, भारतीय मृत्तिका कला, प्रतीक प्रकाशन, इलाहाबाद।
5. कुमार, आनन्द, 1995, हिस्ट्री एण्ड आर्कियोलॉजी ऑफ बक्सर, भोजपुर एण्ड रोहतास रीजन, रामानन्द प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. गुप्ता, पी0एल0, 1965, पटना म्यूजियम कैटलाग ऑफ एन्टीक्वीटीज, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस।

7. अग्रवाल, वी0एस0, 1964, प्राचीन भारतीय लोकधर्म, रतिलाल, दीपचन्द देसाई, अहमदाबाद।
8. सिन्हा, वी0पी0 एवं एस0आर0 राय, 1969, वैशाली एक्सकेवेशन्स, डाईरेक्टोरेट ऑफ आर्कियोलॉजी एण्ड म्यूजियम्स, बिहार, पटना।
9. सिन्हा, वी0पी0 एवं बी0एस0 वर्मा, 1977, सोनपुर एक्सकेवेशन्स, डाईरेक्टोरेट ऑफ आर्कियोलॉजी एण्ड म्यूजियम्स, बिहार, पटना।
10. नारायण ए0के0, 1968, एक्सकेवेशन्स ऐट प्रहलादपुर, बी0एच0यू0 वाराणसी।
11. नारायण ए0के0 एवं पी0 के0 अग्रवाल, 1978, एक्सकेवेशन्स ऐट राजघाट, बी0एच0यू0 वाराणसी।
12. जायसवाल, वी0, 1991, कुषाना क्ले आर्ट ऑफ गंगा प्लेन: ए केस स्टडी ऑफ ह्यूमन फार्मस फ्रॉम खैराडीह, आगम कला प्रकाशन, दिल्ली।
13. कानूनगो, ए0के0 2006, एक्सकेवेशन ऐट कोपिया, ए प्रीलिमिनरी रिपोर्ट, बुलेटिन ऑफ द आई0ए0एस0, पुरातत्त्व संख्या 36।
14. अग्रवाल, वी0एस0, 1947-48, द टेराकोटा फिगरिन्स ऑफ अहिच्छत्रा, डिस्टी°क्ट बरेली, उ0प्र0, द बुलेटिन ऑफ द ए0एस0आई0, एन्शिएन्ट इण्डिया नं0 4।
15. सिंह, पी0 एवं ए0के0 सिंह, 2004, द आर्कियोलॉजी ऑफ द मिडिल गंगा प्लेन, न्यू पर्सपेक्टिव, एक्सकेवेशन्स ऐट अगियाबीर, आर्यन बुक इन्टरनेशनल, नई दिल्ली।
16. मार्शल, जे0, 1911-12, एक्सकेवेशन ऐट भीटा, आई0ए0आर0: ए रिव्यू 1911-12।
17. जोशी, एन0पी0,1977, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना।

सहायक आचार्य
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8808419048

संस्मरण

बदहाल सरकारी स्कूल

—डॉ. ह्यूमा कयूम—

किसी भी राष्ट्र की पूँजी उसके नागरिक होते हैं। लोकतांत्रिक राज्यों में उनकी महत्ता तो और अधिक ही है, क्योंकि नागरिक उस देश के लिए नेता चुनते हैं जो ये प्रयास करें कि देश आगे बढ़े, प्रगति करे और साथ में उसके नागरिक भी। इसी कड़ी में आगे बढ़ते हुए कल्याणकारी राष्ट्र की संकल्पना की गई, नागरिकों के स्वास्थ्य और शिक्षा की ज़िम्मेदारी संविधान द्वारा सरकार के ऊपर तय की गई। भारतीय संविधान में शिक्षा को समवर्ती सूची में रखा गया है तथा अनुच्छेद 21-अ के तहत मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को 6-14 आयु वर्ग के बच्चों का मौलिक अधिकार माना गया है। साथ ही 2009 के शिक्षा का अधिकार अधिनियम के तहत भी भारतीय राज्य शिक्षा के प्रति संकल्पबद्ध है। ये तो हुई कानून के दायरे में आने वाले कुछ नियमों और अधिकारों की बात, जिनका पालन करना न सिर्फ नेताओं का बल्कि नागरिकों का भी काम है। आज़ादी के सत्तर साल बाद और शिक्षा का अधिकार अधिनियम के सत्रह साल बाद भी हम दावे के साथ इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते कि क्या सरकारी स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करने वाले बच्चे गुणवत्तायुक्त शिक्षा ग्रहण कर रहें हैं? क्या वे उच्च शिक्षा प्राप्त कर पा रहें हैं? 2001 में प्रारंभ हुए सर्व शिक्षा अभियान के बाद बच्चों के नामांकन प्रतिशत और स्कूलों की संख्या में बढ़ोत्तरी तो हुई पर नामांकित बच्चों में क्या सभी बच्चे अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी कर पा रहे हैं? नहीं। आंकड़ों की बात करें तो दसवीं कक्षा तक आते-आते 47.4 प्रतिशत बच्चे पढ़ाई छोड़ देते हैं। ये आंकड़े सभी वर्ग के बच्चों के लिए हैं, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यक और लड़कियों के अलग-अलग वर्ग में ये प्रतिशत और अधिक है। इसी बीच यह समाचार मिल रहा है कि पंजाब सरकार अपने राज्य के ऐसे 800 स्कूलों को बंद करने जा रही है जिनमें विद्यार्थियों की संख्या 20 या उससे कम है। अब हम ये तो नहीं कह सकते कि अचानक से हमारे देश में बच्चों की संख्या कम हो गई है या सभी माँ-बाप इतने अमीर हो गए हैं कि वे अपने बच्चों को प्राइवेट स्कूलों में दाखिला दिलवा रहें हैं, तो फिर स्कूलों में बच्चों की कम संख्या का कारण क्या है? इसकी पड़ताल करना अति आवश्यक है। अलग-अलग रिपोर्टों और शोधों में सरकारी स्कूलों की लचर व्यवस्था, शिक्षकों का विद्यार्थियों और शिक्षा के प्रति तटस्थ तथा उदासीन रवैया तथा केंद्र एवं राज्य सरकार, दोनों का शिक्षा के बजट में कटौती करना कुछ कारण भर हैं, सरकारी स्कूलों की बदहाली का। हमारे संविधान में जिस कल्याणकारी राज्य की

संकल्पना की गई थी, पूर्ववर्ती और वर्तमान सरकारें दोनों ही इससे दूर होती जाती दिख रही हैं। अच्छी शिक्षा और स्वास्थ्य जो सभी नागरिकों का अधिकार है वो मुहय्या कराने में सरकार पीछे हट रही है। शिक्षा और स्वास्थ्य का निजीकरण और बाजारीकरण दो मुख्य वजहें हैं जिनमें अधिक से अधिक मुनाफा कमाने के चक्कर में सरकार अपने नागरिकों का अधिकार छीन रही है। हैरत की बात है कि इस पर सभी लोग चुप हैं। क्या गुरमीत राम रहीम और अन्य पाखंडी बाबाओं के फलने-फूलने का एक कारण ये भी नहीं है कि शिक्षा और स्वास्थ्य की जो मूलभूत सुविधाएं राज्य को जुटानी चाहिये थीं, वे सुविधाएं इस तरह के बाबा और संत आम नागरिकों को मुहय्या कराके उनके बीच अपनी पकड़ मजबूत कर लेते हैं? राजनीतिक उठापटक से दूर आम नागरिक केवल बुनियादी सुविधाओं को लालच में अगर इस तरह के बाबाओं के झांसे में आ जाते हैं तो यह नेताओं की नाकामी है ।

अब बात करते हैं इस आलेख के मुख्य प्रश्न की- सरकारी स्कूलों में बच्चों की संख्या कम होने का कारण क्या है? सबसे पहले तो हमें इस बात को समझ लेना चाहिए कि सरकारी स्कूलों से अभिभावकों का मोह भंग होने का कारण क्या है? समकालीन समाज में शिक्षा की उपयोगिता भविष्य में उससे होने वाले फायदे से जुड़ी है यानी शिक्षा पूरी करने के बाद विद्यार्थी अपनी आजीविका के लिए इस शिक्षा का कैसे उपयोग कर पाएगा/पाएगी । शिक्षा के इस उपकरणवादी उपागम के फलस्वरूप जब शिक्षा आजीविका का साधन बनने में नाकामयाब हो जाती है तो बच्चों और अभिभावकों का शिक्षा से मोह भंग होता है। पढ़ाई-लिखाई में लगने वाले समय और धन का जब उचित मूल्य न मिल पाए तो लोगों का उपकरणवादी शिक्षा से दूर होना सामान्य बात है। उच्च एवं मध्य वर्गीय लोगों ने शिक्षा की महत्ता को समझ के उसे अपने अनुकूल बनाया। अच्छी और महँगी शिक्षा का लाभ जब उन्हें मिलने लगा तो हर माँ-बाप का मन इस तरह की शिक्षा का लाभ उठाने के लिए लालायित हो उठा। चूँकि सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों का योग्यता-कार्ड, प्राइवेट स्कूलों के बच्चों जैसा नहीं है, इसलिए भी हर माँ-बाप की कोशिश अब ये होती है कि कैसे भी करके अपने बच्चे को प्राइवेट स्कूल में ही पढ़ाना है। अब सरकारी स्कूलों का रुख केवल वही अभिभावक करते हैं जो इन स्कूलों का खर्चा नहीं उठा पाते। पूंजीपतियों ने शिक्षा में भी मुनाफे को देखा, जिसकी वजह से शिक्षा का निजीकरण और बाजारीकरण आज के दौर का कड़वा सच बन बैठा है। दशा यह है कि अब केवल वही अभिभावक अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में भेजते हैं जो प्राइवेट स्कूलों का या तो खर्च वहन नहीं कर सकते या फिर उन दुर्गम स्थलों में रहते हैं, जहाँ सरकारी स्कूल के अलावा कोई अन्य प्राइवेट स्कूल मौजूद न हो।

इसके अलावा सरकारी स्कूलों में जो बच्चे किसी तरह कठिनाइयों का सामना करते हुए हाईस्कूल या इन्टर की परीक्षाएं उत्तीर्ण भी कर लेते हैं, उनका शैक्षिक स्तर उनके समकक्ष

सुविधासंपन्न, प्राइवेट स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों के बराबर तो बिलकुल भी नहीं होता। सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों के शैक्षिक स्तर को नज़दीक से देखने, समझने और जानने का मौका मुझे हाल ही में मिला, जब दो हफ्तों के लिए मैंने 'प्रथम' के लिए काम किया। 'प्रथम' एक देशव्यापी, गैर सरकारी, निजी संस्था है। यह संस्था पूरे भारतवर्ष में 3-16 आयु वर्ग के बच्चों का विद्यालयों में नामांकन और उनके शैक्षिक स्तर का अध्ययन करने के लिए प्रसिद्ध है, जिसकी रिपोर्ट 'असर' (Annual Status of Education Report) नाम से जानी जाती है। संस्था 'प्रथम' पिछले बारह सालों से इस क्षेत्र में अपना योगदान दे रही है। इस संस्था द्वारा किये गए सर्वेक्षण कार्यों के महत्व का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि संस्था की हर साल की रिपोर्ट पर भारतीय सरकार की न केवल नज़रें टिकी होती हैं, बल्कि सरकार ने उसे अपनी पंचवर्षीय योजनाओं (2012-2017) और भारतीय आर्थिक सर्वेक्षण रिपोर्ट (2010-2017) में भी जगह दी है। ऐसी संस्था से जुड़कर काम करने के लिए मैं बेहद उत्साहित थी। संस्था की तरफ से साल 2017 में बच्चों को केंद्र में न रखकर 14-18 आयु वर्ग के युवाओं पर फोकस डाला गया था और यह समझने का प्रयास किया गया कि इस उम्र के युवा अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के बाद भविष्य के लिए किस तरह से तैयार हो रहे हैं?

'असर' 2017 के सर्वेक्षण कार्य से जुड़ने के लिए हमें पहले तीन दिनों की ट्रेनिंग दी गई, जिसमें एक दिन के लिए सर्वेक्षण किस तरह से किया जाए इसकी ट्रेनिंग भी दी गई। फील्ड में जाने से पहले फील्ड का अनुभव होना ज़रूरी था ताकि वास्तविक आंकड़े या डाटा इकट्ठा करने के समय किसी तरह की कोई समस्या या उलझन न हो। इसके बाद सभी सर्वेक्षकों को सर्वेक्षण सामग्री और सर्वेक्षण के लिए चयनित गाँव की सूची दे दी गई। प्रत्येक सर्वेक्षक को दो गाँव का सर्वेक्षण करके 14-18 आयु वर्ग के युवाओं के बारे में आंकड़े जुटाने थे। मुझे सर्वेक्षण के लिए जो दो गाँव मिले थे, वे उत्तर प्रदेश के वाराणसी जिले के गाँव थे, जो शहर से कुछ ही किलोमीटर की दूरी पर हैं। 'प्रथम' कि टीम ने हम सर्वेक्षकों को आंकड़े जुटाने के लिए जो टूल या सामग्री प्रदान की थी वो पूरी तरह से उनके टीम द्वारा बनाई गई और मानकीकृत थी, अतः उसे उपयोग करने में किसी तरह कि कोई समस्या नहीं हुई। चूँकि मैं खुद एक शोध छात्रा हूँ और अपने स्वयं के शोध के सिलसिले में छात्रों/छात्राओं के साक्षात्कार ले चुकी हूँ, इसलिए इस आयु के युवाओं से बात करने में मुझे ज्यादा परिश्रम भी नहीं करना पड़ा।

हालाँकि असर की पहली रिपोर्टों में बच्चों के कम शैक्षिक स्तर का पूरा और वास्तविक व्यौरा है फिर भी खुद इस तरह के सर्वे से जुड़ कर हकीक़त से रू-ब-रू होने पर स्थिति की भयावहता का असल अंदाजा हुआ। मेरे द्वारा सर्वे किए गए कुल 32 युवाओं में से सभी ने अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी कर ली थी और उनमें से कुछ अन्य आगे की पढ़ाई कर रहे थे। उन युवाओं में से-

- लगभग 20% युवा ऐसे थे, जिन्हें ठीक से पढ़ना नहीं आता था, जबकि 50% ऐसे युवा थे, जो आसान से गुणा-भाग के सवाल करने में दक्ष नहीं थे।
- केवल 18% युवा ऐसे थे, जिन्होंने टूल के सारे प्रश्नों को सही जवाब के साथ हल कर लिया था और शेष युवा ब्याज और प्रतिशत के आसान प्रश्नों को करने में असफल रहे।
- जिन युवाओं ने पढ़ाई छोड़ दी थी, उनमे से ज्यादातर लड़के गैर संगठित क्षेत्र में कम मजदूरी पर शारीरिक श्रम करते थे, जिनके पास किसी भी प्रकार का कोई प्रशिक्षण भी नहीं था।
- पढ़ाई छोड़ चुके इन युवाओं की शैक्षिक महत्वाकांक्षा भी कुछ नहीं थी।
- इस उम्र की वयस्क होती हुई लड़कियां भी शिक्षा की उपयोगिता को किसी रोजगार से जुड़ा न देख कर आगे पढ़ने को लेकर ज्यादा उत्सुक नहीं थीं। परन्तु वे किसी प्रशिक्षित रोज़गार जैसे सिलाई, ब्यूटिशियन कोर्स, नर्स इत्यादि से जुड़ने की इच्छा ज़रूर रखती हैं ताकि ये खुद कुछ कमा सकें।
- केवल वे ही युवा जिनके परिवार के पिछली पीढ़ी के लोग जो शिक्षित थे और अच्छे रोजगार से जुड़े थे, आगे पढ़ने और सरकारी/गैर-सरकारी नौकरी करने की बात करते थे, जबकि ऐसे युवा जो अपने परिवार में स्वयं पहली पीढ़ी के विद्यार्थी थे, उन्होंने अपने लिए किसी भी तरह के लक्ष्य निर्धारित नहीं किये थे, जैसे- वे भविष्य में क्या बनना चाहते हैं या किस रोज़गार से जुड़ना चाहते हैं ?

पढ़ाई-लिखाई में इन युवाओं की असफलता ने इन्हें एक गलत बात को स्वीकारने पर मजबूर किया है कि इनके स्वयं की कमी के कारण ये असफल हुए हैं, जबकि बृहद् परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो इनकी नाकामी इनकी नहीं बल्कि इनके विद्यालयों और अध्यापकों/अध्यापिकाओं की है जो ये सोच रखते हैं (कुछ अपवादों को छोड़ कर) कि वंचित समुदाय से आने वाले विद्यार्थी शिक्षा में बेहतर परिणाम नहीं ला सकते और शिक्षक भी ऐसे विद्यार्थियों के ऊपर परिश्रम न करके उनकी असफलता का दोषी उन्हें ही ठहराते हैं।

ज़रूरत अब इस बात की नहीं है कि सरकार, सरकारी स्कूलों पर ध्यान दें, ज़रूरत अब एक सामाजिक क्रांति की है जो सरकार को सरकारी स्कूलों की दशा सुधारने और शिक्षा के बढ़ते बाजारीकरण-निजीकरण पर नकेल कसने को मजबूर कर सके।

अतिथि प्राध्यापक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 7011579859

नारी शिक्षा की अनिवार्यता

—निधि त्रिपाठी—

आदि काल से ही स्त्रियाँ पृथ्वी पर नैतिकता, मानवता और सभ्यता के विकास के लिए अपरिमित स्रोत रही हैं। प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में नारियाँ पूज्य मानी जाती रही हैं । कविवर पन्त ने भारतीय परम्परा में नारी के अनेक स्वरूप बताए हैं । देवी, माँ, सहचरी, प्राण। माता के रूप में सुसंस्कृत नारी ही संस्कारवान बालक को जन्म देती है और उसके लिए शिक्षा का ऐसा वातावरण तैयार करती है कि वह देवतुल्य सामर्थ्य ग्रहण कर लेता है। माता अपनी संतान का निर्माण अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुरूप कर सकती है। वर्तमान समय में प्रजातंत्र की सुरक्षा, राष्ट्रीय समृद्धि के विकास, मानवता के प्रसार, विश्व शांति के लिए चरित्रवान, योग्य नागरिकों की आवश्यकता है । यदि हमारी माताएँ इस दिशा में प्रयत्नशील हो सकें तो निश्चय ही भारत की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने वाले, राष्ट्रीय समृद्धि में योग देने वाले, शांति स्थापक योग्य नागरिक मिल सकेंगे । विश्व की सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत महिला जनसंख्या है, परन्तु उसका सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्तर पुरुषों की तुलना में बहुत पीछे है। यदि समाज में प्रत्येक पुरुष की शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार किया जाता है तो नितान्त आवश्यक है कि महिला शिक्षा के महत्त्व को भी स्वीकार किया जाना चाहिए।

मनुस्मृति में कहा गया है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।' अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है, वहीं पर समस्त देवता वास करते हैं। वस्तुतः परिवार को बालक की प्रथम पाठशाला और माँ को उसकी प्रथम शिक्षिका माना जाता है । माता के रूप में स्त्री ही ऐसे बालक के निर्माण में सक्षम होती है, जो समाज और देश को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने में समर्थ होते हैं। शिक्षित नारी ही परिवार और समाज को सुसंस्कृत बनाती है। पण्डित नेहरू के अनुसार "लड़के की शिक्षा एक व्यक्ति की शिक्षा होती है तथा लड़की की शिक्षा पूरे परिवार की शिक्षा है" किन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि विश्व के अधिकांश देशों में स्त्री शिक्षा का ह्रास देखा गया है । आज के वैज्ञानिक युग में महिलाओं का कार्यक्षेत्र केवल घर की देखरेख व संतान का पालन-पोषण ही नहीं, वरन् पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलना होना चाहिए। इसी कारण से अरस्तू ने कहा था कि "स्त्री की उन्नति व अवनति पर ही राष्ट्र की उन्नति व अवनति निर्भर है"।

प्रजातांत्रिक व्यवस्था वाले हमारे देश में किसी भी जाति, धर्म आदि के भेद से शिक्षा से वंचित नहीं किया जा सकता है । समाज एवं राष्ट्र की प्रगति के लिए पुरुषों के साथ-साथ

स्त्रियों का सहयोग भी आवश्यक है। स्त्रियों में चेतना पैदा करने के लिए तथा घर एवं समाज में अपने उत्तरदायित्व को निभाने के लिए स्त्रियों को शिक्षित करना आवश्यक है। सुशील स्त्री ईश्वर का सबसे उत्तम प्रकाश है, जो इस संसार की शोभा बढ़ा रहा है। इस बात को प्राचीन काल में विदुर ने इस वाक्य में कहा था- 'स्त्रियाँ पूजा करने योग्य, बड़े भाग्यशाली, पुण्यात्मा, गृह का प्रकाश तथा साक्षात् लक्ष्मी होती हैं'। इसी क्रम में गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर ने कहा था- 'स्त्रियाँ ही ऐसी शक्ति हैं जो धार्मिक भावनाओं का प्रसार करके बालकों का नैतिक आचरण सुधारती हैं और अशान्त वातावरण में शान्ति का वास करती हैं। वह दया की देवी हैं। क्षमाशीलता उसका धर्म है। वह सहिष्णु, उदार और सहकारी होती हैं। यही गुण योग्य नागरिक में होने चाहिए। स्त्री ही समाज में उत्थान और पतन का कारण हो सकती है। अतः शिक्षा द्वारा स्त्री का धार्मिक, नैतिक, चारित्रिक मार्गदर्शन करना आवश्यक होता है'।

विविध सांस्कृतिक परम्परायें समाज में स्त्रियों द्वारा ही स्थापित होती हैं। वह उनकी रक्षक पोषक और प्रसारक है। वह परिवार से लेकर समाज के क्षेत्र में अपने व्यवहारों द्वारा संस्कृति का विकास करने में योगदान देती है। वस्त्र-विन्यास, रहन-सहन, धार्मिक प्रथाएँ, रीति-रिवाज, सामाजिक मान्यतायें, मातृभाषा विकास, पारिवारिक शिक्षा द्वारा समाजीकरण के आदर्श प्रस्तुत कर पुरुष वर्ग का वही मार्गदर्शन करती हैं। उक्त गुणों से युक्त स्त्री सुन्दर तो दिखती है, किन्तु विद्या एक ऐसा आभूषण है जो इन गुणों की चमक को और आकर्षक बनाती है। ऋग्वेद काल में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। ऋग्वेद की बहुत सी ऋचाओं की रचयिता स्त्रियां मानी जाती हैं जैसे- गार्गी, अपाला, घोष, मैत्रयी, विश्ववारा आदि।

बौद्ध काल में बौद्ध धर्म का विकास हुआ। इस काल में भी अनेक विदुषी महिलाएं हुईं जिन्होंने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समाज का नेतृत्व किया। उदाहरणार्थ, शील भट्टारिका, प्रभुदेवी तथा विजयका उच्चकोटि की कवियित्री थीं। शंकराचार्य और मंडन मिश्र के बीच हुए शास्त्रार्थ की निर्णायिका मण्डन मिश्र की विदुषी पत्नी भारती थीं। इसके अतिरिक्त स्त्रियाँ आलोचना, मीमांसा, वेदांत, आयुर्वेद तथा उच्च साहित्य का अध्ययन करती थीं। मुगल काल में पर्दा प्रथा तथा बाल विवाह के कारण नारी शिक्षा का प्रसार कम हो गया। बालिकाएँ बालकों के साथ पढ़ने के लिए नहीं जाती थीं, परन्तु शाही और अमीर परिवार की लड़कियाँ घर पर रहकर ही शिक्षा प्राप्त करती थीं। इस काल में बहुत कम स्त्रियों को शिक्षा के अवसर उपलब्ध हो पाए।

ब्रिटिश काल में नारी शिक्षा के क्षेत्र में कुछ भारतीय तथा यूरोपीय गैर सरकारी प्रयास अधिक सराहनीय रहे। पण्डित ईश्वरचंद ने बंगाल में लड़कियों के लिए अनेक विद्यालय खोले। ब्रिटिश काल में मुगल काल की तुलना में नारी शिक्षा काफी अच्छी स्थिति में थी।

स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन आना शुरू हुआ। भारत के संविधान में जाति, धर्म, लिङ्ग आदि के आधार पर बिना भेदभाव किये शिक्षा का प्रावधान किया गया है। स्वतंत्रता के उपरान्त भारत में प्रजातांत्रिक समाज व्यवस्था के लक्ष्य को स्वीकार किया गया है, जिसमें स्त्री शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

भारत का प्राचीन आदर्श नारी के प्रति अतीव श्रद्धा और सम्मान का रहा है। प्राचीन काल से नारियाँ घर-गृहस्थी को ही नहीं देखती आ रहीं, अपितु समाज, राजनीति, धर्म, कानून, न्याय सभी क्षेत्रों में वे पुरुष की संगिनी के रूप में सहायक व प्रेरक भी रहीं हैं, परन्तु समय के बदलाव के साथ नारी पर अत्याचार व शोषण का आंतक भी बढ़ता रहा है। यहाँ तक कि नारी शैक्षणिक सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक सभी स्तरों पर उपेक्षित जीवन व्यतीत करती है। जब बात शैक्षणिक शोषण की होती है तो एक ही सवाल मन में उठता है कि अगर नारी को शोषण और अत्याचारों के दायरे से मुक्त करना है तो सबसे पहले उसे शिक्षित करना होगा। शिक्षा का अर्थ केवल अक्षर ज्ञान नहीं होता अपितु शिक्षा का अर्थ जीवन के प्रत्येक पहलू की जानकारी होना है व अपने मानवीय अधिकारों का प्रयोग करने की समझ होना है। शिक्षा सफलता की कुंजी है। बिना शिक्षा के जीवन अपंग है। जीवन के हर पहलू को समझने की शक्ति शिक्षा द्वारा ही प्राप्त होती है। ऐसा माना जाता है कि शिक्षा एक विभूति है और शिक्षित विभूतिवान। जहाँ आज समाज का एक नारी-वर्ग शिक्षित होकर समाज में अपनी एक अलग पहचान बना रहा है, परन्तु वहाँ एक वर्ग ऐसा भी देखने को मिलता है जो आज भी अशिक्षा के दायरे में सिमट कर मूक जीवन व्यतीत कर रहा है और सवाल यह उठता है कि उनकी स्थिति में कितना सुधार हो रहा है? हम प्रत्येक वर्ष महिला-दिवस बहुत धूमधाम और खुशी से मनाते हैं पर उस नारी-वर्ग की खुशियों का क्या जो अशिक्षा के कारण अपने मानवीय अधिकारों से वंचित महिला-दिवस के दिन भी गरल के आँसू पीती हैं ।

नारी को समाज में उसका उचित स्थान दिलवाने के लिए एक ओर राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा गाँधी जैसे महान सुधारकों ने भरसक प्रयत्न किये, वहीं स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान ने भी नारी शिक्षा के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराये। परन्तु आज भी जीवन के हर क्षेत्र में उसके साथ भेदभाव होता है । आज भी समाज में किसी न किसी रूप में नारी का शोषण किया जा रहा है। अतः यह आवश्यक है कि हर एक शिक्षित नारी अपने परिवार की अन्य अशिक्षित नारियों को पढ़ाकर अपने अर्जित ज्ञान व विकसित क्षमता का लाभ पूरे परिवार को दे। नारी सशक्तीकरण की आधारशिला शिक्षा ही है । शिक्षा द्वारा नारी सशक्त और आत्मनिर्भर बनकर अपने व्यक्तित्व का उचित रूप से विकास कर सकती है।

राधाकृष्णन आयोग 1948-49 के अनुसार "शिक्षित स्त्रियों के अभाव में व्यक्ति शिक्षित नहीं हो सकते।"

कोठारी आयोग 1964-70 ने स्त्री शिक्षा के संबंध में श्रीमती देशमुख की अध्यक्षता में सुगठित "राष्ट्रीय स्त्री परिषद्" के सुझावों को मान्यता देते हुए कहा है कि "मानव संसाधनों के पूर्ण विकास, परिवारों की उन्नति और बाल्यकाल में अत्यधिक सरलता से प्रभावित होने वाले वर्षों में बच्चों के चरित्र निर्माण के लिए स्त्रियों की शिक्षा का महत्त्व पुरुषों से अधिक है।" कोठारी आयोग ने स्वीकार किया था कि माता बच्चों की प्रथम शिक्षिका होती है। बच्चे के संस्कारों को निर्धारित करती है तथा उसे समुचित वातावरण, लालन-पालन व स्नेह देकर उसका समुचित सामाजिक और मानसिक विकास करती है। अतः स्त्रियों की शिक्षा को पुरुषों की शिक्षा से अधिक महत्त्व देना चाहिए।

स्त्री शिक्षा के विकास से सम्बन्धित अध्ययनों के निष्कर्षों से स्पष्ट हो जाता है कि पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की शिक्षा में काफी पिछड़ापन है। स्त्री शिक्षा में नगरीय व ग्रामीण क्षेत्रों में एवं विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में भी पर्याप्त अन्तर है। ऐसी स्थिति में भारत में नारी शिक्षा के गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों प्रकार के विस्तार की जरूरत है।

वर्तमान समय में राष्ट्रीय स्तर पर यह महसूस किया जा रहा है कि नारी शिक्षा की दिशा में ठोस प्रयास के बिना समाज का सन्तुलित विकास सम्भव नहीं है । इसलिए नारी-शिक्षा की दिशा में लगातार प्रयास किये जा रहे हैं। आज भारत में अनेक विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय चलाये जा रहे हैं । महिलाओं को शिक्षित बनाने का वास्तविक अर्थ उसे प्रगतिशील और सभ्य बनाना है, ताकि उसमें तर्क-शक्ति का विकास हो सके । यदि नारी शिक्षित होगी तो वह अपने परिवार की व्यवस्था ज्यादा अच्छी तरह से चला सकेगी । एक अशिक्षित नारी न तो स्वयं का विकास कर सकती है और न ही परिवार के विकास में सहयोग दे सकती है। इसलिए नितान्त आवश्यक है कि नारी सबसे पहले भली-भाँति शिक्षित हो तभी वह शोषण व अत्याचारों के चक्रव्यूह से निकल कर एक सामान्य मानव का जीवन व्यतीत कर सकेगी।

पत्नी-दीपंकर त्रिपाठी
कुलसचिव कार्यालय
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9415600692

मनुष्य की भिन्न-भिन्न प्रकार की इच्छाएँ, खुशियाँ एवं जीवन का उद्देश्य

—अंकिता सिंह—

इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार की खुशियों को खोजने, समेटने तथा संवारने की कोशिश में लगा रहता है। वह खुशियों को कभी वस्तुओं में खोजता है, कभी किसी इंसान में ढूँढ़ता है, तो कभी किसी अन्य प्राणी में भी तलाशने की कोशिश करता है। ढेरों खुशियाँ खरीदने अथवा पाने की चाह में वह दिन-रात मेहनत करता है। एक के बाद एक लगातार अनेकों खुशियाँ प्राप्त करने के बाद भी उसकी अभिलाषाएँ बढ़ती ही जाती हैं। कई लोग तो ऐसे भी होते हैं, जिनकी अभिलाषाएँ उस सीमा तक बढ़ जाती हैं कि वे उन्हें पूर्ण करने के लिए गलत रास्ता तक अपना लेते हैं। वे कभी यह नहीं सोचते कि अनुचित मार्ग अपनाकर इच्छाएँ एवं खुशियाँ प्राप्त करना उनके लिये कभी न कभी हानिकारक भी सिद्ध हो सकता है।

आज के समय में इंसान भाग-दौड़ भरी जिन्दगी जी रहा है। अधिकांश लोगों का जीवन इतना व्यस्त एवं तनावग्रस्त हो गया है कि उन्हें एक-दूसरे का दुःख-सुख पूछने तक का भी समय नहीं है। मानव की जीवनचर्या ऐसी हो गयी है कि उसे खुश रहने के लिए कारण ढूँढ़ना पड़ता है। व्यक्ति वास्तविक खुशी महसूस ही नहीं कर पाता और बनावटी खुशी के लिए इधर-उधर भटकता और परेशान रहता है।

मनुष्य पैसों के पीछे इस तरह भागता है कि कहाँ से उसके पास ढेरों रुपये आ जायं। पैसा कमाने के लिये ऐसे-ऐसे तरीके अपनाता है कि मानो वह रातों-रात ही अमीर बन जाय। जितनी जल्दी हो, मेहनत कम करनी पड़े और पैसे अधिक मिल जायं- अधिकतर लोगों की यही भावना रहती है। यदि किसी व्यवसाय के माध्यम से पैसे आ भी जाते हैं, तो वह सोचता है कि मैं इन पैसों से घर, बंगला और गाड़ी खरीदूँगा तथा अपनी आवश्यकताओं एवं अभिलाषाओं को पूरा करूँगा। इस प्रकार व्यक्ति अनगिनत भौतिक सुख-सुविधाओं को पूरा करने में लगा रहता है। उसकी कितनी ही इच्छाएँ क्यों न पूरी हो जायं, फिर भी वह जीवन भर परेशान ही रहता है, क्योंकि उसकी इच्छाओं का कोई अन्त नहीं होता। इंसान का स्वभाव ही कुछ ऐसा होता है कि उसके पास जब धन-दौलत, रुपया-पैसा नहीं होता, तो वह न होने की दशा में परेशान रहता है और जब बहुत सारा हो जाता है, तो भी वह परेशान रहता है। धन की चिन्ता होने के कारण न उसे रात को नींद आती है, न दिन को चैन मिलता है और न ही सुख-शान्ति मिलती है।

हम अक्सर बड़ी-बड़ी खुशियों को पाने के चक्कर में न जाने कितनी ऐसी छोटी-छोटी खुशियों को नजरअंदाज कर देते हैं, जो कि हमारे आस-पास ही होती हैं, परन्तु वे हमें दिखाई नहीं देतीं। कभी-कभी ऐसा देखने को मिलता है कि हम जब कहीं जाते हैं और रास्ते में 1 रुपये का सिक्का पड़ा देखते हैं तो हम सोचते हैं कि इस सिक्के से हमें क्या मिलेगा? यह मेरे किसी काम का नहीं और उस पैसे को नजरअंदाज करके आगे बढ़ जाते हैं, परन्तु वही सिक्का जब एक गरीब इंसान का बच्चा देखता है, तो वह खुश होकर तुरन्त उस सिक्के को उठा लेता है। तत्पश्चात् उसे अपनी हथेली पर रखकर देखता है और यह सोचता है कि मैं इस सिक्के से अपनी मनपसन्द की टॉफी खरीदूँगा। उस वक्त 1 रुपये के सिक्के को देखकर उस बच्चे के चेहरे पर जो खुशी प्रतीत होती है, वह खुशी हम-आप जैसे लोगों के चेहरे पर नहीं होती। इसी प्रकार मकरसंक्रान्ति के त्यौहार पर हम बड़ी-बड़ी दुकानों से रंग-बिरंगी, छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की ढेरों पतंगें खरीदकर घर लाते हैं और उन्हें उड़ाते हैं। आसमान में अनेक प्रकार की रंग-बिरंगी पतंगें उड़ती दिखाई देती हैं, लेकिन फुटपाथ पर रहने वाले गरीब परिवार के बच्चे जब पतंगें नहीं खरीद पाते हैं, तो वे आसमान की ओर नजरें टिकाए खड़े रहते हैं और जैसे ही कोई पतंग कटकर आसमान से नीचे गिरती है, तुरन्त सभी बच्चे उस पतंग के पीछे भागते हैं। पतंग को पाकर उन्हें जो खुशी मिलती है, वैसी खुशी हमारे चेहरे पर ढेरों पतंगें होने के बावजूद भी नहीं आती।

एक अमीर आदमी अपने बच्चे के लिए कई महँगे खिलौने खरीदकर लाता है, जबकि उस बच्चे के पास पहले से ही कई अन्य खिलौने थे, लेकिन नये खिलौनों के आगे पहले वाले सभी खिलौने पुराने और बेकार की भाँति इधर-उधर फेंके पड़े रहते हैं। मालिक उस घर में काम करने वाले नौकर से कहता है कि इन पुराने खिलौनों को उठाकर जमा कर लो और कचरे के डिब्बे में फेंक दो, परन्तु नौकर ने उन खिलौनों को कचरे में फेंकने के बजाय शाम को घर लौटते वक्त अपने साथ ले जाता है। वह सोचता है कि आज मेरे बच्चे इन्हें पाकर कितने खुश होंगे। इसके बाद जब वह नौकर अपने बच्चों को उन खिलौनों को देता है, तो वे उन्हें देखकर बेहद खुश होते हैं। अपने बच्चों के चेहरे पर खुशी देखकर पिता के चेहरे पर जो खुशी की चमक आती है, ऐसी खुशी न तो अमीर आदमी या उसके बच्चे के चेहरे पर थी और न ही उन्होंने इस खुशी को महसूस किया होगा। इसी प्रकार हम अपने घरों में या होटलों में तरह-तरह के स्वादिष्ट पकवान खाते हैं और जो खाना बच जाता है, उसे कचरे में डाल देते हैं। इस प्रकार हम कितना अन्न नष्ट कर देते हैं। अन्न को फेंकने से पहले हम यह नहीं सोचते कि जो भोजन इस तरह नष्ट कर रहे हैं, उससे कितने परिवारों का पेट भर सकता है। यह भोजन कितने भूखे लोगों के चेहरे पर मुस्कान ला सकता है।

यदि हम दो परिवारों के उदाहरण लें- संयुक्त परिवार और एकल परिवार तथा दोनों की तुलना करें तो कुछ लोगों को लगेगा कि एकल परिवार में ज्यादा खुशी है और कुछ लोगों को लगेगा कि संयुक्त परिवार में ज्यादा खुशी है। जो एक साथ, एक ही छत के नीचे कई परिवार हँसी-खुशी से रहते हैं, उनमें आपसी सामञ्जस्य होता है, जिससे एक-दूसरे के प्रति आदर-सम्मान, अपनापन, इज्जत और प्रेमभाव होता है। बड़ों का मार्गदर्शन, आशीर्वाद एवं उनकी छत्रछाया सदैव बनी रहती है। सामञ्जस्यमयी परिवारों में कमाई कम हो या अधिक, वे उसी में अपना घर चलाते हैं और सन्तुष्ट रहते हैं। परिवार में सभी जनों का मत सदैव एक होता है तथा आपस में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं होता।

आज के समय में अधिकतर परिवारों में यह देखा जाता है कि आपसी तालमेल न होने के कारण लोगों में अनबन, लड़ाई-झगड़े, एक-दूसरे के प्रति घृणा, मतभेद, ईर्ष्या-द्वेष आदि की स्थिति पैदा हो जाती है । इसी वजह से एक-दूसरे के लिए प्यार, आदर-सम्मान और समर्पणभाव कम हो जाता है। जिन परिवारों में जब ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, तब उनमें पारिवारिक विखण्डन होने लगता है। परिवार चाहे एकल हो अथवा संयुक्त, जहाँ लोगों में आपसी सामञ्जस्य नहीं होता, वहाँ कलह, तनाव, चिन्ता और दुःख ही पैदा होता है, हँसी और खुशी किसी को भी नसीब नहीं होती।

जिस प्रकार कुछ लोगों के जीवन का सारा सुख रुपये-पैसों में है, धन के जरिए वे अपने मन का कुछ भी कर सकते हैं, उसी प्रकार कुछ लोगों का विचार है कि प्रेम में सुख है, प्रेमभाव से दुनिया जीती जा सकती है, सभी को अपना बनाया जा सकता है। धन तो जीवन-यापन का एकमात्र साधन है। वे धन भी उतना ही कमाना चाहेंगे, जितने में उनका जीवन अच्छी तरह से व्यतीत हो सके। इसके अलावा कुछ लोगों को अपना पेशेवर जीवन जीने में ही सुख मिलता है, क्योंकि वे बहुत कोशिश, संघर्षों और कड़ी मेहनत के बाद अपने लक्ष्य को प्राप्त किया है। अपने लक्ष्य का चुनाव करते समय हम यह नहीं सोचते कि आगे जाकर उस पेशे में कितनी कमाई होगी तथा कितनी कामयाबी मिलेगी? चुनाव के समय तो बस इतना सोचते हैं कि आगे चलकर यह पेशा मुझे सुकून देगा, फिर चाहे कमाई कम हो या अधिक, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अपने पेशे के साथ हम कुछ न कुछ अच्छा तो कर ही लेंगे। यदि अधिक मेहनत करेंगे, तो कामयाबी अवश्य मिलेगी। इसी तरह खुद को आत्म-विश्वास दिलाते हैं और आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं।

हमारे आस-पास के लोग जैसे- दोस्त, परिवार, रिश्तेदार तथा वस्तुएँ जैसे- पेशा, घर, गाड़ी या अन्य कोई भी पसंदीदा वस्तु, ये सभी हमें सुख पहुँचाती हैं। हमारे आस-पास के लोग तथा जो वस्तुएँ हैं, इनसे हम बहुत प्रेम करते हैं । इन्हें सहेज कर सुरक्षित रखना चाहते हैं,

क्योंकि इनसे हमारी बहुत-सी भावनाएँ एवं आवश्यकताएँ जुड़ी होती हैं, परन्तु कभी-कभी हम इनसे खुश होने के बजाय दूसरों से खुद की तुलना करने लगते हैं कि शर्मा जी का घर कितना बड़ा है! गुप्ता जी ने मुझसे भी महँगी गाड़ी ली है! इनके लड़के के नम्बर मेरे बेटे से 2% ज्यादा कैसे आ गये? उनका पूरा परिवार छुट्टियों में विदेश घूमने गया था, मैं नहीं जा सका। वे मुझसे उस कार्यक्षेत्र में कितना आगे निकल गये और मैं पीछे ही रह गया। इस तरह की अनेकों नकारात्मक बातें सोचकर हम अशान्त और दुःखी हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त लोग अपने भविष्य के बारे में भी सोचकर चिन्तित होते रहते हैं। जब हमारे भीतर परिपक्वता आती है तथा समझ बढ़ती है, तब हम देश-दुनिया की तरफ दृष्टि डालते हैं और विचार करते हैं, तो हमें ज्ञात होता है कि दुनिया में कितनी प्रतियोगिताएँ एवं चुनौतियाँ हैं। लोगों में एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ लगी हुई है। कई सारी परीक्षाएँ देकर हजारों-लाखों लोगों को पीछे छोड़कर आगे निकलना पड़ता है। कैरियर के समय अगर सही विषय का चयन नहीं किया तो आगे नौकरी कौन देगा? यदि अच्छी शिक्षा प्राप्त करने के बाद अच्छा विजनेस या नौकरी नहीं है, तो शादी-विवाह के लिए मनपसन्द लड़की या लड़का मिल पाना मुश्किल है। जब किसी तरह शादी हो जाती है, तो उसके बाद घर-गृहस्थी की चिन्ता, बच्चों की परवरिश, पढ़ाई-लिखाई से लेकर उनके आगे का भविष्य सुरक्षित करने तक हम हर तरह से चिन्तित होते रहते हैं। ये चिन्ताएँ यदि अधिक बढ़ने लगें तो हमारा वर्तमान जीवन नकारात्मक विचारों से घिर जाता है, जिसके कारण हम दुःखी रहते हैं, परन्तु यदि हम अपने जीवन में होने वाले उतार-चढ़ाव का सामना करें, अपनी जिम्मेदारियों को समझें और उन्हें बखूबी निभायें तथा जीवन जीने का तरीका बदलें, नकारात्मकता से दूर रहने का हरसम्भव प्रयास करें एवं सकारात्मकता को अपनायें, तो हमारा जीवन काफी बेहतर हो सकता है। हमें चिन्ता भविष्य की नहीं, वर्तमान की करनी चाहिये। भविष्य के प्रति सजग अवश्य रहें, किन्तु वर्तमान में समय के साथ निरन्तर चलते रहें, क्योंकि जब हमारा वर्तमान सही रहेगा, तभी भविष्य भी अच्छा बनेगा। इस प्रकार की सोच रखने एवं कार्य करने से निर्धारित उद्देश्य समय के साथ पूर्ण करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

जीवन के पथ पर अग्रसर रहते हुये प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि उसने अपने जीवन में अब तक जितना भी धन कमाया है तथा जो भी पूँजी इकट्ठा की है, उसमें से कमाई का कुछ हिस्सा उसे अपनी क्षमतानुसार जनहित अथवा कल्याणकारी कार्यों में सहयोग के रूप अवश्य प्रदान करना चाहिए। किसी व्यक्ति को भोजन कराकर, किसी अनाथ को छत एवं शिक्षा देकर, किसी शिक्षण संस्था एवं अनाथ आश्रम आदि को दान करके कई लोगों का भविष्य संवार सकते हैं। दूसरों के चेहरे पर खुशी लाना बहुत बड़ा पुण्य का कार्य है। इसके अलावा हम

अपने जीवन काल में बहुत-सी गलतियाँ करते हैं और उनसे कई बार सीख भी लेते हैं। इन्हें हम चाहकर भी कभी भूल नहीं पाते तथा इन्हीं के बारे में सोचकर वर्तमान में दुःखी होते हैं और अफसोस करते हैं, किन्तु हमें यह प्रयास करना चाहिए कि जो बीत गया है, उसे पीछे छोड़कर हम आगे बढ़ें। बीता हुआ कल वापस नहीं आ सकता और न ही उसे वर्तमान में सुधारा जा सकता है। इसलिए यह सब भूलकर अपने आज को खुलकर जीयें, वर्तमान में जो आपके पास है, उसका आनन्द लें। आज को जितना हो सके, उतना बेहतर बनाने की कोशिश करें, जिससे आने वाला कल भी बेहतर बन सके। यदि भूतकाल को याद करना ही है तो उन पलों को याद कीजिए, जिस समय आप बहुत खुश थे, जिस वक्त आपने अपने परिवार, दोस्तों के साथ अच्छा वक्त बिताया था। यदि हो सके तो कोशिश करें कि आप दूसरों की हँसी का माध्यम बनें और दूसरों की खुशी को दुगुना-चौगुना तथा दुःख को अधिक से अधिक कम करने का प्रयास करें।

दुनिया में बहुत से लोग ऐसे भी हैं, जो स्वयं के शरीर से ही परेशान रहते हैं, जैसे- शरीर का मोटा या पतला होना, लम्बाई अधिक छोटी हो जाना, चेहरा काला या उस पर दाग-धब्बे का होना आदि। इस तरह के इंसान को देखकर लोग मजाक उड़ाते हैं, हँसते हैं तथा इनका उपहास करते हैं। इसी कारणवश वे हताश हो जाते हैं, स्वयं से घृणा करने लगते हैं, जिससे उनकी मानसिक स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ता है और अवसाद (डिप्रेशन) जैसी मानसिक बीमारी से ग्रसित हो जाते हैं। हम मजाक उड़ाने वाले लोगों का मुँह नहीं बन्द कर सकते, किन्तु उनकी बातों को अनदेखा या अनसुना अवश्य कर सकते हैं। हम ऐसा क्यों नहीं सोचते कि ईश्वर ने न केवल हमें मानव रूप में पैदा किया है, अपितु सभी जीवों से श्रेष्ठ एवं सुन्दर जीवन भी प्रदान किया है। इसलिये हमें इस अमूल्य उपहार को हृदय से अपनाना चाहिए और ईश्वर को इसका धन्यवाद भी देना चाहिए। यदि आप स्वयं से प्रेम करेंगे, तो दुनिया भी आपको उसी नजरिए से देखेगी तथा स्वीकार करेगी। यद्यपि ईश्वर ने सभी प्राणियों का सृजन किया है तो फिर हम अनावश्यक बेकार की बातों में अपना समय क्यों बरबाद करते हैं और अपने मन में ऐसे विचार क्यों लाते हैं कि 'लोग हमारे बारे में क्या सोच रहे हैं?' तथा 'क्या कह रहे हैं?' वे हमारी किस बात पर खुश हैं या किस बात पर हमसे नाराज हैं? ऐसी अनेक प्रकार की बाते हैं, जिनके बारे में सोचकर मन विचलित होता है, परन्तु स्वयं को यह समझाना होगा कि हमारा बहुमूल्य जीवन इन व्यर्थ की बातों में गँवाने के लिए नहीं है, बल्कि अपने अन्दर छिपे गुणों को पहचानने तथा उनके बल पर कुछ कर दिखाने के लिए है।

निष्कर्षतः देखें तो समाज में लोगों की वस्तुओं एवं इच्छाओं के प्रति अहमियत अलग-अलग तरह की देखने को मिलती है तथा इनसे मिलने वाली खुशी भी प्रत्येक व्यक्ति के लिए

भिन्न-भिन्न होती है। किसी के लिए परिवार तथा उनसे प्रेम करना सुख है, तो किसी लेखक, डॉक्टर, इन्जीनियर, वकील, अभिनेता आदि के लिए अपना पेशा सुख का कारण है। किसी के लिए ईश्वर की भक्ति सुख है, तो किसी जवान के लिए देश-प्रेम सुख है। किसी के लिए धन-दौलत, रुपया-पैसा सुख है, तो किसी के लिए गरीब, अनाथ एवं बेसहारों के चेहरे पर मुस्कराहट लाना, इसमें सुख है।

खुशी हमारे जीवन में सबसे बड़ा मायने वही रखती है, जो हमें सौ प्रतिशत आत्म-सन्तुष्टि प्रदान करे। कभी-कभी जो सुख और शान्ति छोटी वस्तु से प्राप्त होती है, वह बड़ी से नहीं। इसलिए हमें सदैव यह ध्यान रखना चाहिये कि हम छोटी और बड़ी सभी वस्तुओं की इज्जत करें, उन्हें महत्त्व दें तथा उनका जीवन में सही उपयोग भी करें। प्रत्येक व्यक्ति पर यह निर्भर होता है कि किसी भी वस्तु को वह अपने जीवन में किस रूप में तथा किस तरह से उपयोग में लाता है, जिसके परिणामस्वरूप लाभ-हानि तथा सुख-दुःख भी प्राप्त करता है। कोई व्यक्ति सबकुछ होते हुये भी उसकी ठीक से न तो कद्र कर पाता है, न कीमत समझ पाता है और न ही उसका जीवन में सदुपयोग ही कर पाता है। कोई व्यक्ति कुछ भी न के बराबर होने पर भी खुशी और सुख वह प्राप्त कर लेता है, जो एक धन-सम्पत्ति से सम्पन्न व्यक्ति कभी नहीं प्राप्त कर पाता।

हमें यह सदैव ध्यान रखना चाहिये कि प्रत्येक वस्तु का जीवन में उपयोग सन्तुलित मात्रा में हो, जिससे प्रयोग में लाई जाने वाली सभी चीजें उचित रूप से शारीरिक एवं मानसिक तौर पर लाभकारी सिद्ध हों। इच्छाओं का कोई अन्त नहीं होता, क्योंकि ये जितनी ही किसी चीज के प्रति व्यक्त की जाती हैं, उतनी ही और अधिक बढ़ जाती हैं। इसलिए इन्हें हमेशा नियन्त्रित रखना चाहिये। हमारा मूल उद्देश्य जीवन को सार्थक बनाने के लिए होना चाहिये। भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति अधिक आसक्ति नहीं होनी चाहिये, जितनी की आवश्यकता हो, केवल उतनी ही पर्याप्त है। जीवन का वास्तविक सुख एवं शान्ति कल्याणकारी कार्यों में निहित है, चाहे फिर वह स्वहित के लिये हो अथवा परहित के लिये।

पुत्री एस. पी. सिंह
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं. - 6392120510

सनातन : एक धर्मनिरपेक्ष धर्म

—डॉ. दिव्या सिंह—

अस्थिरं जीवितं लोके ह्यस्थिरे धनयौवने।
अस्थिराः पुत्रदाराश्च धर्मः कीर्ति यं स्थिरम्॥

इस जगत में धन, जीवन, यौवन अस्थिर हैं; पुत्र और स्त्री भी अस्थिर हैं। केवल धर्म और कीर्ति (ये दो ही) स्थिर है। और यही दो शाश्वत तत्व धर्म और कीर्ति ही सनातन संस्कृति के आधार हैं।

सनातन धर्म वस्तुत: कोई धर्म नहीं बल्कि शाश्वत जीवन दर्शन है। इसका भाव विग्रह सदा नूतन-सनातन किया जा सकता है, जो सदैव नवीनीकृत होता रहे, जो सार्वभौमिक और सर्वकालिक हो, जो ना कभी रूढ़ हो, ना ही अप्रासंगिक या अव्यावहारिक हो। सनातन धर्म किसी एक दार्शनिक, मनीषा या ऋषि के विचारों की उपज नहीं है, न ही यह किसी ख़ास समय पैदा हुआ। यह तो अनादि काल से प्रवाहमान और विकासमान रहा है। साथ ही यह केवल एक दृष्टा, सिद्धांत या तर्क को भी वरीयता नहीं देता। यही कारण है कि सनातन परंपराओं में विभिन्न मतों को पूर्ण सम्मान दिया गया है। वैदिक, आस्तिक, नास्तिक, साकार, निराकार, सविग्रह, अविग्रह, बौद्ध, जैन, चार्वाक, कर्मवाद, भाग्यवाद, एकेश्वरवाद, बहुदेववाद आदि सभी दर्शन सनातन हैं।

भारत एक धर्म प्राण राष्ट्र है। यद्यपि संवैधानिक और राजनीतिक स्तर पर इसे धर्मनिरपेक्ष के विशेषण से अलंकृत करने की कोशिश की गई है किंतु भारतीय चेतना की धर्मनिरपेक्षता इसके शब्द विन्यास से अलग है। धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है बनाए रखना, धारण करना या पुष्ट करना। छांदोग्य उपनिषद में इसका संबंध कर्तव्यों से जोड़ा गया है। वैशेषिक सूत्रों में धर्म की परिभाषा करते हुए कहा गया है जिससे आनंद (अभ्युदय) और परमानंद (निःश्रेयस) की प्राप्ति हो वह धर्म है। धर्म का शाब्दिक अर्थ होता है, 'धारण करने योग्य' सबसे उचित धारणा, अर्थात जिसे सबको धारण करना चाहिए। ऐसे में धर्मनिरपेक्ष हो जाने का अर्थ होगा 'योग्य' और 'उचित' का त्याग। यह हमारी बौद्धिक और आध्यात्मिक चेतना को निष्प्राण कर देगा। तो मूल प्रश्न यह है कि क्या भारत धर्मनिरपेक्ष है या इसे धर्मनिरपेक्ष होना चाहिए ?

अलौकिक पृष्ठभूमि में इन दोनों प्रश्नों के उत्तर सकारात्मक हैं, किंतु विशद विवेचन और गंभीर तर्क के बाद देखें तो उत्तर नकारात्मक होंगे। न तो भारत धर्मनिरपेक्ष है और न ही इसे

होना चाहिए। हाँ यह जानना अधिक महत्वपूर्ण है की धर्मनिरपेक्षता का मूल तत्व क्या है? और उससे भी पहले धर्म के मूल तत्व क्या है ? सनातन धर्म क्या है और हिंदू धर्म क्या है ?

प्रथमत: तो जानने योग्य यह है कि धर्म उपासना पद्धति का नाम नहीं है। यह मूर्ति पूजा, रीति-रिवाज, व्रत-त्योहार आदि का भी नाम नहीं है। मनुस्मृति में महर्षि मनु ने धर्म के 10 लक्षण गिनाए गए हैं:

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचं इन्द्रियनिग्रहः ।
धीविद्या सत्यं अक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।

(धृति (धैर्य), क्षमा (दूसरों के द्वारा किये गये अपराध को माफ कर देना, क्षमाशील होना), दम (अपनी वासनाओं पर नियन्त्रण करना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (अन्तरङ्ग और बाह्य शुचिता), इन्द्रिय निग्रहः (इन्द्रियों को वश मे रखना), धी (बुद्धिमत्ता का प्रयोग), विद्या (अधिक से अधिक ज्ञान की पिपासा), सत्य (मन वचन कर्म से सत्य का पालन) और अक्रोध (क्रोध न करना); ये दस धर्म के लक्षण हैं।)

धर्म के इन 10 लक्षणों को जीवन के व्यवहार में उतारने के लिए 10 साधन भी बताए गए हैं:

अथाहिंसा क्षमा सत्यं ह्रीश्रद्धेन्द्रिय संयमाः ।
दानमिज्या तपो ध्यानं दशकं धर्म साधनम् ।।

अहिंसा, क्षमा, सत्य, लज्जा, श्रद्धा, इंद्रियसंयम, दान, यज्ञ, तप और ध्यान – ये दस धर्म के साधन है। अतः इस प्रकार के आदर्श जीवन व्यवहार से अलग निरपेक्षता की संकल्पना ही अन्याय पूर्ण और अनुचित सी लगती है।

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैव अनुवर्त्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत् ।।

(धर्म का सर्वस्व क्या है, सुनो और सुनकर उस पर चलो ! अपने को जो अच्छा न लगे, वैसा आचरण दूसरे के साथ नही करना चाहिये।)

जो पक्षपात रहित न्याय सत्य का ग्रहण, असत्य का सर्वथा परित्याग रूप आचार हैं उसी का नाम धर्म और उससे विपरीत का अधर्म हैं। इस काम में चाहे कितना भी दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी चले ही जावें, परन्तु इस मनुष्य धर्म से पृथक कभी भी न होवें। अब यदि धर्म का अर्थ उक्त 10 आदर्शों का पालन करना है तो यह कैसे कोई कह सकता है कि हमें धर्मनिरपेक्ष हो जाना चाहिए।

भारतीय धर्मनिरपेक्षता न तो धर्म का निषेध है और न ही धर्म के प्रति तटस्थता का भाव। बल्कि यह सामंजस्य, समरसता, सहिष्णु और सर्वस्वीकार्यता का पर्याय है।

दूसरा विवेचन क्या भारतीय संविधान धर्मनिरपेक्षता का अर्थ धर्म तटस्थता आरोपित करता है ? 26 जनवरी 1950 को जिस संविधान को लागू किया गया और जिसने भारत को गणतंत्र घोषित किया, उसी संविधान की मूल प्रति पर नटराज भी हैं और श्रीकृष्ण भी। वहाँ शांति का उपदेश देते भगवान बुद्ध भी हैं और वैदिक यज्ञ संपन्न कराते ऋषि की यज्ञशाला भी। हिंदू धर्म के एक और अहम प्रतीक शतदल कमल भी संविधान की मूल प्रति पर मौजूद है। काल की छाती पर पैर रखकर नृत्य करते नटराज, कुरुक्षेत्र की रणभूमि में अर्जुन को गीता का उपदेश देते हुए श्रीकृष्ण और स्वर्ग से देवनदी गंगा का धरती पर अवतरण आदि का स्वाधीन भारत के संविधान की मूल प्रति पर उकेरा जाना, संसद भवन में लोकसभा स्पीकर के पीछे 'धर्मचक्र प्रवर्तनाय' लिखा होना आदि क्या धार्मिक तटस्थता है ? उक्त विवेचन से यह बड़ा स्पष्ट है कि भारत सदैव से एक धर्म प्राण देश रहा है। सुप्रीम कोर्ट का ध्येय वाक्य 'यतो धर्मस्ततो जयः' भी यही इंगित करता है कि भारतीय धर्म कोई विशेष उपासना पद्धति ना होकर जीवन दर्शन रहा है।

सनातन धर्म वर्तमान जीवी है। यह सत्य और ऋण का योग है। मनुष्य के स्वभाव में है कि वह अतीत वर्तमान और भविष्य तीनों एक साथ जिए बिना नहीं रह सकता। यहाँ अतीत से जुड़ने का अर्थ वर्तमान की संभावना का विस्तार होता है ना कि वर्तमान से पलायन। वैसे ही भविष्य की कल्पना वर्तमान को भ्रमित नहीं करती बल्कि वर्तमान के विस्तार की दिशा के रूप में स्वीकार करती है। वर्तमान केवल अतीत के सनातन शाश्वत मूल्य को भविष्यत की यात्रा के पाथेय के रूप में सौंपने वाला एक माध्यम है।

सनातन विश्व दृष्टि प्रकृति और मनुष्य में स्पर्धा के स्थान पर एक दूसरे के सहचर के रूप में देखता है। पाश्चात्य दर्शन के विपरीत सनातन दर्शन प्रकृति पर विजय नहीं बल्कि स्वयं पर विजय के साथ प्रकृति से सामंजस्य और समग्र अस्तित्व में परम सामंजस्य स्थापित करना ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है।

सनातन धर्म की समावेशी प्रकृति का दर्शन भारत के प्राचीन साहित्य में भी होता है। बौद्ध ग्रंथों में दशरथ जातक, महा जनक जातक आदि में रामकथा का होना, दशावतार ग्रुप में बुद्ध की गणना, आदि जैन तीर्थंकर ऋषभदेव का वैदिक साहित्य में उल्लेख, उपनिषदों में बौद्ध अनीश्वरवाद की संकल्पना, पारसी परंपरा अनुसार अग्नि और जल की पवित्रता उपासना, जैन धर्म के पंच महाव्रत का वैदिक साहित्य में उल्लेख, ईसाई और इस्लाम परंपरा के मूल तत्व निरंकार एकेश्वरवाद, सिख परंपरा के सत्संग गुरु भक्ति और नाम संकीर्तन आदि सभी परंपराएं इसी सनातन संस्कृति से नि:श्रित जान पड़ती हैं। तत्वत: देखें तो सनातन धर्म एक शाश्वत वृक्ष

की भांति है जिससे विश्व के सभी तथाकथित धर्म, परंपराएं और पूजा पद्धतियाँ पुष्पित और पल्लवित हुई हैं।

धर्मो मातेव पुष्णानि धर्मः पाति पितेव च।
धर्मः सखेव प्रीणाति धर्मः स्निह्यति बन्धुवत्॥

धर्म माता की तरह हमें पुष्ट करता है, पिता की तरह हमारा रक्षण करता है, मित्र की तरह खुशी देता है, और सम्बन्धियों की भाँति स्नेह देता है। ऐसे माता-पिता और मित्र सा व्यवहार करने वाले धर्म से अलग जीवन व्यापार सहज संकल्पना नहीं लगती। अतः निरपेक्षता की शब्दकोशीय परिभाषा से अलग, राजनीतिक सांप्रदायिकता से ऊपर उठकर सनातन मानव धर्म जो सभ्यता और संस्कृति के प्राणवत् है, का निष्ठा पूर्वक अनुशीलन करना ही श्रेयस्कर है।

प्रबंध निदेशिका
संत अतुलानंद रेजिडेंशियल अकैडमी
होलापुर, वाराणसी

देवभूमि हिमाचल प्रदेश

—पनमा डोलमा—

भारत की धरती का स्वर्ग हिमाचल।
सफेद बर्फ मखमली इसका आँचल॥

हिमाचल प्रदेश भारत के उत्तर में स्थित एक पहाड़ी राज्य है । जिसकी राजधानी शिमला है। हिमाचल प्रदेश का नाम आचार्य दिवाकर दत्त शर्मा ने रखा था । हिमाचल दो शब्दों से बना है। हिम+अंचल। हिम=बर्फ। अंचल=पहाड़। हिमाचल प्रदेश को 'देवभूमि' भी कहा जाता है क्योंकि इस क्षेत्र में आर्यों का प्रभाव ऋग्वेद से भी पुराना है। यहाँ हर जगह देवी-देवताओं का वास है। प्राचीन मंदिर व यहाँ की धार्मिक परम्पराएं हमेशा ही लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। यहाँ पर ही व्यास जी ने महाभारत की रचना की थी।

हि.प्र. का गठन 25 जनवरी 1971 को भारत के 18वें राज्य के रूप में हुआ था। इससे पहले यह 1857 तक महाराणा रंजित सिंह की देखरेख में पंजाब का हिस्सा हुआ करता था। जिस पर बाद में अंग्रेजों ने अधिकार स्थापित कर लिया था, लेकिन आजादी के बाद 1950 में इसे केंद्र शासित राज्य घोषित किया गया था, लेकिन 1971 में अलग राज्य का दर्जा मिला।

विकास के पथ पर हिमाचल निरंतर बढ़ता जाता।
50 वर्षों की मेहनत से अपनी अलग पहचान बनाता॥

हि.प्र. का यह पचास साल का सफर बहुत ही गौरवान्वित करने वाला रहा है, क्योंकि 1971 का हिमाचल बहुत ही पिछड़ा हुआ था। लेकिन इन पचास वर्षों में हिमाचल ने देश भर में कामयाबी के नए आयाम स्थापित किये हैं। आज और तब के हिमाचल में जमीन-आसमान का फर्क है।

आज के समय में हिमाचल प्रदेश के गाँव-गाँव में सड़कें तथा टावर पहुँच चुकी है । हाल ही में बनी अटल रोहतांग टनल हिमाचल प्रदेश के विकास का जीता-जागता उदाहरण है। विकास के इस सफर में हिमाचल प्रदेश लगातार स्वर्णिम युग की ओर बढ़ रहा है। इन पचास वर्षों में हिमाचल में उच्च शिक्षण चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध हैं। सरकारी कार्यों के डिजिटलीकरण में भी पीछे नहीं है।

न केवल अपने लिए बिजली का उत्पादन करता है, बल्कि अन्य राज्यों को भी बेचता है। देश में सबसे पहले ई-विधान प्रणाली लागू करने वाला राज्य हिमाचल है। इसी तरह न

जाने कितने कार्यों में हिमाचल प्रदेश सर्वोपरि रहा है। युवाओं के रोजगार हेतु भी विभिन्न योजनाएं लागू की जा रही हैं।

हिमाचल प्रदेश भारत देश का अद्भुत और सुन्दर राज्य है। हिमाचल में 12 जिले हैं। यहाँ की संस्कृति अन्य सभी राज्यों से भिन्न है। यहाँ की परंपरा बहुत प्राचीन है। हिमाचल वासियों ने देश भर में बड़ा नाम कमाया है। यहाँ पर रहने वाले लोग बहुत शांत स्वभाव, सहनशीलता तथा मेहनती होते हैं। यहाँ के कुछ लोग बौद्ध धर्म तथा कुछ हिन्दू धर्म को मानते हैं।

हिमाचल प्रदेश को भारत में पर्यटक का मुख्य स्थल भी माना जाता है। शिमला, कुल्लू-मनाली, लाहौल स्पीति, किन्नौर और धर्मशाला में लाखों लोग देश-विदेश से आते हैं और यहाँ की सुंदरता को अपने कैमरे में कैद करके ले जाते हैं।

उसके ऊपर मोहब्बत का बादल छा जाएगा।
जो एक बार घूमने हिमाचल आ जाएगा॥

यहाँ कांगड़ा जिले के धर्मशाला में बौद्धधर्म के गुरु परम पावन दलाई लामा जी निवास करते हैं। जिनके कारण अमेरिका, मलेशिया, जापान, चीन तथा अन्य देश-विदेश के लोग बौद्धधर्म को जानने के लिए आते हैं।

हिमाचल प्रदेश पहाड़ी इलाका होने के कारण यहाँ पर अधिक मात्रा में सेब, नाशपाती, बादाम, चिलगोजा, ओगला, अंगूर और अखरोट आदि फलों और ड्राई फूड्स के उत्पादन के लिए भी बहुत जाना जाता है।

किन्नौर जिला अपने हैंडलूम और हस्तशिल्प के सामानों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ से शॉल, टोपियाँ, मफलर, जुराब, लकड़ी की मूर्तियाँ और धातुओं से बना बहुत-सा सामान खरीदा जा सकता है। इतने सम्पन्न संस्कृति और गुणों से युक्त मेरा हिमाचल प्रदेश मुझे गर्व का अनुभव कराता है। इसकी विशेषता अगर बताते जाएं तो शायद एक साल भी कम पड़ जाए, परंतु मैं यहाँ पर समाप्त करती हूँ।

सच कहूँ तो किसी मोहब्बत से कम नहीं है।
ये हिमाचल भी किसी जन्नत से कम नहीं है॥

शास्त्री, प्रथम वर्ष
के.उ.ति.शि.सं, सारनाथ, वाराणसी

अविद्या का अर्थ

—विक्रमजीत—

संसार में अगर दुःखों का कारण खोजने लगे तो स्वयं के द्वारा उत्पन्न अहम के भाव द्वारा ही हम इस भव सागर में जन्मों-जन्मों तक इस विष रूपी सागर को अपना आवास समझकर उसके प्रति मोह में ग्रस्त होकर उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार जल के प्राणी के लिए जल ही जीवन होता है। उसकी शारीरिक संरचना जल के अनुकूल होती है। जल में जीवित रहकर अन्य प्राणियों से उसे विशेष बनाती है अगर उसी प्रकार अन्य थल में विचरण करने वाली जीवों की संरचनाएं भिन्न दिखाई देती हैं, उसी प्रकार आकाश में विचरण करने वाले जीवों की संरचनाएं जल और थल के प्राणी से भिन्न तथा विशेष होती है। बौद्धों में तीन लोकों के बारे में बताया गया है। कामलोक, रूपलोक, अरूपलोक कामलोक को छोड़ अन्य दोनों पर प्रकाश वही डालना चाहता। कामलोक में छः प्रकार के प्राणियों का अपने कर्मों के अनुसार सुगति और दुर्गति में उत्पन्न होता है। वे छह हैं सुगति के तीन देवलोक, असुरलोक, मनुष्यलोक और दुर्गति के शेष तीन लोक प्रेत और तिर्यक लोक इन छः जहाँ भी उत्पन्न हुए तो उसे कामलोक कहते हैं। अन्य दो लोक के बारे में पूर्व ही बतला चुका हूँ। इन तीनों लोकों में प्रायः जिसकी उत्पत्ति होती है, शेष दो लोक सुगत हैं। पुण्य संचय करने पर ही शेष दो लोकों में उत्पत्ति होना सम्भव होता है। ज्यादा नहीं प्रकाश डालूँगा, अन्य दो काफी गहरे विषय हैं, इसलिए देवताओं को छोड़कर जीवों में मनुष्य को श्रेष्ठ क्यों माना जाता है। आप सभी इससे परिचित होंगे। मेरा जो विषय है, उससे संबन्धित प्रकाश डालना चाहूँगा।

कितने ही महान् दार्शनिक इस भूलोक में उत्पन्न होकर सारी भू-लोक प्राणियों हेतु धर्म रूपी ज्ञान को दान में देकर समाज में व्यवस्था बनाए रखने का जो कार्य किया है, वह अत्यन्त ही अविस्मरणीय है, संसार में अनेक दर्शन की उत्पत्ति हुई तथा संसार से विलुप्त हो गई जो हमें इतिहास के किताबों दर्शनों के ग्रन्थों में स्पष्ट दिखाई देता है। अगर हम भारत में दर्शनों के विषय में बातें करें तो किसी समय भारत में 62 दर्शनों की चर्चा होती है। दर्शन अलग-अलग हुए उनकी मान्यताएं परस्पर एक-दूसरे से भिन्न थी, किन्तु दर्शनों का एक मात्र उद्देश्य दुःखों से मुक्त होना तथा उस सुख को प्राप्त करना है, सोये हुए चैतन्य को जगाकर ऐसी ज्ञान रूपी चक्षु का खोलना है जिसमें प्रत्येक प्राणी के लिए उसके दिल में प्रेम और परहित की भावना हो उस सुख को प्राप्त करना है, जिससे अपने आने वाली पीढ़ी को अध्यात्म के अमृत रूपी जल का सेवन कर सुख को प्राप्त करना है और पुण्य कार्य प्रेरित करना है तथा ऐसे पर्यावरण का निर्माण करना जिसमें सभी सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करे।

महावीर जैन जी कहते थे- जीयो और जीने दो। कितना सरल और सुखपूर्ण जीने की कला इस संसार को अपने दिव्य ज्ञान द्वारा पूरे संसार को कुशल कर्म करने को प्रोत्साहित किया है। जब तक सम्पूर्ण मानवजाति के चित्त में स्व और पर की भावना नष्ट नहीं होगी, वह सदैव अपने दुःख का कारण दूसरों को मानेगी। जिस प्रकार मनुष्य कोई भी हो और अन्य जीव वे सदैव सुख की अभिलाषी हैं। कौन दुःख को भोगना चाहता है। जिस प्रकार मैं दुःख को भोगना नहीं चाहता हूँ, अन्य भी उसी प्रकार सुख की अभिलाषी है तो मैं समझता हूँ कि आधा दुःख की जड़ यही पर समाप्त कर सकते हैं, जिस प्रकार समुद्र से उत्पन्न ज्वार भाटा। समुद्र में विलीन हो जाता है, ठीक उसी प्रकार हमारे दूसरे के लिए अहित की भावना उसी प्रकार समाप्त हो जाती है जिस प्रकार ज्वारभाटा।

ऐसे महान् पुरुष हुए हैं जो अपने मानव कल्याण की भावना कर सदैव प्राणियों का हित कर वे मनुष्य रूपी जीवन में देव समान तुल्य हुए। अन्य दर्शनों में भी कई ऐसे महान् उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, जिनके कृत्यों ने उन्हें देवता से अक्षुण्ण बना दिया है।

अविद्या का अर्थ- जिस प्रकार धम्मपद है-

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं व वहतो पदं।

अर्थात् सभी शारीरिक, वाचिक और चैतसिक कर्म पहले मन में उत्पन्न होते हैं। मन ही प्रधान है। अतः जब व्यक्ति सदोष मन से बोलता है व क्रिया करता है। कवट उसी प्रकार भोगता है जैसे बैलगाड़ी के पहिये बैलों के पैरों के पीछे-पीछे आते हैं।

जो परस्पर एक मनुष्य दूसरे मनुष्यों को कष्टों में देखने के लिए कितने कुकर्म करता है। ऐसे कर्मों को त्याग देना ही उत्तम है। सभी दर्शन के प्रवक्ता ने कभी ऐसा नहीं बोला होगा कि मनुष्य तुम अमनुष्य के समान विचरण करो। हमारी सनातन संस्कृति में गुरु-शिष्य की परम्परा अभी तक भूतकाल से लेकर चली आ रही है जो अत्यन्त अनोखी है। भारत की संस्कृति पूरे विश्व के लिए उदाहरण है जो मध्य के दार्शनिकों द्वारा भौतिक सुख-सुविधाओं के विषय में ज्यादा प्रकाश नडालकर किस प्रकार स्वयं को ईश्वर की भक्ति विलीन कर अपने योग साधना से संसार को अन्धकार के समान समझकर यह जान लेता है कि सभी वस्तुएं अनित्य हैं। भौतिक सुख-सुविधाओं का क्या लाभ। ज्ञान रूपी चक्षु के उत्पन्न होने पर वह संसार की भौतिक सुख-सुविधाओं को निःसार समझकर अन्य जो मनुष्य भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए कतने ही प्राणियों स्वयं के सुख हेतु असहनीय दुःखों का कारण बनता है। ऐसे क्रियाओं को त्याग कर परम आनन्द में विलीन होकर परम आनन्द का अनुभव करता है जो साधारण

जन नहीं कर पाता, इसलिए हमारे अन्दर के विकारों को पूर्णतः दमन करने के पश्चात् ही हम पूर्णतः सुख की प्राप्ति कर पाते हैं। योग-साधना में लिप्त वह योगी काम लोक में उत्पन्न होकर भी उस कमल के समान होता है जो कीचड़ में उत्पन्न होने पर भी मलों से रहित उपमा के नल पर आप सभी का ध्यान केन्द्रित इसलिये कर रहा हूँ, क्योंकि योगियों की साधना तथा ज्ञान है वह हम जैसे पृथक्जन नहीं समझ सकते। कीचड़ के कमल का उपमा देकर थोड़ा-सा भाव उत्पन्न हो जाए। कभी अगर हम 15 मिनट भी अन्तर्मुख होकर विचार करने लगे कि दुःख क्यों और किस प्रकार उत्पन्न हो रहा है। हम सदैव दूसरे व्यक्ति या अन्य प्राणियों को सभी दुःख का कारण समझते हैं। जिस प्रकार संत कबीर ने कहा-

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय॥

सभी प्रकार के दुःखों की जड़ अविद्या है जो हमें सदैव अकुशल कर्मों के लिए प्रेरित करती है। पुनः धम्मपद में कहा है-

दिसो दिसं यन्तं कयिरा वेरी वेरी वा पन वेरिनं।
मिच्छा पणिहितं चित्तं पापियो न ततो करे॥

अर्थात् जितना हानि शत्रु शत्रु की वैरी वैरी की करता उससे कहीं अधिक बुराई कुमार्ग पर लगा चित्त करता है।

उपमा के द्वारा स्पष्ट करना चाहूँगा। जिस प्रकार अगर हम जान लें कि हमारे घर के भीतर एक विषैला सर्प आपके विस्तर पर कुण्डली लगाये बैठा है तब आप कभी भी चेष्टा नहीं करेंगे कि उस कमरे के भीतर पूरी रात उस विषैले सर्प के साथ पूरी रात व्यतीत करें। आपके अन्दर साहस ही उत्पन्न नहीं होगा। उसी प्रकार हमारे भीतर अज्ञान रूपी अविद्या राग, द्वेष, मोह उस विष रूपी सर्प के समान हैं जो किसी भी क्षण आपको अहित कर सकता है। ठीक उसी प्रकार हम सदैव विष रूपी सर्प (अकुशल चित्त) से सदैव बचने का प्रयत्न करना चाहिए तथा चित्त को सदैव कुशल कर्मों के लिए प्रेरित करना चाहिए।

शास्त्री, प्रथम वर्ष
के.उ.ति.शि.सं, सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 7607737785

क्रोध के दुष्परिणाम

—एस. पी. सिंह—

क्रोध के आ जाने से इंसान के साथ क्या-क्या होता है ।
ठीक कुछ भी होता नहीं, सब उल्टा-सीधा ही होता है ।।1।।

क्रोध में इंसान भड़क जाय, तो केवल बुरा ही होता है ।
औरों की क्या बात करें, वह खुद को भी मिटा लेता है ।।2।।

क्रोध में इंसान जब मानसिक सन्तुलन खो देता है ।
गलत-सही की फिक्र नहीं, जो मन में आये करता है ।।3।।

क्रोध अग्नि से तेज है, जब विकराल रूप धर लेता है ।
घर-समाज और देश क्या, सारा विश्व तबाह कर देता है ।।4।।

क्रोध अधिक होने से ही, घातक रोगों का जन्म होता है ।
यह भय, शंका और अप्रिय सोच-विचार से भी होता है ।।5।।

क्रोध मात्र का शमन-दमन, शान्त-चित्त कर सकता है ।
शान्त-चित्त ही केवल उसको, अपने वश कर सकता है ।।6।।

क्रोध तुरन्त आ जाता है जब, अप्-शब्द चोट कर जाता है ।
किसी के लिए कुछ किया-धरा, सब मिट्टी में मिल जाता है ।।7।।

क्रोध से ही मानव मानव में, क्षण में विवाद छिड़ जाता है ।
अति घनिष्ठ रिश्ता होकर भी, वह टूट-बिखर जाता है ।।8।।

क्रोध में जब इंसान कभी, पागल-शैतान बन जाता है ।
लोक-लाज मर्यादा तक की, सीमायें पार कर जाता है ।।9।।

क्रोध विनाश की जड़ है, अधिक बढ़ जाय तो घातक है ।
हर मानव में रंजिश है करता, हर कार्य में यह बाधक है ।।10।।

क्रोध चित्त को विक्षिप्त करे और तन के लिए विकारक है ।
जीवन में यह विष घोले, सब जनों हेतु दुःखदायक है ।।11।।

क्रोध इंसान की बुद्धि-विवेक को जीर्ण-क्षीण कर देता है ।
क्या कहना है क्या करना है, इसकी सुध-बुध खो देता है ।।12।।

क्रोध प्रगाढ़मय प्रेम को, क्षण में विषमय बना देता है ।
प्रबल ताप की तपन से यह, तन-मन को भस्म कर देता है ॥13॥

क्रोध से जिस प्राणी का, जब पतन करीब आ जाता है ।
तब उससे बचने का कोई, जतन नजर नहीं आता है ॥14॥

क्रोध सभी संगी-साथी को, गैरी-वैरी तक बना देता है ।
मिले-जुले कुछ खास रिश्तों में, यह मतभेद करा देता है ॥15॥

क्रोध किसी का हुआ नहीं और न ही हित यह करता है ।
न्याय-नीति-सत्कर्म आदि, मन से विनष्ट भी करता है ॥16॥

क्रोध कभी मानव-जीवन का, आधार नहीं हो सकता है ।
जो जितना पीता है इसको, उतना ही वह घुटता-मरता है ॥17॥

क्रोध सदा अशान्ति फैलाता, जन-जन में क्रान्ति लाता है ।
पल में खुशी नाखुशी में बदले, ऐसा जंजाल बिछाता है ॥18॥

क्रोध से ही प्रतिशोध-भावना का प्रादुर्भाव हो जाता है ।
बुद्धि का विपरीत हो जाना, ऐसा स्वभाव हो जाता है ॥19॥

क्रोध से ग्रसित मानव-जन, जब दया-धर्म खो देता है ।
दुष्कर्म का भोगी बन वह, अशिष्ट व्यवहार निभाता है ॥20॥

क्रोध के वश इंसान यहाँ, कितने ही उत्पात मचाता है ।
लड़ाई-झगड़े इतने होते कि, वह हिंसा तक कर जाता है ॥21॥

क्रोध से केवल हानि ही होती, क्यों इंसा जान न पाता है ।
ईर्ष्या-द्वेष और वैमनस्यता का, आदी बनता जाता है ॥22॥

क्रोध को जो शान्त कर, धैर्य से जीना सीख जाता है ।
वही व्यक्ति चैन से रहता, जीवन सुखमय हो जाता है ॥23॥

प्रकाशन अनुभाग
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8173885582

मन के आँगन का कोना फिर भी रोता है

—विश्वप्रकाश त्रिपाठी—

जब साथ तुम्हारा छूटा वर्षों बीत गए,
थे स्वप्न हमारे जाने कितने टूट गए ॥
तुम थे तो लगता था तुम हो जीवन मेरा,
हो दूर नहीं रह पाएगा यह तन मेरा ॥
लेकिन तुमको जाना था तुम तो चले गए,
उस क्रूर काल के हाथों से हम छले गए ॥
निःस्तब्ध हुए सब रोम खड़े सिहरे-सिहरे,
हम बेबस और लाचार रहे बस हाथ धरे ॥
कुछ दिन ना सोया कुछ दिन बस बीता रोते,
लगता था हम भी काश तुम्हारे संग होते ॥
पर धीरे-धीरे सीख लिया दुःख को सहना,
इस मन ने मेरे का लिया तुम बिन रहना ॥
धीरे-धीरे यादें धुँधली हो जाती हैं,
मन की पीड़ा कुछ मद्धम सी हो जाती है ॥
यह समय सभी जख्मों को सी ही देता है,
मन के आँगन का कोना फिर भी रोता है ॥
मन के आँगन का कोना फिर भी रोता है ॥

शोध सहायक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9455925269

कोरोना समय

(कविता)

—प्रो. मंजुला चतुर्वेदी—

प्रस्तुत कविताएं कोरोना समय की त्रासदी, विभीषिका, संवेदना, भय और दर्द को समेटे हुए जीवन की सहज अभिव्यक्ति प्रस्तुत करतीं हैं। मानव मन प्रकृति के विविध रंगों और रूपों को पूर्ण उजास के साथ जीना चाहता है, सामाजिकता के स्वरों को संभालते हुए। मन की यह आंतरिक लय कोरोना समय में बार-बार विखंडित हुई। जीवन ने जब गाय की ठहरी आंखों की तरह समय के सच को देखा तो एक महाशून्य उभर कर आया और लेखनी बरबस कह उठी "समय बहुत बलवान"। कोरोना समय की सांसों और आंसुओं को प्रस्तुत करती हैं ये कवितायें :-

कोरोना समय-1

कोरोना समय में
बसंत महका
न पंछी चहका
देहरी के आर न पार

सहमी रातरानी
आकाशकामिनी सिमटी
डालियां बाहों सी
बेचैन रहीं रात- बिरात

ओझल हुईं परछाइयां
सूर्य चलता रहा
चुभता रहा समय
सुइयों सा दिन- रात

दीवारों में कैद
अकेले और समूह में
हम जीते रहे मर- मर के
जीवन के होने न होने के बीच

भयाक्रांत मन नयन
दूर हुए दर्पण से
बुझ गया हास्य
गरीब के चूल्हे बुझने
और संवेदनाओं के
पुलिन ढहने के साथ
सामाजिक दूरियों के साथ

कोरोना समय-2

बीती रात
एक चादर जो मिली
ओढ़ने बिछाने की
उसमें भी दर्ज था
गुणा-गणित

ओढ़ सकी उसे
न बिछा सकी
यूं ही बीती रात

भोर के समाचार
टांकते रहे मन में

अनहोनी के फूल
और गिरती रहीं
किसलयों पर
अनिश्चय की बूंदे

घड़ी पर टिकी
मेरी आंखें
देखती रहीं एकटक
बजे थे तीन-तेरह
हाल बेहाल
कोरोना काल

कोरोना समय-3

मेरी आंखें
गाय की ठहरी
आंखों की तरह
देखती हैं आज
आसमान का सच
घटित होता कलरव
संवराया सूर्य
बुझते हुए तारे

विदा गीत गाते

अंकित करती है उंगलियां
एक महाशून्य
कोरोना काल का
श्वेत और श्याम
डूबते मन प्राण

कोरोना समय-4

कोरोना समय में
थम सी गई है सांसे
खो गए हैं कहीं हम
और रंग सारे
हमारे आसपास के

खंडित है स्वप्न मेखला
भर रही है कला ,कल्पना
सिसकियां अनवरत
आज, अपूर्ण विराम की

फिर भी सूर्यास्त के पूर्व
छत पर जाकर वह
समेटना चाहती है
आसमान से शेष रंग
जीने के लिए

कि डरती है वह
काले घटाटोप अंधेरे से
और आसन्न मृत्यु की
संभावनाओं के शोर से

आखिर स्त्री है वह
रत्नगर्भा
जिसने रची है यह
सृष्टि सारी
सुंदर औ सुकुमार

कोरोना समय-5

कोरोना काल में
छटपटाते से हम
धरती के गर्भ में
एक बीज की मानिंद
अंकुरण की चाहना लिए

हमारी शिराएं धमनियां
चाहती रहीं धूप हवा
प्रकृति सानिध्य
जीवन की व्यापकता के साथ

छतें दीवारें
धरती न आसमान
जीवन के सुर झूठे
सच कहते
समय बहुत बलवान

कोरोना समय-6

तितली बैठी
चौखट पर मेरी
ढूंढती रंग
न जानती कि रंग सारे
लापता हुए इन दिनों

कि आज फिर
हवस का शिकार हुई
एक कली, खिलने से पहले
अनगिन स्वप्न
और रंग उजरने की चाह लिए
यहां मैं असंख्य चेहरे लिए
आधी आबादी के
बैठी मौन
उकेरती उन्हें कोयले की
चंद लकीरों से

फिर काटती रही दुख
किलकिल कांटे से
अंतहीन खेल के
खत्म होने के
यक्ष प्रश्न के साथ

पूर्व विभागाध्यक्ष, फाईन आर्ट्स
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
मो.नं.- 94154 51218

अब वो पहले वाली बात नहीं रही

—दोरजे कलज़ंग—

अब वो मिठास नहीं रही,
अब वो पहले वाली बात नहीं रही,
बिन पतझड़ ही पत्ते मुरझा गये हैं,
न जाने दीमक कैसे दीवारों को खा गये हैं....
अब जंग लग गया हैं जड़ों में शायद,
तभी पस्त होने की लगी हैं कवायद,
अब तारों भरी वो रात नहीं रही,
अब वो पहले वाली बात नहीं रही....
रास्ते में पड़े पत्थर पहाड़ बन गए हैं,
हाथ पकड़ के तिनके झाड़ बन गए हैं,
आकाश में ही खो गए हैं बादल,
गायब है उन कस्तूरी हिरणों का दल,
अब वो मधुर मादक राग नहीं रही,
अब वो पहले वाली बात नहीं रही....
चार दिन की चाँदनी की चमक में,
सारे नीव दांव पर लग गए हैं,
दुनिया को गुमराह करने की सनक में,
अब सारे हाय जज़्बात मर गए हैं,
अब तारों भरी वो रात नहीं रही,
अब वो पहले वाली बात नहीं रही....

आचार्य, द्वितीय वर्ष
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी

बस इतना चाहती है जिंदगी

—अमित कुमार विश्वकर्मा—

पटरी पर दौड़ती रेल को लाल झंडी की तरह,
तूफान मे खडखड़ाती खिड़की मे कुंडी की तरह,
बस एक पल फुरसत चाहती है जिंदगी।

रेगिस्तान मे उड़ते बवंडर के बाद की खामोशी की तरह,
आँधियों मे कांपते पत्तों के टूट के गिर जाने की तरह,
बस थम जाना चाहती है ज़िंदगी।

धूप के लंबे सफर के बाद छाँव में बैठे मुसाफिर की तरह,
जेठ की तपती जमीन पर सावन की पहली बूंद की तरह,
बस सुकून चाहती है जिंदगी।

अंडे से निकलते पंछी के बच्चों की पहली सांस की तरह,
सूरज की पहली किरन को देख कर मुस्कुराते फूलों की तरह,
बस जीना चाहती है जिंदगी।

कार्यालय सहायक
आतंरिक गुणवत्ता आश्वासन प्रकोष्ठ
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8419020091

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की गतिविधियाँ
(वर्ष 2021-2022)

दिनांकः 24.12.2021 को केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान के माननीय कुलपति महोदय की अध्यक्षता में आयोजित राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक।

समाचार सार

अपनी भाषा से प्रेम करना चाहिए : प्रो. वांगचुक

वाराणसी : सारनाथ स्थित उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान के कुलपति प्रो. वांगचुक दोरजे नेगी ने कहा कि हिंदी हमारी राजभाषा व राष्ट्रभाषा है। हमें अपनी भाषा से राष्ट्रगान व राष्ट्रध्वज की तरह ही प्रेम करना चाहिए। वे राजभाषा कार्यान्वयन समिति की ओर से शनिवार को संस्थान में मानक देवनागरी लिपि, हिंदी वर्तनी का मानकीकरण व व्याकरण संबंधी भूले तथा निराकरण पर आयोजित कार्यशाला को संबोधित कर रहे थे। कहा कि भाषा समय के साथ नए शब्दों को ग्रहण करते चलती है। उन्होंने प्रतिभाग करने वाली को प्रमाण पत्र प्रदान किया। मुख्य वक्ता प्रो. बीआर त्रिपाठी ने वर्तनी की त्रुटियों पर प्रकाश डाला। विशिष्ट वक्ता प्रो. राम सुधार सिंह ने कहा कि भाषा का पैमाना उसका व्याकरण होता है। संचालन डा. अनुराग त्रिपाठी, धन्यवाद ज्ञापन राजेश कुमार मिश्र व स्वागत डा. सुशील कुमार सिंह ने किया। कार्यशाला में कुलसचिव डा. हिमांशु पांडेय, प्रमोद कुमार सिंह, सुनील कुमार, डा. रामजी सिंह, डा. शुचिता शर्मा, डा. अनिमेष प्रकाश सहित बड़ी संख्या में शिक्षक, कर्मी व छात्र-छात्राएं मौजूद थी। (जाग)

दिनांक 25.12.2021 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में व्याख्यान देते हुए संस्थान के माननीय कुलपति प्रो. वङ्छुक दोर्जे नेगी

दिनांक 25.12.2021 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में मंचासीन माननीय कुलपति प्रो. वङ्छुक दोर्जे नेगी एवं प्रो. बाबूराम त्रिपाठी तथा व्याख्यान देते हुए डॉ. रामसुधार सिंह

दिनांक 13-14 नवम्बर, 2021 को आयोजित अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन के प्रतिभागियों को प्रमाणपत्र प्रदान करते हुए माननीय कुलपति

दिनांक 25.12.2021 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में दीप प्रज्ज्वलित करते हुए माननीय कुलपति प्रो. वङ्छुक दोर्जे नेगी एवं कुलसचिव डॉ. हिमांशु पाण्डेय

दिनांक 25.12.2021 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में मंचासीन (दाऐं से बाऐं) डॉ. हिमांशु पाण्डेय कुलसचिव, माननीय कुलपति प्रो. वङ्छुक दोर्जे नेगी, प्रो. बाबूराम त्रिपाठी, डॉ. रामसुधार सिंह एवं संचालन करते हुए डॉ. अनुराग त्रिपाठी

दिनांक 29.12.2021 को आयोजित नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, वाराणसी की बैठक में संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्यों ने कुलपति जी की अध्यक्षता में आभासी माध्यम से सहभागिता की।

दिनांक 31.12.2021 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में व्याख्यान देते हुए संस्थान के सहायक कुलसचिव श्री प्रमोद सिंह

दिनांक 31.12.2021 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में व्याख्यान देते हुए प्रो. श्रद्धानन्द

26 जनवरी, 2022 को 73 वें गणतन्त्र दिवस के पावन अवसर पर केंद्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी के माननीय कुलपति प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी जी द्वारा शान्तरक्षित ग्रंथालय के सामने ध्वजारोहण किया गया। ध्वजारोहण के उपरान्त माननीय कुलपति महोदय द्वारा संस्थान की राजभाषा पत्रिका **"बोधिप्रभ"** का लोकार्पण किया गया।

दिनांक 24.02.2022 को आयोजित कार्यशाला में मंचासीन निदेशक / राजभाषा डॉ. आर. रमेश आर्य, कुलपति प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी एवं कुलसचिव डॉ. हिमांशु पाण्डेय

कार्यशाला का एक दृश्य

कार्यशाला का एक दृश्य

दिनांक 14.02.2022 को कार्यशाला में व्याख्यान देते निदेशक, राजभाषा, संस्कृति मंत्रालय डॉ. आर. रमेश आर्य

दिनांक 25.2.2022 को बी.एड. के छात्रों की कार्यशाला में निदेशक (राजभाषा), संस्कृति मंत्रालय को पुष्पगुच्छ प्रदान करते हुए कुलसचिव डॉ. हिमांशु पाण्डेय

दिनांक 25.2.2022 को बी.एड. के छात्रों को संबोधित करते कुलसचिव डॉ. हिमांशु पाण्डेय, निदेशक (राजभाषा) डॉ. आर. रमेश आर्य एवं डॉ. अनुराग त्रिपाठी

बी.एड. के छात्रों की कार्यशाला का एक दृश्य

बी.एड. के छात्रों के साथ निदेशक (राजभाषा) संस्कृति मंत्रालय श्री आर. रमेश आर्य के साथ ग्रुप फोटो

शान्तरक्षित ग्रंथालय का अवलोकन करते निदेशक (राजभाषा), संस्कृति मंत्रालय श्री आर. रमेश आर्य, सामने प्रभारी ग्रंथालय प्रो. टशी छेरिंग (एस) एवं श्री आर.के. मिश्र प्रलेखन अधिकारी

दिनांक 24.02.2022 को एक दिवसीय हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें डॉ. आर. रमेश आर्य, निदेशक, रा.भा., संस्कृति मंत्रालय द्वारा राजभाषा संबंधी विभिन्न विषयों पर वयाख्यान दिया और दिनांक 25.02.2022 को निदेशक डॉ. आर्य द्वारा संस्थान के विभिन्न विभागों का निरीक्षण किया गया।

दिनांक 23.03.2022 को केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान में माननीय कुलपति महोदय की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक संपन्न हुई।

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी

राजभाषा कार्यान्वयन समिति

द्वारा

राजभाषा सप्ताह समारोह-2022 का आयोजन

(दिनांक 26 सितम्बर, 2022 से दिनांक 01अक्टूबर, 2022 तक)

संस्थान सें सामान्य रूप से राजभाषा सप्ताह समारोह का आयोजन हिंदी दिवस अर्थात् 14 सितम्बर से किया जाता है, परन्तु इस वर्ष गृह मंत्रालय के आदेशानुसार हिंदी दिवस का आयोजन 14 सितम्बर, 2022 को सूरत (गुजरात) में किया गया । तदुपरान्त संस्थान के राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा दिनांक 26 सितम्बर, 2022 से दिनांक 01अक्टूबर, 2022 तक) अपराह्न 2.30 बजे से संस्थान में राजभाषा सप्ताह समारोह आयोजित किया गया, जिसके अंतर्गत निम्नलिखित कार्यक्रम आयोजित किए गए:-

हिंदीमय वातावरण तैयार करने एवं प्रेरणाप्रद वातावरण बनाने के उद्देश्य से राजभाषा सप्ताह समारोह के शुभारम्भ से दो दिन पूर्व ही प्रमुख विद्वानों एवं राजनेताओं के हिंदी विषयक विचारों की स्टैंडी बनवाकर आकर्षक ढंग से संस्थान के सभी प्रमुख भवनों के प्रवेश द्वार पर प्रदर्शित कर दिया गया तथा राजभाषा सप्ताह का बैनर भी लगवाया गया ।

माननीय गृह एवं सहकारिता मंत्री श्री अमित शाह की अध्यक्षता में दिनांक 14-15 सितम्बर 2022 को सूरत में आयोजित द्वितीय राजभाषा सम्मेलन में भाग लेने गए डॉ. संजय कुमार सिंह, सदस्य सचिव नराकास, श्री भगवान पाण्डेय, राजभाषा परामर्शी, डॉ. अनुराग त्रिपाठी, सदस्य सचिव, रा.का.स. एवं श्री विजय प्रताप सिंह

राजभाषा सप्ताह समारोह का उद्घाटन एवं संगोष्ठी- दिनांक:26.09.2022(अपराह्न)

सर्वप्रथम माननीय कुलपति, कुलसचिव एवं अतिथि वक्ताओं द्वारा माँ सरस्वती की प्रतिमा पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्ज्वलन किया गया। तदुपरान्त अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं वक्ताओं को भोट परम्परा के अनुसार खतक एवं साथ ही पौधे देकर स्वागत किया गया एवं माननीय कुलपति प्रो. गेशे ङवङ् समतेन ने राजभाषा सप्ताह का उद्घाटन किया। उक्त अवसर पर राजभाषा संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें **वैश्वीकरण और हिंदी की दशा** विषय पर मुख्य वक्ता-के रूप में श्री विश्व भूषण मिश्रा, अपर आयुक्त (राजस्व), वाराणसी एवं विशिष्ट वक्ता के रूप में श्री राजेश गौतम, कार्यक्रम प्रभारी (आकाशवाणी एवं दूरदर्शन) ने विचार व्यक्त किये। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए माननीय कुलपति महोदय ने कहा कि हिंदी का प्रयोग उत्तरोत्तर विकास के पथ पर अग्रसर है एवं आज बाजारवाद के युग में हिंदी शीघ्र ही विश्वभाषा के रूप में उभरकर सामने आएगी। कार्यक्रम का संचालन डॉ. अनुराग त्रिपाठी, स्वागत संबोधन डॉ. सुशील कुमार सिंह एवं धन्यवाद ज्ञापन श्री आर. के. मिश्रा द्वारा किया गया।

राजभाषा संबंधी निरीक्षण-दिनांक: 27.09.2022 (पूर्वाह्न)

पूर्वाह्न में कार्यालयों में राजभाषा की स्थिति जैसे- नाम पट्ट, सूचना पट्ट एवं पाइलों में टिप्पणियाँ तथा वहाँ हो रहे कार्यों मे राजभाषा के प्रयोग की स्थिति के संबंध में जायजा लेने के लिए प्रकाशन विभाग का निरीक्षण किया गया एवं आवश्यक सुझाव दिए गए।

राजभाषा कार्शाला का आयोजन-दिनांक: 27.09.2022 (अपराह्न)

दिनांक 27.09.2022 को अपराह्न अतिथि वक्ताओं द्वारा माँ सरस्वती की प्रतिमा पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्ज्वलन किया गया। तदुपरान्त श्रेष्ठ जनों को भोट परम्परा के अनुसार खतक एवं पौधे देकर स्वागत किया गया। श्री आर. के. मिश्रा, प्रलेखन अधिकारी की अध्यक्षता में राजभाषा के प्रयोग में झिझक दूर करने के लिए **पारिभाषिक शब्दावली एवं मशीनी अनुवाद** विषय पर हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें डॉ. संजय कुमार सिंह, वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी, बरेका. ने **पारिभाषिक शब्दाली** पर विस्तार से चर्चा की एवं पारिभाषिक शब्दावली बनाने, अन्य भाषाओं के प्रचलित मूल शब्दों को यथास्थिति लिप्यंतरित कर उन्हें ग्रहण करने के संबंध में जानकारी दी। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए श्री आर. के. मिश्र, प्रलेखन अधिकारी ने **मशीनी अनुवाद** की बारिकियों का उल्लेख करते

हुए कहा कि मशीनी अनुवाद से सहयोग लेकर, उसमें सुधार कर कम समय में अच्छा अनुवाद किया जा सकता है और उस तरह के अभ्यास की आवश्यकता है। कार्यक्रम का संचालन डॉ. अनुराग त्रिपाठी, स्वागत संबोधन डॉ. सुशील कुमार सिंह एवं धन्यवाद ज्ञापन श्री सुनिल कुमार द्वारा किया गया।

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक-दिनांकः 28. 09.2022 (अपराह्न)

दिनांक 28.09.2022 को अपराह्न माननीय कुलपति प्रो. गेशे ङवङ् समतेन की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक का आयोजन किया गया, जिसमें राजभाषा वार्षिक कार्यक्रम 2022-2023 में निर्धारित लक्ष्यों, तिमाही रपट के मदों एवं

संसदीय राजभाषा समिति की प्रश्नावली के मदों पर चर्चा हुई । अध्यक्ष महोदय ने लक्ष्यों को शीघ्र पूरा करने का आदेश दिया। कार्यक्रम का संचालन डॉ अनुराग त्रिपाठी, स्वागत संबोधन डॉ. सुशील कुमार सिंह एवं धन्यवाद ज्ञापन श्री टी. आर. शासनी द्वारा किया गया।

राजभाषा के प्रयोग के संबंध में डेस्क प्रशिक्षण- दिनांकः 29. 09.2022 (पूर्वाह्न)

दिनांक 29.09.2022 को पूर्वाह्न में प्रशासनिक विभाग के कार्मिकों को राजभाषा के प्रयोग के संबंध में डेस्क प्रशिक्षण दिया गया एवं उन्हें फाइल कवरों पर विषय, रजिस्टरों मे प्रविष्टियाँ, द्विभाषी मुहरों एवं राजभाषा अधिनियम की धारा-3(3) आदि के संबंध में जानकारी दी गई।

वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन- दिनांकः 29. 09.2022(अपराह्न)

दिनांक 29.09.2022 को अपराह्न गणमान्य व्यक्तियों द्वारा माँ सरस्वती की प्रतिमा पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्ज्वलन किया गया । अध्यक्ष एवं निर्णायकों को भोट परम्परा के अनुसार खतक एवं पौधे देकर उनका स्वागत किया गया। प्रो. धर्मदत्त चतुर्वेदी की अध्यक्षता एवं प्रो. रामसुधार सिंह, श्री टी. आर. शाशनी तथा श्री प्रमोद सिंह के निर्णायकत्व में वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसमें संस्थान के कार्मिकों ने उत्साह पूर्वक भाग लिया एवं प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय स्थान की घोषणा की गई। कार्यक्रम का संचालन

डॉ. सुशील कुमार सिंह, स्वागत संबोधन डॉ. ज्योति सिंह एवं धन्यवाद ज्ञापन श्री टी. आर. शाशनी द्वारा किया गया।

यूनिकोड एनेबिलिटी की जाँच- दिनांकः 30. 09. 2022 (पूर्वाह्न)

दिनांक 30.09.2022 को पूर्वाह्न में प्रशासनिक कार्यों में लगे कम्प्यूटरों में यूनिकोड एनेबिलिटी की जाँच की गई एवं शीघ्र ही शेष कम्प्यूटरों पर यूनिकोड एनेबल कराने पर बल दिया गया।

मौखिक प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन- दिनांक 30. 09. 2022 (अपराह्न)

दिनांक 30.09.2022 को गणमान्य व्यक्तियों द्वारा माँ सरस्वती की प्रतिमा पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्ज्वलन किया गया। तदुपरान्त अध्यक्ष एवं निर्णायकों को भोट परम्परा के अनुसार खतक एवं साथ ही गमले में पौधे देकर स्वागत किया गया। डॉ. हिमांशु पाण्डेय, कुलसचिव की अध्यक्षता एवं श्री आर. के. मिश्रा तथा श्री सुनिल कुमार के निर्णायकत्व में मौखिक प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसमें श्री भगवान पाण्डेय, राजभाषा परामर्शी द्वारा राजभाषा, हिंदी एवं सम-सामयिक विषयों पर प्रश्न पूछे गए तथा प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय स्थान का निर्णय किया गया। स्वागत संबोधन- डॉ. अनुराग त्रिपाठी, संचालन- डॉ. सुशील कुमार सिंह एवं धन्यवाद ज्ञापन डॉ. रामजी सिंह द्वारा किया गया।

पुरस्कार वितरण एवं कवि सम्मेलन का आयोजन- दिनांकः 01.10. 2022 (अपराह्न)

दिनांक 01.10. 2022 को अपराह्न प्रो. गेशे ङवङ् समतेन, माननीय कुलपति महोदय की अध्यक्षता एवं श्री के. सत्यनारायण पुलिस महानिरीक्षक (वाराणसी परिक्षेत्र) के मुख्य आतिथ्य में पुरस्कार वितरण एवं कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। सर्वप्रथम उक्त अवसर पर गणमान्य व्यक्तियों द्वारा माँ सरस्वती की प्रतिमा पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्ज्वलन किया गया। तदुपरान्त गणमान्य व्यक्तियों को भोट परम्परा के अनुसार खतक एवं अंग वस्त्र तथा पौधे देकर स्वागत किया गया। उक्त अवसर पर मुख्य अतिथि ने सभी भाषाओं के सम्मान पर बल देते हुए राजभाषा के प्रयोग पर बल दिया। अपने अध्यक्षीय संबोधन में

माननीय कुलपति महोदय ने अन्य भाषा के शब्दों को ग्रहण करते हुए हिंदी को समृद्ध करने एवं वार्षिक कार्यक्रम में निर्धारित लक्ष्य को पूरा करने पर बल दिया। कार्यक्रम में राजभाषा की विभिन्न प्रतियोगिताओं में स्थान प्राप्त करने वाले 14 कार्मिकों को पुरस्कृत किया गया।

सप्ताह समारोह के समापन के अवसर पर एक भव्य कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें डॉ. हरिनारायण सिंह हरीश, श्री आर. के. मिश्रा, डॉ. प्रकाश उदय, श्री कुमार प्रवीण, श्री सिद्धनाथ शर्मा, श्री प्रसन्न बदन चतुर्वेदी, श्री ब्रजेश चन्द्र पाण्डेय आदि कवियों ने कविता पाठ किया। उक्त कार्यक्रम में स्वागत संबोधन- डॉ. अनुराग त्रिपाठी, संचालन- प्रो. रामसुधार सिंह एवं धन्यवाद ज्ञापन डॉ. रमेश चन्द्र नेगी द्वारा किया गया।

प्रथम अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन, वाराणसी

(दिनांक 13-14 नवम्बर, 2021)

दिनांक 13-14 नवम्बर 2021 को हस्तकला संकुल, वाराणसी में आयोजित प्रथम राजभाषा सम्मेलन में संस्थान के छात्रों के साथ गृह राज्यमन्त्री श्री अजय कुमार मिश्र

माननीय गृह राज्य मन्त्री श्री अजय कुमार मिश्र से चर्चा करते हुये डॉ. अनुराग त्रिपाठी, डॉ. ज्योति सिंह एवं अन्य

गृह राज्यमन्त्री के साथ डॉ. शुचिता शर्मा

गृह राज्यमन्त्री के साथ डॉ. अनुराग त्रिपाठी

भारत के संविधान में राजभाषा से संबंधित
अनुच्छेद 120 एवं 210

अनुच्छेद 120. संसद में प्रयोग की जाने वाली भाषा -

1. भाग 17 में किसी बात के होते हुए भी, किंतु अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संसद में कार्य हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा;

   परंतु, यथास्थिति, राज्य सभा का सभापति या लोक सभा का अध्यक्ष अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो हिंदी में या अंग्रेजी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृ-भाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।

2. जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो "या अंग्रेजी में" शब्दों का उसमें से लोप कर दिया गया हो।

अनुच्छेद 210: विधान-मंडल में प्रयोग की जाने वाली भाषा -

1. भाग 17 में किसी बात के होते हुए भी, किंतु अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य के विधान-मंडल में कार्य राज्य की राजभाषा या राजभाषाओं में या हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा;

   परंतु, यथास्थिति, विधान सभा का अध्यक्ष या विधान परिषद का सभापति अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो पूर्वोक्त भाषाओं में से किसी भाषा में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।

2. जब तक राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो "या अंग्रेजी में" शब्दों का उसमें से लोप कर दिया गया हो :

   परंतु हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय और त्रिपुरा राज्यों के विधान-मंडलों के संबंध में, यह खंड इस प्रकार प्रभावी होगा मानो इसमें आने वाले "पंद्रह वर्ष" शब्दों के स्थान पर "पच्चीस वर्ष" शब्द रख दिए गए हों :

   परंतु यह और कि अरूणाचल प्रदेश, गोवा और मिजोरम राज्यों के विधान-मंडलों के संबंध में यह खंड इस प्रकार प्रभावी होगा मानो इसमें आने वाले "पंद्रह वर्ष" शब्दों के स्थान पर "चालीस वर्ष" शब्द रख दिए गए हों।

•

केंद्रीय सचिवालय राजभाषा सेवा के लिए अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र, नई दिल्ली में दिनांक 18 मई 2022 को आयोजित प्रथम तकनीकी सम्मेलन में राजभाषा हिंदी में मूल कार्य करने के लिए श्री एम. एल. सिंह, वरिष्ठ सहायक, केंद्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, वाराणसी को गृह राज्यमंत्री द्वारा "राजभाषा सम्मान-2022" से सम्मानित किया गया।

राजभाषा नियम, 1976

हिंदी के अनुमानित ज्ञान के आधार पर देश के राज्यों/संघ शासित प्रदेशों को तीन क्षेत्रों, यथा - क, ख, ग में परिभाषित किया गया है

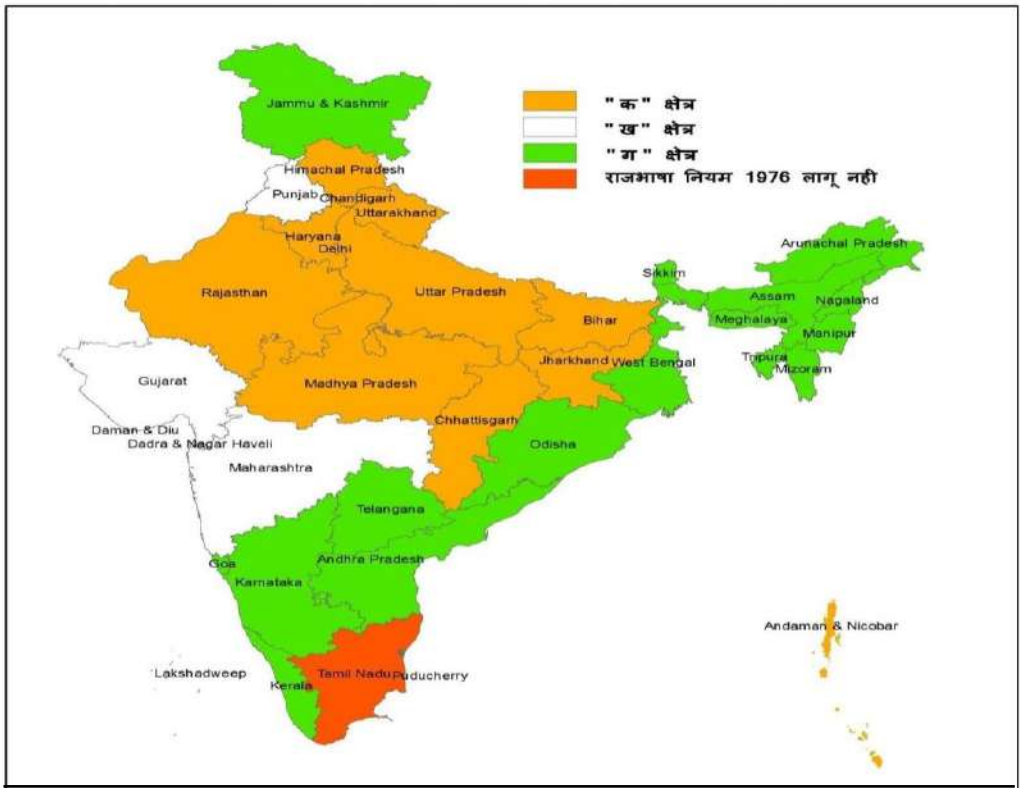

भाषा क्षेत्र	राज्य/संघ राज्य
'क'	बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड़, उत्तराखंड राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्य तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली संघ राज्य हैं
'ख'	गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा चंडीगढ़, दमण और दीव तथा दादरा और नगर हवेली संघ राज्य
'ग'	उपरोक्त निर्दिष्ट राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से भिन्न राज्य तथा संघ राज्य